
श्री गुरुजी समग्र
खंड ३
प्रबोधन

स्वत्वाधिकार

डा हेडगेवार स्मारक समिति
डा हेडगेवार भवन
महाल नागपुर-४४००३२

प्रकाशक

सुरुचि प्रकाशन
देशबंधु गुप्ता मार्ग
नई दिल्ली-११००५५

प्रथम संस्करण

माघ कृष्ण एकादशी युगाब्द ५१०६

मुद्रक

गोपसन्स पेपर्स लि
नोएडा-२०१३०१

मूल्य प्रति सच

दो हजार रुपए



पारिभाषिक शब्द

सरसघचालक	–	सघ के मार्गदर्शक।
सरकार्यवाह	–	सघ के निर्वाचित सर्वोच्च पदाधिकारी।
सघचालक	–	स्थानीय कार्य व कार्यकर्ताओं के पालक।
मुख्यशिक्षक	–	नित्य चलनेवाली शाखा के कार्यक्रमों को सचालित करनेवाला।
कार्यवाह	–	शाखा क्षेत्र का प्रमुख।
गटनायक	–	शाखा क्षेत्र के एक छोटे भौगोलिक भाग का प्रमुख।
प्रचारक	–	सघकार्य हेतु पूर्णत समर्पित अवैतनिक कार्यकर्ता।
शाखा	–	सस्कार निर्माण हेतु नित्यप्रति का एकत्रीकरण।
उपशाखा	–	एक स्थान पर चलने वाली विभिन्न शाखाएँ।
बैठक	–	विचार-मथन व सामूहिक निर्णय-प्रक्रिया हेतु एकत्र बैठने की प्रक्रिया।
बौद्धिक	–	वैचारिक प्रबोधन का कार्यक्रम भाषण।
समता	–	अनुशासन के प्रशिक्षण हेतु शारीरिक कार्यक्रम।
सपत्	–	कार्यक्रम प्रारभ करने हेतु स्वयसेवकों को निश्चित रचना में खडा करने की आज्ञा।
विकिर	–	शाखा-कार्यक्रम की समाप्ति की अतिम आज्ञा।
दड	–	लाठी।
चदन	–	एक साथ मिल-बैठकर जलपान करना।
सहभोज	–	अपने-अपने घर से लाए भोजन को एक साथ मिल-बैठकर करना।
शिविर	–	कैंप।
सघ शिक्षा वर्ग	–	सघ की कार्यपद्धति सिखाने हेतु क्रमबद्ध त्रिवर्षीय प्रशिक्षण योजना।
सार्वजनिक समारोप	–	शिविर तथा वर्ग का अतिम सार्वजनिक कार्यक्रम।
खासगी समारोप	–	वर्ग का केवल शिक्षार्थियों के लिए दीक्षात कार्यक्रम।

अनुक्रमणिका

दिशादर्शन

कार्यकर्ता बैठक

खड - ३

प्रबोधन

सन् १६४० से १६७३ तक श्रीगुरुजी ने प्रतिवर्ष दो बार सपूर्ण भारत का सघकार्यार्थ प्रवास किया। इस खड मे ऐसे प्रवास के दौरान स्वयसेवको के शिविर, सम्मेलन, बैठको तथा जनसभाओ मे दिए गए भाषणो तथा चर्चाओ का सकलन है।

दिशा दर्शन

विभिन्न अवसरो पर कार्यकर्ताओ के सम्मुख दिये गए श्री गुरुजी के कुछ चुने हुए बौद्धिक वर्गों के साराश

१ कार्यक्रमो का मूल उद्देश्य

(२३-२४ मार्च १९४० को चद्रपुर में उस समय के मध्यप्रात के प्रौढ स्वयसेवकों का एक शिविर हुआ। उस समय पूजनीय डाक्टर हेडगेवार स्वास्थ्य लाभ के लिए राजगीर (विहार) गए हुए थे। इस शिविर के स्वयसेवकों के नाम पूजनीय डाक्टर जी ने राजगीर से एक पत्र भेजा था। पत्र में स्वयसेवकों को सघकार्य बढाने की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण सूचना दी थी कि आगामी तीन वर्षों में विशिष्ट सीमा तक स्वयसेवकों तथा शाखाओं की सख्या बढाई जाए। पत्र में यह भी लिखा था कि शिविर में सपूर्ण समय उपस्थित रहकर श्री गुरुजी स्वयसेवकों का मार्गदर्शन करेंगे। उस समय श्री गुरुजी सरकार्यवाह थे। उस शिविर में दिया गया बौद्धिक)

सघ के विविध कार्यक्रमों के मूल में जो उद्देश्य है, उसे यदि हम भूल जाएँ, तब केवल कार्यक्रमों से अपना कोई भी कल्याण नहीं होगा। इसलिए सघ में बौद्धिक वर्ग तथा इस प्रकार के शिविरों की योजना की गई है।

हम विचार करें कि सघकार्य करते समय केवल कार्यक्रमों के जाल में ही तो नहीं फँस गए हैं? अपने कार्यक्रम केवल निर्जीव रूढि तो नहीं हो गए हैं? पूजनीय डाक्टर जी का आज ही पत्र आया है, जिसमें उन्होंने आह्वान किया है कि लोकसख्या के अनुपात में ग्रामीण विभाग में एक प्रतिशत और शहरी विभाग में तीन प्रतिशत प्रतिज्ञित तथा गणवेशधारी तरुण स्वयसेवकों की सख्या बढाने का सकल्प सभी स्वयसेवक करें। यह योजना अपने नितात आदरणीय सरसघचालक जी ने रखी है। इसलिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए। इस विशाल भारत के लिये पारतत्र्य के गर्त में गिरी हुई, अत्यत सकटग्रस्त अपनी मातृभूमि के लिये पचास-साठ हजार स्वयसेवकों का सगठन दरिया में खसखस के समान है। सख्या के बिना सगठन व्यर्थ है। इसलिए हमें सख्या-बल पर निर्भर रहना होगा। अपने सगठन की सख्या इतनी बडी हो कि उसे देखकर ही शत्रु घबरा जाए। कुछ लोग कहते हैं कि 'यदि मुट्ठीभर तेजस्वी आदमी मिलते हैं, तो दुनिया में हलचल पैदा की जा सकती है।' उनका कथन सही है। परतु ऐसे मुट्ठीभर तेजस्वी आदमी मिलने तो चाहिए। एक वैज्ञानिक कहा करता था कि यदि उसे पृथ्वी के बाहर खडे रहने के लिये स्थान मिले, तो केवल एक उगली के सहारे वह पृथ्वी को नीचे गिरा सकता है।

कुछ लोग कहते हैं कि अपना कार्य पैसे के बिना बढना सभव नहीं है। परतु मेरा मत है कि मनुष्य पैसों का अनुसरण नहीं करता, पैसा ही उसके पीछे आता है। यह कहना भूल है कि पैसे से सगठन बढ सकता है। आज जो अपना सगठन बढा है, वह क्या पैसे से बढा है? हमें कर्तृत्ववान और स्वार्थत्यागी व्यक्ति मिले, इसलिए अपना सगठन बढा और सपत्ति भी बढी। स्वयसेवक निष्ठावान हुए तो पैसों की कोई कमी नहीं है। राष्ट्र की सच्ची सपत्ति है राष्ट्र के व्यक्ति। वे प्राप्त होने पर अपने को किसी भी बात की न्यूनता नहीं रहेगी। उन्हें सघ में लाते समय एक बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जो सघ में आएँगे, उनके मन में स्वार्थ-भावना का प्रवेश न होने पाए। देश-कार्य में तन्मय होकर एकरूप होकर और स्वार्थ छोडकर किया गया कार्य ही देश को उपकारक होगा, अन्यथा वह हानिकारक होगा। इसी दृष्टि से सघ वेतनभोगी नौकर रखकर कार्य करना नहीं चाहता।

स्वयसेवक का तन-मन-धन सघ के लिये है, फिर सघ को पैसों की चिता करने का क्या कारण है? निष्ठावान, स्वार्थत्यागी, सघ के लिए तन-मन-धन अर्पण करनेवाले स्वयसेवक कैसे प्राप्त होंगे, इसी एक बात की

चिता करते हुए उत्साह से अधिक काम करने का सकल्प करें और अपने प पू सरसघचालक जी को आश्वासन दें कि हम सघकार्य अवश्य सफल कर दिखाएँगे।

卐 卐 卐

२ समाज के हर कोने मे फैले

(लाहोर, १६ जनवरी १९४१)

समर्पित कर्तृत्ववान सघचालक

मुबई के सघचालक माननीय दादा नाईक की मृत्यु हो जाने के कारण पजाब का प्रवास अधूरा छोडकर मुझे मुबई जाना पडा था। मुबई शहर बहुत बडा है। वहाँ सब समाजों, सब मतों, सब प्रकार के लोग रहते हैं, इसलिए वह अजायबघर जैसा है। वहाँ पडोस में कौन रहता है, लोग नहीं जानते। सन् १९३४ में वहाँ शाखा का काम प्रारभ हुआ। मुबई में लोग छोटे-छोटे गुटों में बँटे हुए थे, एक दूसरे के प्रति सवेदना नहीं थी। समाज की ऐसी अवस्था में सगठन कैसे होगा, शाखा का काम कैसे खडा होगा– यह समस्या कार्यकर्ताओं के सम्मुख थी। अपने सगठन का विचार और सिद्धात समझना तो आसान है, परतु प्रत्यक्ष व्यवहार कठिन है। चुनाव या किसी लोकप्रिय राजनैतिक पार्टी की ओर से चुनाव में खडे रहने के लिए सघ-शाखा छोड देनेवाले स्वयसेवक तो मिलते हैं, परतु स्वयसेवकों को सुसस्कारित ओर चारित्र्य-सपन्न बनाने के लिए अविश्रात परिश्रम करने वाले कार्यकर्ता कम ही मिलते हैं।

ऐसी कठिनाइयाँ होते हुए भी श्री दादा नाईक ने मुबई में सघ का काम प्रारभ किया। शाखाओं को सघस्थान चाहिए, इसलिए जगह की व्यवस्था की। शाखा चलानेवाले कार्यकर्ता खडे किए। प्रारभ में वहाँ की उपस्थिति २० थी, उसे छ वर्षो के अपने अथक परिश्रम से १५०० तक पहुँचाया। मुबई में लोग तथाकथित आधुनिक हैं। ऐसे लोग मित्रों को भी अपने घर में नहीं ठहरने देते। परतु दादाजी ने ऐसे बहुत से लोग तैयार किए जिनके घर में स्वयसेवक ठहरते थे। दादाजी सुविख्यात नहीं थे, थोडे लोग ही उन्हें जानते थे। जो जानते थे, वे भी 'वालटीयर दल तैयार करनेवाले' के नाते।

हृदय मे आग

मुझमें कर्तृत्व नहीं, ऐसा कोई भी अपने बारे में न समझे। यदि वह चाहे तो अपने अदर की सुप्त शक्तियाँ जागृत कर सकता है। सघ का काम करने की लगन व इच्छा उत्पन्न करने की आवश्यकता रहती है। स्वत की शक्ति का अनुमान हर किसी को नहीं होता। प्रबल इच्छा हो और अपने काम पर अत करण का केंद्रीकरण हुआ, तो कर्तृत्व जागृत होता है। 'जीवन में करने योग्य सघकार्य ही एकमात्र कार्य है' - यह बात दादाजी के मन में जँच गई थी। अत करण इस बात पर केंद्रित होने से उनका कर्तृत्व जागृत हुआ। उनका नाम मुबई के सारे सुविद्य लोग जानने लगे। उन्होंने मानो शून्य से जगत् पैदा किया। जो मरुस्थल माना जाता था, वहाँ बाग का निर्माण किया। उनकी शवयात्रा में २००० स्वयसेवक थे। मामूली लगने वाले आदमी की ऐसी शवयात्रा मुबई के लोगों ने देखी नहीं थी।

जैसा काम दादाजी ने मुबई में किया, वैसा हमें अपने यहाँ करना है। अपने मन में समाधान, आनद, प्रसन्नता उत्पन्न कर सुखासीन करनेवाला नहीं, अपितु लगन पैदा करनेवाला काम करना है। अपने हृदय में आग लगनी चाहिए कि अभी तक काम नहीं कर सका। किया भी तो कुछ अधिक नहीं कर पाया। काम के पीछे नींद, भूख-प्यास न लगे- ऐसी अगार अपने हृदय के अदर नहीं जगी, दिन बीत गया, परतु सघ का कार्य नहीं हुआ, इस विचार से दिल मानो जल रहा हो। ऐसी बेचैनी हमारे अदर उत्पन्न होनी चाहिए। दिन में हम कितने फिजूल, अहितकारक, स्वार्थी काम करते हैं? इसकी ओर हमेशा अपना ध्यान रहे।

सघस्थान का एक घटा

एक घटा सघ में जाना सघ का कार्यक्रम है, कार्य नहीं। प्रत्येक स्वयसेवक के साथ हम भ्रातृभाव का अनुभव करें। घर-घर का हिसाब रखें कि कितने आदमी अपने कार्य से आकर्षित हुए हैं। शाखा का कार्यक्रम कार्य का एक अश है, जाँच-पडताल है। २३ घटे के व्यवहार में अपने प्रमुख सिद्धातों के अनुसार हमारा आचरण हुआ या नहीं इसका हिसाब है। हिंदुओं के प्रति आत्मीयता और प्रेम, अपनी भारत माता और उसके पुत्ररूप समाज के नाते जो हमारा यह हिंदू-राष्ट्र है, उसके प्रति सर्वस्व अर्पण करने की प्रवृत्ति सघ के इन मूलभूत विचारों के अनुसार २३ घटों में अपना व्यवहार रहा या नहीं रहा, इसका हिसाब सघस्थान के एक घटे

में करना चाहिए। दुष्टता और स्वार्थ के विचार यदि २३ घंटे चलते रहे, तो एक घंटा संघ में आकर दिल-जमई नहीं हो सकती। हमें अपने जीवन में मानो एक नए अध्याय का प्रारंभ करना पड़ेगा।

हमेशा प्रगति पर रहना जीवमान होने का लक्षण है। २३ घंटे कैसे बीतते हैं - यह देखने की आदत डालने से अपने प्रत्येक शब्द, विचार और आचार में संघ प्रकट होगा। इससे संघस्थान पर उपस्थिति भी बढ़ेगी और हृदय प्रसन्नता का अनुभव करेगा।

काम की लगन

बीमार होते हुए भी दादा वहाँ के शिविर में उपस्थित थे, क्योंकि शिविर हो और वे घर पर रहें, ऐसा हो ही नहीं सकता था। गणवेश और ड्रिल पर सरकारी आदेश से पाबंदी थी, फिर भी शिविर में संख्या अधिक रहेगी। इसका उन्हें विश्वास था। स्वयंसेवकों की व्यवस्था ठीक से हो, वे अपने कार्यक्रम कर सकें, इसलिए उन्होंने बहुत काम किया। पाबंदी के बाद भी शिविर की संख्या १२०० रही। संभवत: उसी परिश्रम के कारण उनका देहांत हुआ। आदमी जब अपने को भूलकर, पेट का ख्याल छोड़कर और दिल लगाकर काम करता है, तब कार्य होता है। हम सब यह निश्चय करें कि इतनी लगन से, संसार की व्यक्तिगत स्वार्थ की सारी बातें भूलकर कार्य करेंगे और जैसे मुंबई में २४ घंटे काम करनेवाले लोग तैयार हो रहे हैं, वैसे अपने यहाँ भी तैयार करेंगे।

संघ बीज बो दो

स्वयंसेवक के अंत:करण की तीव्रता बढ़ी कि उनमें संघ का बीज बो दो और देखो कि उसका अंकुर कैसे निकलता है, बढ़ता है। तब ध्यान में आएगा कि काम इतना है कि उसके लिये दिन के २४ घंटे भी कम हैं। हम अपने परिवार का कितना काम करते हैं? परिवार की चिंता में रोटी, धोती, औरत-बालबच्चों के लिए काम करते-करते २४ घंटे खर्च करते हैं। अपने हिंदू समाज का परिवार तो बहुत बड़ा है। इसी प्रमाण में समाज का विचार करना चाहिए। अपने निजी परिवार का आवश्यक, उतना ही काम करके, बाकी सारा समय भगवान का नाम लेकर संघ के इस काम में लगाएँ। अपने घर का बाकी काम भाग्य पर छोड़कर ईश्वर का कार्य खुद करें और उसके लिए कष्ट उठाएँ। इस तरह लगन से काम कर संघ की प्रभा समाज के हर कोने में फैले- ऐसी अवस्था उत्पन्न करने का निश्चय हम करें।

३ वर्तमान कर्तव्य

(६ मार्च १९४२, नागपुर)

सघकार्य का आगामी वर्ष बहुत ही महत्त्वपूर्ण होगा। हम यहाँ पर पिछले वर्ष में किए हुए अपने कार्य का अवलोकन करें और भविष्य में हमें जो कुछ करना है, उसका निश्चय करें। लोग कहते हैं कि आज की परिस्थिति में यदि हम अपने समाज को पुन सुसगठित न करें, तो हमारी दुर्दशा की कोई सीमा नहीं रहेगी। मैं आज की इस सकटमयी परिस्थिति को दूसरे ही दृष्टिकोण से देखता हूँ। मेरी समझ में हमारे लिए आज की कठिनाइयाँ कुछ नई नहीं हैं, हमारे ऊपर सकट आने की परपरा पुरानी है।

सगठित अवस्था–समाज का वास्तविक स्वरूप

आज का सकट पहले से कुछ अधिक भीषण अवश्य है। अतएव आज हमें अपने समाज को सुसगठित करने की अत्यत आवश्यकता प्रतीत हो रही है, किंतु यह आवश्यकता भी समाज के लिए नई चीज नहीं है। समाज का वास्तविक स्वरूप सगठित स्वरूप ही है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के प्रति आत्मीयता का भाव रखता है। यदि समाज का हर व्यक्ति स्वार्थ छोडकर दूसरों के प्रति सद्भाव न रखे, तो वह समाज नहीं हो सकता। समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपना जीवन समष्टि जीवन में विलीन करता हुआ, समष्टि की उन्नति का प्रयत्न करता है। आज हमारे समाज का यही सगठित स्वरूप प्रकट होना चाहिए। सगठित स्वरूप की आवश्यकता पहले भी थी, बीच में कभी इस भावना में शिथिलता भी आई, परतु आज हम सब लोग उस ओर ध्यान देते हुए, अपने सगठित समाज-जीवन का पुन अनुभव करना चाहते हैं और यह उचित ही है।

कुछ ही दिन पूर्व विदर्भ के कार्यकर्ताओं से मिलने का मौका आया था। मुझे वहाँ यह ज्ञात हुआ कि विदर्भ के प्रत्येक कार्यकर्ता ने बहुत कष्ट उठाकर प्रत्येक गाँव में, यहाँ तक कि वीरान गाँव में भी जाकर सघ की दृष्टि से समाज की परिस्थिति का अवलोकन किया है। उनके अनुभव के अनुसार सघ के कार्य के लिए इतनी अनुकूल परिस्थिति इसके पहले कभी नहीं थी। यदि यह बात विदर्भ के लिए सच है, तो समस्त भारतवर्ष के लिए भी सच है। हम जहाँ जाते हैं, वहाँ लोग सघ को अपनाने के लिए तैयार दिखाई देते हैं। राष्ट्र-उत्थान के कार्य में वे लोग सहयोग देने के लिए उत्सुक हैं। आज हमारे हिंदू-समाज के लोग अत करण से चाहते हैं कि वे

अब बिखरे हुए न रहें। वे कहते हैं कि अभी तक हम अंधेरे में थे, आपने हमें प्रकाश दिया। हम आपके कहने के अनुसार चलने को तैयार हैं। अत अपने उन भाइयों से मिलजुलकर हम उनके साथ सहृदयता का व्यवहार करें। जिस प्रकार शरीर का प्रत्येक अवयव चाहता है कि शरीर स्वस्थ रहे तथा उसकी स्वस्थता बनाए रखने के लिए वह निरतर प्रयत्न करे, उसी तरह आज हमारे समाज के हरेक व्यक्ति की यह इच्छा है कि समाज स्वस्थ रहे, उसकी स्वस्थता बनाए रखने के लिये प्रयत्न करें।

किंतु मुझे इस बात का दु ख है कि इस अनुकूल परिस्थिति का हमें जितना लाभ उठाना चाहिए, उतना लाभ हम नहीं उठा रहे। भूमि बिल्कुल अनुकूल है, सिर्फ बीज बोने की देरी है। हम भूमि पर किसी प्रकार की मेहनत न करते हुए, केवल फसल देखना चाहते हैं। किंतु यह किस प्रकार सभव है? हमारी दशा उस आलसी मनुष्य जैसी है, जो जामुन के पेड के नीचे लेटा है, फिर भी चाहता है कि ऊपर से टपकनेवाला जामुन भी कोई दूसरा आकर उसके मुँह में डाल दे। यह अनुकूलता यद्यपि सब जगह समान नही है, तथापि क्या हमने प्रतिकूल परिस्थिति का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने की कभी चेष्टा की है? ऐसा कौन सा कारण हो सकता है जिसके कारण हम उस प्रतिकूल परिस्थिति को दूर नहीं कर सकेंगे? क्या कारण है कि हमारा कार्य अभी भी अपर्याप्त है? क्या इसपर किसी ने विचार किया है?

देहाती भाइयो के प्रति उदासीन न हो

केवल शहरवासियों में ही कार्य करने से काम नहीं चलेगा। हम तो अपने देहाती भाइयों को अनपढ समझकर उनके साथ काय करना शक्ति का अपव्यय मानते थे। केवल तर्कमात्र से हमने उनके सबध में यह मत बना लिया था। हमें इसमें बदल करना होगा।

हमें अपने देहाती भाइयों के प्रति अब तक की उदासीनता छोडनी होगी। यदि देहाती जनता सघ को एव हिंदुत्व को समझने में असमर्थ है, कई साल से सघ शाखाओं के रहते हुए भी सघ से सर्वथा अपरिचित है, तो इसका दोष किसपर है? यह बात जहाँ शहरों के सुशिक्षित लोगों में पाई जाती है, तो वहाँ ग्रामीण लोगों में सघ के प्रति इस प्रकार की अज्ञानता तथा उदासीनता देखी जाए, तो आश्चर्य ही क्या? मुबई शाखा के भूतपूर्व सघचालक स्वर्गीय दादा नाईक की शवयात्रा में हजारों की सख्या में

स्वयसेवकों की उपस्थिति देखी, तब अधिकाश मुवईनिवासी जनता को राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ तथा उसके स्वर्गीय कार्यकर्ता के सवध में प्रथम बार परिचय हुआ। यदि कोई शहरी या देहाती भाई हिंदुत्व से और सघ से अपरिचित है तो वह दोष हमारा ही है।

हमें तो घर-घर जाकर अपने प्रयत्नों से उनको सघ का परिचय कराना है। कोइ अपने आप उठकर हमारे पास नहीं आएगा। हमें ही ढूँढ-ढूँढकर लोगों को अपने में मिलाना होगा।

हर एक व्यक्ति के पास हमें पहुँचना होगा और उसे सघ की अच्छी आदत लगाकर, उसके व्यक्तिगत जीवन की बुरी आदतें हटानी होंगी। यदि बुरी आदतें प्रयत्नपूर्वक लगाई जा सकती हैं, तो क्या सघ जीवन की अच्छी आदतें प्रयत्न करने पर भी नहीं लग सकेंगी? आवश्यकता है केवल सद् प्रयत्न और परिश्रम की। यदि हम लोग अपने सब भाइयों के साथ सच्चे प्रेम और सहानुभूति का बरताव करने लगें, तो वे लोग हमेशा के लिए हमारे होकर रहेंगे, दूर जाने की ये इच्छा तक न करेंगे। लोगों के साथ हमारे स्नेह-सबध अत्यत घनिष्ठ हों। समाज के लोगों से एकरूप होते ही यह घनिष्ठता बिल्कुल सरलता और सुगमता से हो सकेगी। यह देखने में आता है कि शहराती भाइयों में अपने देहाती भाइयों के प्रति घृणा, तुच्छता तथा उदासीनता के भाव जड पकडे हुए हैं। इन बातों को प्रथमत हटाना होगा। लोग कहते हैं कि देहात में रहनेवाले अनपढ, मूर्ख और मैले होते हैं। लाख बार समझाने पर भी ये न तो हमारी बातें समझते हैं, न मानते हैं। पर यह दोष उनका नहीं, हमारा है। क्या हमने उनके जीवन को सच्चे दिल से कभी समझने की कोशिश की है? उनके साथ रहकर, उनके ग्रामीण जीवन में समरस होकर क्या हमने उन्हें अपनाने का कभी सद्प्रयत्न किया है?

हम अपने आपको बडा सुशिक्षित, विद्वान और उच्च श्रेणी का मनुष्य समझते हैं, इसलिए अपने देहाती भाइयों से मुँह मोडते हैं। अतएव इस अवस्था में यदि ग्रामीण जनता हमें आशका और पराएपन के भाव से देखती है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? ग्राम-सुधार या गॉव सफाई की केवल योजना बनाने से काम नहीं चलेगा। अपने सफेद कपडों पर धब्बा न लगे इस भाव से शहरी लोग यदि देहातों में जाते हैं और वहॉ के लोगों को निरा पशु समझकर उन्हें सुधारने का बहाना करते हैं, तब कार्य की सफलता असभव है। उन्हें निराशा व हँसी के सिवाय कुछ हाथ नहीं आएगा। वे अपने को देवदूत समझकर ग्रामीण जनता से अलग रहते हैं।

अपने कार्य में असफलता मिलने पर सारा दोष ग्रामीण जनता के मत्थे मढते हैं।

ग्रामीणो का प्रेमपात्र बने

हमें चाहिए कि हम देहात में सद्भाव से जाएँ और प्रथमत वहाँ की जनता के विश्वास पात्र वनें। वडप्पन की अपनी गलत धारणा को दिल से हटा दें। फिर पता लगेगा कि देहातियों में कितना सद्भाव और दृढ निष्ठा है। आज सघ की अवस्था किसी नए दुकानदार जैसी है। उसे अपनी दुकान जमानी है। एक वार विश्वास जम जाए, अपनी पहचान हो जाए, फिर आगे का काम सरल हो जाएगा। हम अपनी असफलता और आलस्य का दोष दूसरों पर लादना नहीं चाहते। यह बात राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ के सिद्धातों के विरुद्ध है। हमारी असफलता का दोष हम पर है, हम अपना दिल टटोलें, आत्मनिरीक्षण करें तथा अपनी शक्तियों को जागृत करें और स्वावलबी वनें।

स्वावलबी होना चाहिए

सघ समाज में स्वावलबन की वृत्ति वढाने का प्रयत्न कर रहा है। किसी भी समाज की उन्नति उसके स्वत के पैरों की ताकत पर निर्भर है। हमें दूसरों की सहायता के विना अपने पैरों पर खडा होना चाहिए। हम न अधे हैं, न लगडे। फिर क्यों हम दूसरों पर अवलबित रहें? अपनी उन्नति के लिए दूसरों का मुँह क्यों ताकें? क्यों हम दूसरों के पॉव से अपना पॉव बॉधे? ऐसा करने पर सिवाय नीचे गिरने के ओर कुछ हाथ न आएगा। यदि हम दूसरों के पैरों से पैर वॉधना ही चाहते हैं, तो हमें यह विश्वास होना चाहिए कि जिसके साथ हमारा पैर वँधेगा, वह हमें घसीट न ले जाए, वरन् हम उसको अपने साथ खींच सकेंगे। दुर्वल आदमी का, वलवान के पैर के साथ पैर वॉधने की चेष्टा करना निरा आत्मघात है। अतएव दुर्वल मनुष्य स्वावलबी बने और अपनी दुर्बलता नष्ट करे।

हमको ही कार्यकर्ता बनना होगा

इतनी अनुकूलता होते हुए भी एक बडी विकट समस्या हम लोगों के सामने है। चारों ओर से कार्यकर्ताओं की मॉग हो रही है। आज हमारे पास कार्यकर्ताओं का अभाव मालूम होता है। हमें इस बात पर गभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। कार्यकर्ता आकाश से टपकते नहीं, उसके लिये हमें

स्वत प्रयत्न कर कार्यकर्ता निर्माण करने होंगे और उनका निर्माण हम लोगों में से ही होगा।

कार्यकर्ताओं का अभाव दूर करना हमारे हाथ में है। यदि हम निश्चय कर लें कि कार्य कोई दूसरा करे अथवा न करे, मैं अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए सर्वप्रथम अग्रसर होऊँगा, तब हम कुछ परिमाण में कार्यकर्ताओं की कमी को अवश्य दूर कर सकेंगे। यदि प्रत्येक स्वयसेवक इस प्रकार सोचे और कार्य करे तो उसके उदाहरण से दूसरों को भी स्फूर्ति मिलेगी। स्वयसेवक अपने को अकेला अनुभव नहीं करेगा।

सघ प्रारभ करते समय डाक्टर साहब अकेले थे। उस एक व्यक्ति ने सघ का यह विशाल काम किया। आज तो हम लाखों की सख्या में हैं। हम तो सगठन का व्रत लेकर आगे आए हैं, फिर सकटों और आपत्तियों से क्यों डरें? सयम और तपस्या के बिना किसी व्रत की सिद्धि नहीं होती। व्रत में कष्ट और कठिनाइयों का होना अवश्यभावी होता है। स्वार्थ और भय को जब तक नहीं छोड़ेंगे, तब तक हमें सफलता प्राप्त नहीं होगी। हम लोग दूसरों के त्याग की भूरि-भूरि प्रशसा करते हैं, किंतु अपने ऊपर बीतने पर हमारे पैर कॉपते हैं। इससे कुछ भी काम न बनेगा। जब तक हम स्वय आगे बढकर त्याग की वेदी पर खडे नहीं होते, दूसरों से त्याग की आशा कैसे कर सकते हैं?

परीक्षा के दिनों में विद्यार्थी अपनी सफलता के लिए अपने सब सुख, आराम और आकर्षण को त्यागकर केवल किताबों के पीछे पड जाता है। रात-दिन पढाई और परीक्षा के सिवाय उसे अन्य कोई बात नहीं सूझती। ठीक वही अवस्था आज हम लोगों की भी होनी चाहिए। आज समाज की परीक्षा का विकट समय है। समाज पर भीषण सकट की काली घटाएँ छाई हुई हैं। इस समय अपने व्यक्तिगत जीवन में ही न पडे रहें। अब तो हमें परीक्षार्थी विद्यार्थी के समान अपना लक्ष्य एक जगह केंद्रित कर उसपर सारी शक्ति व सारा समय खर्च करना होगा। यही हमारा आज का सर्वप्रथम कर्तव्य है। व्यक्तिगत जीवन के सारे विचारों को हटाकर कर्तव्य की राह पर दृढता व कठोरता के साथ आगे कदम रखना चाहिए। हमारा अहोभाग्य है कि आज की सकटमय अवस्था में हम पैदा हुए हैं।

राष्ट्र के इतिहास में शताब्दियों में शायद ही प्राप्त होनेवाला महान सुवर्ण अवसर आज हमारे सामने उपस्थित हुआ है। इस समय अगर हम

सोए रहेंगे, तो हमसे बढकर अभागा और कौन हो सकता है? सकटमयी परिस्थिति में जो व्यक्ति कार्य करता है, वही अपने मनुष्य होने को सत्य सिद्ध करता है। प्रसन्न और निर्भय होकर सकटों से मुकाबला करना चाहिए। हमारे सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिगत गुणों को प्रकट करने का यह सुअवसर है। हमारे आदर्श हैं शिवाजी और राणा प्रताप, जिन्होंने भीषण से भीषण सकटों से लोहा लिया था। हम यदि उनका अनुकरण करें तो ससार को बतला सकेंगे कि हमारे समाज के चैतन्य को खडित करनेवाली कोई भी शक्ति ससार में नहीं हैं।

मानसिक क्राति आवश्यक

गत १७ वर्ष से हम कार्य कर रहे हैं। ससार के अन्यान्य राष्ट्रों की ओर देखने से पता चलता है कि मृतवत् समझे जानेवाले देश केवल १५ या २० वर्ष के अदर अपने पैरों पर फिर से उठ खडे हो गए और आज अपने सगठन के बल पर वे इतने शक्तिशाली हो चुके हैं कि सारी दुनिया को चुनौती दे सकते हैं।

मैं आशावादी हूँ। अकारण निराशावादी होने में कोइ अर्थ नहीं है। हमारे सामने कार्य विशाल है और समय कम। लेकिन चिता न करें। यदि अब भी ठान लें, तो चाहे जितना काम कर सकते हैं और चाहे जितने कार्यकर्ता निर्माण कर सकते हैं। सवाल है— केवल मन की एक छोटी-सी क्राति का। एक बार मानसिक क्राति हुई कि हमारे सारे जीवन में अपूर्व परिवर्तन हो जाएगा और आशा का दृश्य दिखाई देगा। आपसे यह कोई नहीं कहता कि बस, अपरिमित कार्य ही करते रहो, पर प्राथमिकता तो देनी ही होगी।

हमारे समाज की जनसख्या विशाल होने के कारण कार्यक्षेत्र भी बहुत ही विशाल है। अतएव हम कार्य की दृष्टि से कुछ प्रभावी प्रमाण या मर्यादा निश्चित कर उसे शीघ्रातिशीघ्र पूरा करने की जी- जान से कोशिश कर सकते हैं। दो वर्ष पूर्व सन् १६४० के प्रारभ में हमारे परम पूजनीय डाक्टर साहब ने कार्य का निश्चित प्रमाण या मर्यादा हमारे सामने रखी थी। यदि उसे भी पूरा कर सके, तब भी पर्याप्त है।

एकवर्षीय सन्यासी हो

एक निश्चित प्रमाण में काम पूरा करने के लिए हमें तीन वप की निश्चित अवधि दी गई थी, जिसमें से दो वर्ष तो अब बीत गए। बाकी बचा

है केवल एक वर्ष। मानो तीन घंटे का समय प्रश्नपत्र हल करने के लिये मिला था, जिसमें से दो घंटे बीत चुके हैं। बाकी जो समय बचा हुआ है, उसी में हमें हमारा निर्धारित कार्य पूरा करना ही होगा। घबड़ाने की कोई बात नहीं, यदि सब धीरता, गंभीरता और निश्चय के साथ कार्य में जुट जाएँ और ज्यादा से ज्यादा समय संघकार्य में लगाएँ। यह निश्चित है कि पहले की अपेक्षा कहीं अधिक त्याग और प्रयत्न की आवश्यकता है। हमने जिस सीमा तक बढ़ने का निश्चय कर लिया है, उसे हमें एक साल के अंदर किसी भी हालत में पूरा करना ही होगा। एक साल के लिए हम अपने व्यक्तिगत जीवन के सारे दरवाजे बंद कर दें और यह असिधारा व्रत ग्रहण करें। एक वर्ष के लिये हम सन्यासी हो जाएँ।

इस प्रकार का कठोर और उग्र निश्चय यदि हम अपने मन में कर लें तो अपनी नियुक्त कार्य-मर्यादा को हम एक वर्ष के अंदर खुशी से पार कर सकते हैं। हम देखेंगे कि एक वर्ष के भीतर ही अपने कार्य का चित्र अपने आप बदल गया है।

४ स्वतंत्र प्रतिभा पर आधारित कार्य

(१२ मई १९४६ को पुणे में महाराष्ट्र के २१५ प्रमुख कार्यकर्ताओं की बैठक हुई थी। उसके समारोप के अवसर पर हुआ भाषण)

लोग कहते हैं कि देश में अकाल पड़ा हुआ है, तब बड़े कार्यक्रम क्यों करते हो? अकाल के कारण सरकार ने अनाज-संग्रह न करना, भोजन-समारोहों में अतिथियों की संख्या सीमित रखना आदि नियंत्रण लगाए है। अपने मध्यप्रदेश में 'राष्ट्रीय' कहे जानेवाली सरकार अधिकारारूढ है। इन नियंत्रणों के कारण अपने संघ शिक्षा वर्ग के संचालन में रुकावटें पैदा न हों, इसके लिए एक मंत्री महोदय से भेंट कर इन नियमों के बारे मे बात की गई। ये मंत्री सत्रह आना कांग्रेसी हैं। उन्होंने कहा, 'अन्य अनावश्यक बातों के लिए ये नियम हैं, आपका कार्य मात्र आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। उसके कार्यक्रमों पर ये *नियम लागू नहीं होते।' संघ की भूमिका अपने आचरण में प्रकट करने* के कारण यह वाक्य हमें सुनने को मिला।

विरोध अज्ञान के कारण

अनेक लोग कहते हैं कि सघकार्य जातीय है। एक समय सघ को नष्ट करने की प्रतिज्ञा करनेवाले आज कहते हैं कि 'आपका कार्य नेशन बिल्डिंग प्रोग्राम है।' लोगों के मन में अपने विषय में अनेक भ्रम व धारणाएँ रहती हैं। उससे हमें कुछ समय तक परेशानी भी होती है। परतु जीवनभर परेशान करनेवाली एक भी बात नहीं है। उत्तम कर्म से महापातक तक मिट जाते हैं, फिर भ्रमपूर्ण धारणाएँ क्यों नहीं मिटेंगी? विरोधक हमारे शत्रु हैं, ऐसा मानने से हमारा कार्य नहीं बढेगा। जब अपने पू डाक्टर जी थे, तब मुबई का एक समाचार-पत्र खुलेआम सघ-विरोधी प्रचार करता था। उसके सपादक कट्टर हिदुत्ववादी थे। वे कहा करते थे– 'हिदू महासभा के रहते अन्य सस्थाओं की आवश्यकता नहीं है और यदि ऐसी सस्थाएँ हों, तो उन्हें जड-मूल से नष्ट कर डालना चाहिए।' उनके बारे में भी अपने डाक्टर जी यह विश्वास रखकर कि शरीर का एक अग अपने ही दूसरे अग के साथ कैसे शत्रुता कर सकता है, निर्वैर भाव रखते थे। सघ ने विरोधकों की उपेक्षा की। वे बैठकों में हास्य-विनोद करने के लिए ही उन बातों का उल्लेख किया करते थे। वे कहा करते थे – 'सघ-विषयक अज्ञान के कारण ही विरोधक विरोध करते हैं, अत उन्हें अपना शत्रु नहीं समझना चाहिए। विरोधकों ने भले ही हमें शत्रु कहा और हम पर आघात किया, तो भी हमें उन्हें शत्रु नहीं समझना चाहिए। उन पर प्रत्याघात नहीं करना चाहिए। हमें अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा है, इसलिए विरोधकों के प्रति हमारी यही धारणा रहनी चाहिए।'

बल-प्रयोग से विरोधकों का मुँह बद करना सभव है, परतु उससे पारस्परिक मनमुटाव पैदा होता है। छत्रपति शिवाजी द्वारा जयसिह को भेजे गए पत्र का एक वाक्य इस दृष्टि से बोधप्रद है– 'मुझे दु ख है कि दोनों ओर अपने ही लोग मारे जाएँगे।' अपने बारे में विपरीत भाव रखनेवाले अन्य सस्था के किसी व्यक्ति के बारे में हम सोचें कि वह अततोगत्वा हिदू ही है।

चित्त शात रखना चाहिए

यह सच है कि कई बार प्रक्षोभक घटनाएँ होती हैं, परतु हमें शात चित्त से सोचना चाहिए कि उस प्रक्षोभ के मूलत क्या कारण हैं। सहस्त्रों वर्षों से अपने स्वतत्र जीवन पर आक्रमण हो रहा है, इसलिए अपने मन

में चिढ और क्रोध पैदा होना चाहिए। उस लाछन को मिटाने के लिए अपना जन्म हुआ है। 'मैं दासता की शृखला के टुकडे-टुकडे कर डालूँगा'– ऐसी तेजस्वी भावना रही, तो छुटपुट वातों से मन में क्रोध पैदा नहीं होगा। जिनके मन में ध्येयप्राप्ति की तीव्र आकाक्षा है, उन्हें तात्कालिक क्षोभ पैदा करनेवाली बातों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। विशिष्ट शक्ति-सचय का कार्य करते समय तात्कालिक परिस्थिति का मन पर परिणाम हुआ, तो समझना चाहिए कि सगठन-कुशलता की कमी है। यदि स्पष्ट कल्पना न हो कि किस बात की चिढ आनी चाहिए, शत्रु कौन है, किसका प्रखर विरोध करना चाहिए, तो शक्तिसचय और सगठन का लक्ष्य एक ओर रह जाएगा।

हम अपनी चाल न छोडे

वास्तव में चिढ पैदा करनेवाली बातों की हम उपेक्षा न करें, परतु अन्य मामूली विरोधी बातों की ओर हम दुर्लक्ष्य करें। उपेक्षा से विरोधी भावना अपने-आप नष्ट हो जाती है। अपने डाक्टर जी कहते थे– 'हाथी चाल चलत गति अपनी, कुतर भुकत वाको भुकवा दे।' हम अपनी चाल न छोडें। जरा कहीं खट हुआ कि अपना कार्य छोडकर इधर-उधर दृष्टि दौडनेवाला व्यक्ति गभीर प्रकृति का नहीं कहा जा सकता। उसके मूल में यह भावना रहती है कि हम कमजोर हैं और दूसरे हमारी खिल्ली उडा रहे हैं। यदि अपने विचारों की सत्यता और सघ कार्यपद्धति पर पूर्ण विश्वास हो, तो छोटे-छोटे प्रक्षोभक विरोध की ओर अपना ध्यान नहीं जाएगा।

सहस्रों वर्षों की दासता की आग हमारे हृदय में धधक रही हो, तो सघ-विरोधी बातें सुनकर हमें क्षुब्ध होने का कारण नहीं। हम अपने व्यवहार से लोगों को सघ की भूमिका से सहमत करा सकते हैं और जिस क्षेत्र से हमारा सपर्क भी नहीं है, वहाँ भी अनुकूल वायुमडल निर्माण कर सकते हैं। सन् १६३२ में सघ के विरुद्ध सरकारी आदेश निकला था। उसका विरोध करनेवाला प्रस्ताव एक मुसलमान सज्जन द्वारा लाया गया और पारसी तथा ईसाई सज्जनों ने उसका अनुमोदन किया। यह हमारे व्यक्तिगत सपर्क से ही सभव है। दुर्बल रहने पर ही झूट-मूठ आरोप करनेवालों का विरोध करने का विचार मन में पैदा होता है।

साध्य अधिक महत्त्वपूर्ण

अग्रेजों के प्रति क्रोध के कारण अनेकों ने अद्भुत कारनामे किए। हमारे मन में भी एकाध बार विचार आ सकता है कि हम भी वैसा ही करें।

वैसा अद्‌भुत कार्य करनेवाले निस्सदेह आदरणीय हैं। उसमें व्यक्ति की तेजस्विता प्रकट होती है। स्वातत्र्य-प्राप्ति के लिए शहीद होने की सिद्धता झलकती है। परतु सोचना चाहिए कि उससे सपूर्ण राष्ट्रहित साध्य होता है क्या? वलिदान के कारण पूरे समाज में राष्ट्रहितार्थ सर्वस्वार्पण करने की तेजस्वी वृत्ति वृद्धिगत नहीं होती। अव तक का अनुभव है कि हृदय की वह अगार सर्व साधारण को असहनीय होती है। एक सस्कृत सुभाषित में कहा गया है–

'सहसा विदधीत न क्रिया। अविवेक परमापदा पदम्।'

अर्थात् मनुष्य को बिना सोचे-समझे उतावलेपन में कार्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि अविवेक सभी आपत्तियों का स्रोत है।

अतुलनीय सघकार्य

कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि दुनिया में सघ जैसा कार्य कभी हुआ भी है?' हम कहते हैं कि सघ जैसा कार्य दुनिया में कहीं नहीं है। यह तो हमारा मौलिक विचार है। अनेक देशों के स्वतत्रता-प्राप्ति के इतिहास हैं, उनमें सघ जैसा कार्य कहीं भी दिखाई नहीं देता। अन्य देशों के इतिहास हमारे स्फूर्तिदाता नहीं हो सकते। लेकिन विगत सौ वर्षों से हम विदेशियों का अधानुकरण कर रहे हैं। यहाँ के आदोलनों का तत्र, राजनैतिक विचार-प्रवाह विदेशियों की नकल मात्र है। इसलिए स्वत्व पहचाननेवाला कोई धैर्यवान महापुरुष स्वय की प्रतिभा से नया तत्र अपनाकर आगे आता है, तब लोग उसकी उपेक्षा करते हैं। सपूर्णत स्वतत्र प्रतिभा पर आधारित सघकार्य का हमें ज्ञान हो, तो हम अपने कार्यक्रमों से ऊबेंगे नहीं और सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाएँगे। सघ की तुलना अन्य सगठनों से करने का कोई कारण नहीं है।

५ ध्यान देने योग्य बाते

(पुणे, द्वितीय बैठक, १२ मई १९४६)

सर्वांगीण उन्नति का लक्ष्य

हमारा विशुद्ध कार्य जिनपर आधारित है, उन बातों का हमें विचार करना चाहिए। देश में चलनेवाले अन्य कार्यों से सघकार्य भिन्न है। कार्य की निश्चित सफलता की दृष्टि से बिल्कुल स्वतत्र बुद्धि से विचार करके सघ

की स्थापना हुई है। रोज-रोज निर्माण होनेवाली नई-नई परिस्थितियों में जो समस्याएँ सामने आती हैं, उनसे हम उलझ जाते हैं और अकस्मात् कुछ करने की स्फूर्ति पैदा होती है। संघ स्थापना के पूर्व यही समस्याएँ थीं। मन की चंचलता भी थी, परंतु हमारे समाज-जीवन के सभी पहलुओं का विचार कर उसे संपूर्णतः तेजस्वी करने के लिए प्रत्येक के अंतःकरण में देशहितार्थ स्वार्थ के स्थान पर समर्पण की प्रखर भावना जागृत करने के लिए, संघ जैसा स्वतंत्र कार्य करने की आवश्यकता है– यह एक बार विदित हो गया, तो छोटी-मोटी समस्याएँ नहीं रहेंगी।

बंग-भंग आंदोलन के पश्चात् जो अनेक लोग समाज-सेवा के कार्य में आगे आए थे, उनमें से एक कार्यकर्ता मुझे मिले, तब मैंने उनके साथ संघकार्य की चर्चा की। यह मालूम होने पर कि संघ के निर्माता डाक्टर जी हैं, उन्होंने कहा– 'डाक्टर जी हमारे विचारों से सहमत नहीं थे, परंतु उन्होंने अनेक विकट परिस्थितियों में से हमें उबारा था और हमारी भूलें अत्यंत प्रेम से बतलाई थीं। उनका कहना उस समय हमें जँचा नहीं, परंतु अब लगता है कि उनका कहना बिल्कुल सही था।' डाक्टर जी ने सब कार्यों का अनुभव लेने के पश्चात् ही विचारपूर्वक संघकार्य प्रारंभ किया। वे दो बार जेल भी हो आए। उन्होंने आजीवन हिंदू महासभा का भी काम किया, परंतु उस संस्था से संघ को पूर्णतः अलग रखा। हम इन सब बातों पर ध्यान दें, तो संघकार्य की भूमिका हम सहज समझ सकेंगे।

अपने समाज का सब दृष्टि से विचारकर और राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति का भव्य लक्ष्य सामने रखकर हम शक्ति की उपासना निरंतर कर रहे हैं। वह उपासना पूर्ण न होने से ही छोटे-मोटे प्रश्न समय-समय पर पैदा होते हैं तथा हम मामूली बातों में अटके रहते हैं।

विचार समग्रदृष्टि से हो

एक स्वयंसेवक ने कहा– 'रोज दक्ष-आरम् करने का झमेला क्यों? उसके स्थान पर रास्ता साफ करने को कहो।' एक सज्जन ने कहा– 'आप सेवा की बात करते हैं और इधर आपके स्वयंसेवकों ने तीन दिनों से मरे पड़े हुए कुत्ते को नहीं उठाया।' लोग कुछ भी कहें, हमें किसी भी समस्या का विचार संघ की दृष्टि से करना चाहिए। समाज-सेवा का हमारा मार्ग निश्चित है। हिंदू-समाज का तेजस्वी संगठन कर शक्तिशाली राष्ट्र-निर्माण करना हमारा सेवा-कार्य है। एक विद्वान सज्जन ने अपने यहाँ के बाल

स्वयसेवकों से धर्म, वेद आदि के बारे में प्रश्न पूछे। बाल स्वयसेवक उनके प्रश्नों के उत्तर ठीक से नही दे सके। जब वे सज्जन मुझे मिले तब कहने लगे– 'सघ मे अज्ञानी लोग आते हैं।' मैने कहा– 'सघ विद्वानों का सगठन नहीं है। वैसा होता तो आप ही सरसघचालक पद पर विराजमान होते। हम सगठन का व्यवहार जाननेवाले हैं, अन्य विषय हमारे नहीं हैं।' स्वयसेवको के हृदय प्रज्ज्वलित कर उनका अभेद्य सगठन करना अपना कार्य है। दूसरों के समाज-सेवा के अन्य विषय होंगे, हमें उनसे कुछ लेना-देना नहीं है।

अपने जैसे दस निष्ठावान स्वयसेवक बनाना प्रत्येक स्वयसेवक का काम है। उससे अपनी सगठन-शक्ति अजेय होगी। वही सभी समस्याओं का एक ही सतोषजनक उत्तर है। अन्य सेवाकार्यो से लोगों के साथ सपर्क तो स्थापित होता है, परतु वे लोग निरपेक्ष देशसेवा कार्य में सहयोगी बनते ही हैं, ऐसा अनुभव नहीं है। परतु जिनके अत करण में प्रखर ध्येय-निष्ठा प्रज्ज्वलित है, उनके सपर्क से लोग निकट आकर अपने हो जाते हैं। यह अपनी कार्यप्रणाली है, हमें इसे आत्मसात् करना चाहिए।

सघानुकूल बनें

कुछ लोग सोच सकते हैं कि 'ये सारी बातें व्यावहारिक कम, आदर्शवादी अधिक हैं। हम इतना बोझ उठा नहीं सकते। अब हममें परिवर्तन होना असभव है। हम जैसे हैं, वैसे ही सघ में रहेंगे। मगर हमें सोचना चाहिए कि हम राष्ट्र के प्रति प्रामाणिक रहें या अपने लहरी स्वभाव के प्रति। प्रत्येक को निश्चय करना चाहिए कि 'मैं अपने स्वभाव के दोष और दुर्गुणों को दूर कर स्वय को सघानुकूल बनाऊँगा। पशु और निर्जीव वस्तुएँ जैसी होती हैं, वैसी ही दूसरों द्वारा उपयोग में लाई जाती हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह स्वय को योग्य बनाकर श्रेष्ठ काम के लिए अपना उपयोग होने दे। सगठन की इच्छानुसार काम करने की शिक्षा मैंने पूजनीय डाक्टर जी के चरित्र से पाई है। उनकी धारणा थी कि 'मेरी इच्छा के अनुसार सघ नहीं चलेगा, सघ की इच्छानुसार मैं चलूँगा।' हमें उनका अनुसरण करना चाहिए। हमारा दृढ विश्वास हो कि सघ जो-जो कहेगा वह अवश्य होगा। इस विश्वास से ही मैंने सरसघचालक पद का उत्तरदायित्व ग्रहण किया है। मैं इस पद के लायक था या हूँ, ऐसा मुझे कभी नहीं लगा। मेरा विश्वास है कि सघ की इच्छानुसार निष्ठापूर्वक काम किया जाए, तो

जो काम स्वयसेवक के जिम्मे आया हो, उसके अनुरूप उसमें पात्रता आ जाती है।

एकस्तभी सगठन नहीं

लोग कहते थे कि सघ डा हेडगेवार रूपी स्तभ पर खडी इमारत है। उनके तिरोधान के बाद सघ ढह जाएगा। डाक्टर जी की मृत्यु हुई पर सघ टूटा नहीं, बढता ही रहा। इसका कारण है कि सघ में व्यक्ति-निष्ठा नहीं है। स्वयसेवक तो सगठन की इच्छानुसार कार्य करता है। सघ की इच्छाशक्ति का अनुसरण करना हम सब स्वयसेवकों का कर्तव्य है। अपने वयोवृद्ध चाचा आबाजी के स्वभाव-वैचित्र्य के कारण सगठन पर विपरीत परिणाम की आशका से डाक्टर जी ने एक बार उनका ध्यान उस त्रुटि की ओर खींचा था। वृद्धावस्था में भी आबाजी हेडगेवार ने अपने स्वभाव में परिवर्तन किया। आप सब युवक हो, सघकार्य के अनुकूल परिवर्तन आप अपने स्वभाव में लाएँ। महान कार्य के साथ तदाकार होना जीवतता का लक्षण है। आप सकल्प करें कि 'हर बात में मेरा और सगठन का मतैक्य रहेगा, उसके लिए अपनी इच्छा-आकाक्षा सभी छोडनी पडी तो भी आपत्ति नहीं। सघकार्य वृद्धि का यही एकमात्र मार्ग है।

हम भूलें करते हैं। यह स्वाभाविक है। उसके लिये मैं किसी को दोष नहीं दूँगा। परतु दिनोदिन अपना व्यवहार निर्दोष करने का प्रयत्न तो करना चाहिए। प्रत्येक स्वयसेवक सदैव सावधान रहे कि उससे सघ की हानि करनेवाली कोई कृति नहीं होगी। इसके लिए आवश्यक है कि हम अपनी सारी इच्छा-आकाक्षाओं को सघकार्य में विलीन कर दें।

कार्य बढाने का सकल्प

थोडी-बहुत मतभिन्नता स्वयसेवकों में रह सकती है, पहले भी (डाक्टर जी के समय) ऐसी मतभिन्नता थी। परतु अपने कार्यकर्ताओं ने कुशलता से काम कर चारित्र्य के बल पर सघकार्य बढाया। वही प्रखर तेज हममें भी है। इसलिए हमारा प्रभाव पडे बिना नहीं रहेगा। 'मुझे निराशा मालूम नहीं'— कहनेवाले दो-चार ही कार्यकर्ता उस समय थे आज तो हम बडी सख्या में हैं। कितनी भी कठिनाइयाँ आईं तो भी हम सघकार्य कर दिखाएँगे, इस दृढ सकल्प का बल हमें निर्माण करना चाहिए।

दक्षिण भारत में कुछ विरोधियों ने सघ के विरोध में प्रचुर मुद्रित

साहित्य बॉटा था। उन्हें लगा कि इससे सघ नष्ट हो जाएगा। परतु उसके पश्चात् हुए एक जिले के कार्यक्रम में हजार स्वयसेवकों की उपस्थिति देखने के बाद फिर विरोधी प्रचार साहित्य किसी ने नहीं निकाला। कार्य पर हमारी दृढ निष्ठा हो तो अदम्य आशावाद पैदा होता है कि हम निश्चय ही सफल होंगे।

सघ में कोई आज आएगा तो कोई कल आएगा। हमारा काम तत्त्वनिष्ठा पर आधारित है इसलिए जो आज हमारा नहीं है, वह कल हमारा होगा, यह धारणा रखकर सघकार्य बढाना चाहिए।

६ आत्मीयता का बोध

(पुणे, सन् १९४७)

आपको ज्ञात ही है कि सघ का कार्य निरतर बढ रहा है। यह विस्तार हिमालय से कन्याकुमारी तक हो गया है। इस विस्तार की तुलना में प्रवास हेतु अत्याधुनिक साधन भी कम पडते हैं। सब शाखाओं को भेंट देने में मेरा जीवन भी कम पडेगा। इसलिए समयाभाव के कारण प्रात स्तर या कभी जिला स्तर पर स्वयसेवकों को एकत्रित कर समक्ष भेंट आयोजित करनी होती है। और इस तरह स्वयसेवकों को एकत्र देखने की हार्दिक इच्छा की पूर्ति होती है। कारण यह है कि जिस सगठन में मेरा पोषण हुआ है उसमें अत करण को ऐसी ही शिक्षा मिली है। पूर्ण सृष्टि एक साथ देखने को मिलने पर हृदय की विशालता बढती है, साथ ही परस्पर आत्मीयता का बोध भी होता है। प्रत्यक्ष इस आत्मीयता का अनुभव हो इसलिए यह प्रयत्न है।

अभी तक व्यापार व आर्थिक राजकीय प्रश्न हल करने के लिए लोगों को एकत्र आते हमने देखा है। वैसे एकत्रित होने का एकमात्र उद्देश्य अपने प्रयोजन सिद्ध करना है। हमारी सस्कृति की शिक्षा इसके विपरीत है। महान ऋषि याज्ञवल्क्य व उनकी पत्नी मैत्रेयी के सवाद का उल्लेख वेदात में आया है। उससे यह स्पष्ट होता है कि प्रेम वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मनिष्ठ होता है और यह आत्मीयता के सबध ही हमें परस्पर बॉध सकते हैं। हम समाज के प्रति इसलिए आकृष्ट नहीं होते, क्योंकि ऐहिक उद्दिष्ट से खाने को मिलता हैं या कपडा पहनने को मिलता है। बल्कि आत्मा के लगाव से जो प्रेम सबध निर्मित होते हैं, उनसे हम समाज की

ओर आकर्षित होते हैं। बल्कि, आत्मा के लगाव से जो प्रेम संबंध निर्मित होते हैं, उनसे हम समाज की ओर आकर्षित होते हैं। हम स्वयंसेवक होते हैं, किसी संस्था को मात्र चलाने या तोड़ने के लिए संगठित नहीं होते।

आत्मीयता की अनुभूति

संघकार्य निरंतर बढ़ रहा है। इस निमित्त अनेक लोग एकत्र आते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रकृति के अनुरूप प्रसन्न होकर किसी कार्य को अंगीकार करता है। यह बाह्य रूप से देखने पर दिखाई नहीं देगा। प्रथम, हृदय शुद्ध व परिपुष्ट कर हम यह आत्मानुभूति लेते हैं। हम दृढ़ तप से अंत:करण में हिंदू समाज का एकत्र दर्शन कर सकते हैं। आँखें दो हैं, पर दृश्य एक ही दिखाई देता है। दोनों कानों को एक ही शब्द सुनाई देता है। समाजशरीर में अधिष्ठानभूत आत्मा को जानने का ही हम प्रयास करते हैं। हमारे प्राचीन समाज की आत्मा वही है। हमें नवीन आत्मा का निर्माण नहीं करना है। प्राचीन होते हुए भी हिंदू समाज चिर तरुण है, चैतन्य का पुनर्निर्माण नहीं होता। कुछ लोगों को ऐसा लगता है कि वे नवीन चैतन्य का निर्माण कर रहे हैं। परन्तु जो नवनिर्मित होता है, वह अमर नहीं होता। नवनिर्मित वस्तु कुछ ही दिनों में नष्ट हो जाती है। जो रचना अमर होती है, उसपर देश-काल-परिस्थिति का परिणाम नहीं होता। हमारे समाज की आत्मा अमर है।

कुछ लोग कहते हैं कि इस समाज में कई प्रवाह आकर मिले हैं, तब यह शुद्ध कैसे है? यह बात सच है कि वेगवान प्रवाह की भाँति हिंदू समाज के प्रवाह में अनेक प्रवाह आकर मिले हैं। फिर भी उनसे समाज का शुद्ध स्वरूप नष्ट नहीं हुआ और न ही वह कभी नष्ट होगा। यह समाज तो पुराने ही नाम से जाना जाता है। प्रवाहित गंगा नदी में अनेक छोटे-बड़े प्रवाह मिल जाने से गंगा नदी की शुद्धता व पवित्रता नष्ट हो ही नहीं सकती। पापनाशक रूप में ही वह प्रवाहित होती रहती है। उसमें मिलनेवाली मिट्टी से वह अपवित्र नहीं होती। 'एक नदिया एक नार (नाला) कहावत मैलो नीर भर्यो। जब दोऊ मिली एक बरण भइ सुरसरि नाम परयो।'

एकात्मता राष्ट्र का आधार

यमुना का प्रवाह गंगा से कितना बड़ा है, परंतु जिस प्रयाग क्षेत्र में गंगा-यमुना का संगम होता है वहाँ से काशी विश्वनाथ की ओर बढ़ते

प्रवाह को यमुना न कहते हुए गगा ही कहा जाता है। इस हिंदू समाज में यद्यपि अनेक जीवन-प्रवाह आकर मिले हैं, फिर भी वे इस प्रवाह में आकर हिंदुत्व के साथ एकाकार होकर शुद्ध हो गए हैं। फिर, उनका अलग रूप नहीं रहता। इस प्रकार तादात्म्य पाकर अधिष्ठानभूत हुई जीवनशैली एकीकृत होने पर उसकी अनुभूति करनी होती है। अन्य शब्दों में, इस जीवन-प्रणाली को 'हिंदू सस्कृति' कहते हैं। समाज के दैनंदिन व्यवहार में इसे ही 'राष्ट्र' कहा जाता है। उस राष्ट्रव्यवहार के लिए पूर्व उल्लिखित एकात्मता ही आदर्श रीति है। उसका सृजन कर अपनी नि स्वार्थ बुद्धि से राष्ट्रपुरुष को अमर बनाना है। इसी जन्म में हम सार्थक करेंगे, ऐसी हमारी उत्कट इच्छा है।

आत्मविस्मृति विघटन का कारण

किसी भी राष्ट्र में छोटे से बड़े तक सबमें एक ही आत्मा वास करती है। अत सबके प्रति एक सी आत्मीयता का अनुभव होता है। सस्कृतिरूप एक हुए समाज का व्यक्तिरूप भिन्न होते हुए भी चिरजीव राष्ट्रपुरुष के नाते होनेवाला व्यवहार शुद्ध, स्वार्थ से परे, प्रेम व अपनत्व से हो सकता है, हृदय का यह भाव व यह असामान्य अपनत्व निर्मित होने पर समाज में सब बातें योग्य रीति से सपन्न होंगी। सफलता प्राप्त करने की अभिप्सा पूर्ण होगी, पराक्रम वृद्धिगत होगा, द्रव्योत्पादन में हम पीछे नहीं रहेंगे। आज अपनी आत्मा से अनभिज्ञ यह हिंदू समाज छिन्न-विच्छिन्न, पद-दलित व भीरू हो गया है। इन विशेषणों का उपयोग मैं सोच-समझकर कर रहा हूं। इस कार्य में रत होते हुए लाखों ही नहीं, करोड़ों लोगों से हुई चर्चा व उनकी भावनाएँ जानकर अनुभव पर आधारित तथ्य ही प्रकट कर रहा हूँ। लोग अपने आप को हिंदू कहने के लिए तैयार नहीं, हिंदू कहलाने में उन्हें लज्जा का बोध होता है। हिंदुत्व भूलने को ही सभ्यता माननेवाले अनेक सप्रदायों का निर्माण हुआ है। धार्मिक उत्कर्ष प्राप्त करने के लिए आर्य समाज का सृजन हुआ, परतु उसके अनुयायी स्वय को हिंदू से अलग मानने लगे। सिख व ब्रह्म समाज का जन्म हुआ और वे स्वय को हिंदुओं से अलग मानते हुए स्वतत्र सप्रदाय बन गए। अपने समाज में एकता की भावना निर्माण हो, स्वाभिमान में वृद्धि हो भेदभाव नष्ट हो, ऐसे उच्चादर्शों से प्रेरित उद्दिष्ट साध्य करने के लिए निकले लोग स्वय को हिंदू कहलाने के लिए तैयार नहीं हैं– ऐसा जो चित्र दिखाई देता है, उसका कारण 'आत्मविस्मृति' ही है। वेदों को अति पवित्र माननेवाले आर्य समाजी हिंदू

शब्द पर वाद-विवाद करने के लिए मेरे पास आते हैं। ईश्वर की कृपा से मैं विद्वान नहीं हूँ अत उनसे वाद करना सभव नहीं होता। इस देश में एक समय ऐसा भी था, जब सब ओर यज्ञों का भयकर आडबर प्रचलित था। उसमें होनेवाली पशु-हत्या (बलि), मद्य, मास-सेवन तथा भोगलिप्सा वृद्धिगत होकर समाज में पशुभाव बढ रहा था। उसे नियन्त्रित करना आवश्यक था। परिणामत भगवान बुद्ध का अवतरण हुआ। उन्होंने हिंदू का विशुद्ध तत्त्वज्ञान समक्ष रखकर समाज का मार्गदर्शन करने का प्रयास किया। कालातर में 'हम ही केवल शुद्ध', इस अह को लेकर अपना अलग समूह स्थापित कर स्वार्थ सिद्ध करने की इच्छा बौद्ध सप्रदाय को हुई। इसका कारण भी आत्मविस्मृति है। इस प्रकार सस्कृतिरूप एक हिन्दू समाज के स्थान पर अनेक पथ उत्पन्न होकर समाज विभक्त होने लगा। पूर्वजों का स्मरण कर अभिमान जागृत होने के स्थान पर उससे दूर जाने की प्रवृत्ति बढने लगी। आत्मा को जागृत करने का प्रयास नष्ट हुआ, उत्तम तत्त्व त्याज्य लगने लगे, मानवता का आकर्षण समाप्त हुआ, आत्मा की उपासना बद हुई, अपने वैयक्तिक व्यवहार में ही लिप्त रहने की प्रवृत्ति बढी और स्वार्थनिरपेक्ष जीवन-क्रम नष्ट हुआ। इन सबका एकमात्र कारण था आत्मविस्मृति। हम सघकार्य के माध्यम से इसी आत्मविस्मृति को दूर करना चाहते हैं।

इस सघकार्य में कहीं भी वैचारिक भ्राति नहीं है। जिनके मन में आत्मविस्मृति का दोष है, उन्हीं के मन में भ्राति के सिवाय और कुछ हो नहीं सकता। इस सबध में एक रोचक घटना याद आती है। कुछ समय पूर्व एक विद्वान नेता ने हिंदूराष्ट्र-कल्पना पर आघात करने का खूब प्रयत्न किया। वास्तव में इस सबध में मतप्रदर्शन के लिए किसी ने भी उन्हें नहीं कहा था, परतु 'अपनी ही पदचाप कहे पीछे कौन आया'— ऐसी स्थिति उस नेता की हुई दिखती है। इस प्रकार मन की भ्रात अवस्था का सुदर उदाहरण 'डॉन क्विग्जोट' उपन्यास में आया है। उपन्यास का नायक प्रवास करते-करते एक देश में पहुँचता है। वहाँ वह पवन चक्की देखता है। उसे लगा कि यह चार हाथवाला कोई राक्षस है। हाथ में भाला लेकर घोडे पर सवार होकर वह पवन चक्की के पास पहुँचा और अपने काल्पनिक शत्रु पर भाले से आक्रमण किया। परतु भाला पखों में फँस जाने के कारण उसे चार चक्कर लगाने पडे। आघात करनेवाले इस नेता की दशा ऐसी ही है। अस्तु उन्हें उनके हाल पर छोडिए।

हिंदूराष्ट्र की कल्पना योग्य नहीं— इस विषय पर यहाँ के एक

समाचार-पत्र में एक लेख प्रकाशित हुआ था। मेरे मित्र ने मुझे पढकर सुनाया। लेख में कहा गया था कि 'यदि हिंदूराष्ट्र हो गया तो ईसाई, दलित, बौद्ध, सिख व जैन का क्या होगा?' जिन विदेशी ईसाइयों ने इस देश का योजनाबद्ध खच्चीकरण किया, उनके प्रति कितनी आत्मीयता! देश का उद्धार करने का हमने ही ठेका लिया है, ऐसे स्वनामधन्य लेखक जब पूछते हैं कि 'अछूतों का क्या होगा?' क्या उस समय इसका ज्ञान उन्हें नहीं रहता कि अस्पृश्य हिंदुओ से अलग नहीं हैं? ऐसा कहना पडेगा कि उन्हें इस देश की आत्मा का साक्षात्कार ही नहीं हुआ है। जिन साहसी वीर सिखों ने क्षात्रवृत्ति का परिपालन करते हुए विदेशी आक्रामकों व जगली कबाइलियों को सीमा पार किया और ऋषियों के यज्ञों से पुनीत पचनद भूमि शत्रुओं से छीनकर उसकी पवित्रता स्थिर रखी, वे सिख बाधव उन्हें अपने सबधी नहीं लगते। यज्ञ-विधान में होनेवाली हत्या से पशुत्व की ओर जानेवाले हिंदू समाज को पुन पटरी पर लाने का प्रयत्न करनेवाले युग प्रवर्तक जैन व बौद्ध इस लेखक महाशय को हिंदू नहीं दिखाई देते। इस तरह आत्मविस्मृत हिंदू समाज छिन्न-विच्छिन्न जीवन जी रहा है। परिणामत समाज में एकरूपता उत्पन्न नहीं होती, उल्टे अलगाव फैलाने का कार्य हो रहा है। बीमारी का योग्य औषधोपचार होने के स्थान पर रोग को बढानेवाली दवाई दी जा रही है। हिंदू समाज बलशाली सामर्थ्यवान हो, इसके लिए रोग के मूल कारण का निदान न कर 'भिक्षा देहि' की याचना कर रहे हैं। अपने समाज जीवन से विमुख न होते हुए ममत्व व एकत्व से यह समाज उठ खडा हो, यह ऐक्य का मूलमत्र धारण न कर, रोगी पर जिस प्रकार नए प्रयोग किए जाते हैं, उसी प्रकार शक्ति-क्षीण हिंदू समाज पर आए दिन नए-नए प्रयोग कर उसकी अवस्था शोचनीय स्थिति तक पहुँचा दी गई है। परकीयों को निकट लाकर तथा स्वजनों को ठुकराकर हम राष्ट्रद्रोह कर रहे हैं, ऐसी इन महाशयों को तन्मात्र कल्पना नहीं। ऐसी महान विपत्ति में भी यह समाज अपने स्वत्व को लेकर जीवित है।

पाश्चात्य देशों का अंधानुकरण

पाश्चात्य देशों में प्रतिदिन नए सामाजिक प्रयोग शुरू हैं। रूस भी इसका अपवाद नहीं। वे भी राष्ट्रवाद और धार्मिक उत्थान के बारे में विचार व्यक्त करने लगे हैं। उनमें पूर्ण ससार पर प्रभुत्व जमाने की लालसा दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है। मेरे एक मित्र रूस गए थे। लौटने के बाद

वे मुझसे कहने लगे– 'आप रशिया जैसे प्रयोग भारत में क्यों नहीं करते? परंतु यह मूलभूत भ्रांति होगी कि उस भ्रामक धारणा के आधार पर पूरा संसार में नंदनवन बन जाएगा। आजकल बुढ़िया भी युवा साजसज्जा कर तरुणी दिखाई देने की व्यर्थ चेष्टा करती है। श्री सी.वी. रमण रशिया गए थे। उनके अनुभव भी इसी तरह के हैं। रूस में भ्रमण करनेवाले अतिथियों को केवल आदर्श स्थान दिखाए जाते हैं। जो छुपाना है, वहाँ से ६०-७० मील गति से यात्री वाहन आगे बढ़ता है। इस कारण यात्री अवांछित दृश्य नहीं देख पाता। भारत में भी इस प्रकार के 'आदर्श गाँव' निर्माण करने का प्रयोग शासकों ने किया था। इस प्रकार अंधानुकरण से समस्याओं का निराकरण नहीं होगा। हमें अपनी सूझ-बूझ से अपनी समस्याओं का समाधान ढूँढना होगा। हमारा समाज अपना आत्मविश्वास खो बैठा है। कुछ लोग कहते हैं कि २५ साल के पराक्रम से हमने स्वातंत्र्य प्राप्त किया। यह तो बिल्ली के भाग्य से छींका टूटकर उसे दूध प्राप्त होने जैसा है। छींके के टूटने से बिल्ली का प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध नहीं है। यथार्थ में यह स्वातंत्र्य होता तो दूरदराज भटकनेवाले भिखारी को भी 'मैं स्वतंत्र हूँ' इसका अनुभव अवश्य होता। परंतु इसके विपरीत आतंक व भय का बोलबाला है। हमारे शासक दबी आवाज में कहते हैं–'भाइयो, जोर से मत बोलो, नहीं तो स्वतंत्रता खतरे में पड़ जाएगी। बंग भंग का आंदोलन चल रहा था तब एक महानुभाव ने डाक्टर साहब से कहा 'स्वतंत्रता तो साधारण बात है, यह चंद मिनटों में हासिल की जा सकती है। डाक्टर साहब ने कहा– 'इस प्रकार प्राप्त स्वतंत्रता उतनी ही क्षणभंगुर होगी।' केवल 'स्वतंत्रता' शब्द के सिवाय पिछले ४० वर्षों में हमें कोई ठोस लाभ नहीं हुआ। हिंदुओं का सामाजिक जीवन ध्वस्त करने के लिए ही स्वातंत्र्य व सत्ता का दुरुपयोग हुआ है। स्वयं को हिंदू-राष्ट्र कहने से हमने ही निर्माण किए हुए शत्रुराष्ट्र में क्षोभ होगा इस बात का उन्हें डर है। स्वयंसेवकों के किए हुए अच्छे कामों से हमारे राजनीतिज्ञ भलीभाँति परिचित हैं, परंतु पक्षीय अभिनिवेश इसे स्वीकार नहीं करने देता। भारत का मुसलमानबहुल प्रदेश पृथक करने के बाद शेष भाग को हिंदुस्थान नहीं कहें तो क्या डोमिनियन अथवा यूनियन ऑफ रेस्ट ऑफ इंडिया कहें? पाकिस्तान को अलग करने के बाद बाकी स्थान में भी ३५ करोड़ हिंदू जाता है। इसके बावजूद उसके शीर्षस्थ लोग निराशा व भय से क्यों ग्रसित हैं– यह समझ में नहीं आता?

सघ-स्वयसेवकों ने अनेकों हिंदुओं को सरक्षण दिया। प्राणों की वाजी लगाकर और समय आने पर वलिदान देकर लाखों हिंदुओं को सुरक्षित भारत लाए। परतु उस सवध में वर्णन करते हुए एक अखवार ने लिखा, 'It is sad and unfortunate but true', क्योंकि वह काम सघ ने किया था। अकाली दल और सघ-स्वयसेवकों ने लाखों को सरक्षण दिया। मानो यह उनका दोष था। अपने ही देश में जन्मे, परतु आत्माहीन स्टॅलिन गोत्र के वधु तथा क्षुद्र राजकीय स्वार्थ से प्रेरित आत्मविस्मृत लोगों को सघ के इस कार्य से दु ख होना स्वाभाविक था। उन्हें केवल यह डर है कि चुनाव में उन्हें निर्वासित वधुओं के मत नहीं मिलेंगे। हमने तो समाज में आत्मसाक्षात्कार निर्माण किया, एकात्मता का भाव जगाया। वह भी खेल-खेल में, कुछ अलग से प्रयास नहीं करने पडे, कोई प्रलोभन नहीं था। हर हिंदू मेरा है– अत करण में इस आत्मीयता के कारण असभव को सभव कर दिखाया। इन मानवीय सहायता कार्यो से वास्तव में आनद होना चाहिए था। पर इससे जिन्हें दु ख हुआ उनके मन में था कि इस काम का श्रेय सघ को जाएगा।

मैं प्रवास में अनेक हिंदू वधुओं से मिलता हूँ, फिर चाहे वह किसी भी राजनैतिक दल के हों। एक वार एक विधानसभा सदस्य मुझसे कहने लगे– 'सघ मिट्टी में मिल जाना चाहिए, नष्ट हो जाना चाहिए। मैंने कहा– 'मुझे मान्य है, यदि आप यह अभिवचन देते हैं और उसके लिए कार्यप्रवण होते हैं कि सघ के समाप्त होने से एक सगठित राष्ट्र खडा होगा। वे कहने लगे– 'सत्य वात यह है कि सत्कर्म का श्रेय सघ को जाने से राजनीति में हमें कोई अवसर नहीं रहता।'

सघ का लोकप्रियता प्राप्त करने का उद्देश्य नहीं है। अगर वह होता तो क्या हमारे पास पर्याप्त साधन नहीं थे। सहस्रावधि स्वयसेवक हमारे पास हैं। परतु लोकप्रियता पाना हमारे सगठन का हेतु नहीं हो सकता। अतीव प्रसिद्धि-पराङ्मुख सघनिर्माता महापुरुष का आदर्श हमारे सामने है। प्रसगोपात सात-सात दिन भूखे रहकर डाक्टर जी ने देशकार्य किया, वह गले में माला पहनाई जाए– इस इच्छा से नहीं। नेता बनकर फोटो छपवाने के लिये नहीं। हम उनके ही अनुयायी हैं।

सप्रति हिंदुस्थान में राजनीति से प्रेरित अप्रामाणिकता से काम

करेनवालों का बोलवाला चल रहा है। अपना घर-बार छोडकर आए निर्वासित बधुओं के विषय में आत्मीयता-भरा व्यवहार नहीं है। कोई कह रहे हैं कि इन्हें पनाह देकर हम जनता में क्षोभ निर्माण कर रहे हैं। स्वय ही यह अच्छा, वह बुरा– ऐसा निर्णय देकर टीका-टिप्पणी कर रहे हैं। पर वे अपने सीने पर हाथ रखकर कहें कि उनके विचार स्वार्थ से भरे नहीं हैं, अधिकार लालसा से युक्त नहीं हैं। जो हमारे यहाँ आए, उनके दु ख से क्या हमारे मन में पीडा उत्पन्न नहीं होनी चाहिए? उसका निवारण नहीं करना चाहिए? उनके दु ख-दर्द से वास्तव में हमारी ऑखों में रक्ताश्रु आने चाहिए। पर अनुभूति न होने से राजनीति खेली जा रही है। ऐसा लगता है मानो इस समाजरूपी शरीर से आत्मा निकल गई है।

२२ वर्ष पूर्व हमारे क्रातदर्शी सघनिर्माता ने जो कार्य प्रारभ किया उसकी कितनी नितात आवश्यकता है इसका आज अनुभव हो रहा है। सद्य परिस्थिति डाक्टर साहब का अमरत्व सिद्ध कर रही है।

राजसत्ता साधन है, साध्य नहीं

भाषा, सप्रदाय, प्रात-भेदों के कारण जीती हुई भूमि दूसरों को देनी पडी– यह वास्तविकता है। फिर भी अत करण की एकात्मता निर्माण करने के स्थान पर प्राताभिमान बढता दिखाई दे रहा है। प्रत्येक प्रात स्वायत्तता की मागकर देश को दुर्बल बनाने के प्रयास कर रहा है। एकात्मता के साक्षात्कार के स्थान पर भिन्नत्व का जय-जयकर धुरधर नेतागण भी कर रहे हैं। धर्म के अधिष्टान के स्थान पर भोगवादिता और सुखासीनता का अधिष्टान थोपा जा रहा है।

सपूर्ण विश्व को मार्गदर्शन करनेवाले हिंदू तत्त्वज्ञान को, जीवन-प्रणाली को आधार मिले, राष्ट्रीय आत्मा का पावित्र्य बढे, दिव्य तत्त्वज्ञान का प्रसार हो– इसलिए स्वराज्य व्यवस्था होती है? राजसत्ता साध्य नहीं, साधन मात्र है और साधन कभी साध्य नहीं हो सकता।

जिन्होंने हिंदू राष्ट्रजीवन की अनुभूति कराई, एकात्मता निर्माण की, उन डाक्टर जी के प्रति हमें असामान्य आदर है। ऐसे क्रातदर्शी युगपुरुष सघजीवन का उद्गम हैं। प्रत्येक हिंदू हृदय में एकात्मता का भाव निर्माण होने तक इस भूतल पर यह कार्य चलता रहेगा। जिस दिन आसेतु हिमाचल फैला यह भारतवर्ष और अथाह सागर जैसा फैला यह हिंदू समाज एकात्मता की अनुभूति से नवचैतन्यपूर्ण होगा, उस दिन भाग्यरवि अपने

राष्ट्र पर चिरस्थायी होगा। उस भाग्यरवि का उदय होने तक सघ का प्रत्येक घटक, सघ के प्रति आत्मीयता रखनेवाले सब लोग कठोर वज्रनिश्चय से, सासारिक सुख की चाह से दूर, ध्येय साधना में निमग्न होकर आत्मसात्क्षाकार होने तक विश्राम नहीं करेंगे।

सघ और समाज एकरूप हो

सत्कार्य करनेवालों को सकटों का सामना करना ही पडता है। मोह और आकाक्षा से परे होकर कर्तव्यबुद्धि से कार्य करने से सकट छँट जाते हैं। चिरतन भारतीयत्व हमारी आत्मा है। विदेशी आक्राताओं ने जब-जब हमपर आक्रमण किया, तब-तब गेंद की तरह उतनी ही ताकत से उछलकर हमने उन्हें परास्त किया। रोज बदलते अधिष्ठान पर सघ की नींव नहीं है। हिंदू जीवन को परिपूर्ण करने हेतु हमें जो भी कष्ट सहन करने पडेंगे, सहेंगे। निर्भयता से कार्य करते रहेंगे। मुझे विश्वास है कि सघकार्य हर घर तक पहुँचेगा। भगवान से मेरी प्रार्थना है कि हमारे सभी विरोधियों को दीर्घ आयुरारोग्य प्रदान करे। वे भी एक दिन हमारे सहकारी बनेंगे। रावण की मृत्यु के पश्चात् उसके शरीर से निकली आत्मज्योति रामचैतन्य से एकरूप हो गई थी। राम के हाथों मुक्ति का भाग्य रावण को मिला। हमारा भी वैसा ही निश्चय है। सपूर्ण हिंदू समाज को हम इस सगठन मे समा लेगे। भारतीय जीवन पर से आत्मविस्मृति के परिणाम स्वप्रयत्न से हटा देंगे।

सघ और समाज एकरूप होंगे, जैसे दूध में शक्कर। दूध में घुल जाने का बाद शक्कर का अस्तित्व नहीं रहता, पर दूध का हर बिंदु शक्कर सा मधुर हो जाता है। सृष्टि के हर कण में चैतन्य भरा है पर उसे अलग-अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनमें भेद रहता ही नहीं। हमें न किसी से स्पर्धा करनी है, न किसी से द्वेष है। हमारा आदर्श तो विष्णुगुप्त चाणक्य का है, जिसने सिकदर को परास्त करके चद्रगुप्त का साम्राज्य प्रस्थापित कर एक कपर्दिक (पैसे) की भी अभिलाषा न रखते हुए हिमालय में प्रयाण किया था। हमारा आदर्श तो शृंगेरी मठ के विद्यारण्य स्वामी हैं, जिन्होंने विजयनगर की स्थापना के पश्चात् एक पर्णकुटि में जीवनयापन किया। लोभ-लालसा हमें स्पर्श तक नहीं कर सकती। स्वयसेवकों को आत्मीयता की, प्रेम की उपासना करनी चाहिए। भगवाध्वज की अदृश्य यज्ञशिखा में स्वय आहुति बनकर यह कार्य करना है। मान-सम्मान की

अपेक्षा नहीं, शिखर पर विराजमान होने की आकाक्षा नहीं, हृदय-सिहासन पर भारतमाता का स्थापन कर इस राष्ट्रमंदिर की नींव का पत्थर बनने की आकाक्षा मात्र हम रखते हैं। मन की क्षुद्र भावनाओं को त्यागकर, ईश्वर पर सपूर्ण निष्ठा रखकर इस महान कार्य में सभी अविलब जुटें, यही अपेक्षा है।

७ स्वयसेवको से युद्धकालीन अपेक्षाएँ

(सन् १९६२ में भारत-चीन युद्ध के समय स्वयसेवकों से की गई अपेक्षाएँ)

स्वदेश पर आया हुआ सकट अब उग्र रूप धारण कर अपनी सीमा में अधिकाधिक अदर घुसता जा रहा है। सभी देशवासियों ने आपसी मतभेद भुलाकर शासन को इस आक्रमण को परास्त करने के कर्तव्य में एक हृदय से सहाय एव समर्थन देना चाहिए ताकि शासनकर्ताओं के अत करण में उत्साह, आत्मविश्वास तथा धैर्य बना रहे। सपूर्ण यशप्राप्ति तक आवश्यक सघर्ष करते रहने का धैर्य अविचल रहे, इस हेतु सतर्कता से प्रयत्न करना आवश्यक है।

आज की परिस्थिति अनपेक्षित नहीं थी। इसकी स्पष्ट चेतावनी वर्षों से सबको दी जा रही है। अब इस सकटकालीन अवस्था में हम सब स्वयसेवक बधुओं को अपनी पूर्ण शक्ति, बुद्धि लगाकर अपना कर्तव्य पूरा करना है।

१ सर्वप्रमुख कर्तव्य अपनी शाखाओं का सुचारु रूप से सचालन कर समाज बधुओं के हृदय में यह सगठित शक्ति अपनी है ऐसा आत्मीयता युक्त विश्वास निर्माण कर ढाँढस बँधाना चाहिए। इस हेतु शाखाएँ नित्य वृद्धि को प्राप्त कर अधिकाधिक मात्रा में समाजव्यापी हों इस ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। जिस परिस्थिति की हम लोग पूर्व सूचना देते आए हैं, वह स्पष्ट होती जा रही है। इस बात को समझाकर कि अपने विचार व कार्यप्रणाली, राष्ट्र समस्याओं के अचूक निदान हैं। इस सत्य का विश्वास जगाकर नवनवीन बधुओं के तथा किसी कारणवश शिथिल बने हुए पुराने सहयोगियों को साथ लाने का लगन से प्रयत्न करना आवश्यक है।

२ समता के कार्यक्रम का अभ्यास विशेष उत्तमता से होना

चाहिए। क्योंकि शासन के आह्वान पर सैन्य-वृद्धि करनी पडे, तो प्राथमिक अनुशासन का अभ्यास किए हुए तरुणों की पूर्ति कर सकने से अत्यल्प काल में उन्हें युद्धक्षम बनाने में शासन को सुगमता होगी।

३ प्रत्येक नगर के प्रत्येक मुहल्ले तथा अधिकाधिक ग्रामों में नागरिकों को सगठित कर एकता का वायुमडल निर्माण कर सबको अहोरात्र सतर्कता, शाति एव सुव्यवस्था अभग रखने के लिए प्रयत्नशील रहने हेतु प्रेरित करते रहें।

४ सभाव्य परिस्थिति की यथायोग्य कल्पना सबको होनी चाहिए। युद्धक्षेत्र अधिक उग्र एव व्यापक हो सकता है। आक्रामकों के समर्थक अपने देश में हैं। वे अनेक प्रकार की उथल-पुथल करने की चेष्टा कर सकते हैं। हडताल आदि करके उत्पादन में बाधा डालना, अनेक आपसी भेद खडेकर झगडे कराना, शाति सुव्यवस्था नष्ट कर शासन के मार्ग में कठिन बाधाएँ उपस्थित करना, विध्वसक कार्य कर युद्ध-सिद्धता में विघ्न डालकर परोक्ष रूप में आक्रामकों को सहाय्य करना, अपने देश के भेद-छिद्र प्रकट कर शत्रु को लाभ पहुँचाना, शासन तत्र में कर्मचारी के रूप में रहकर महत्त्व की मत्रणाओं का शत्रु के पास गोप्यस्फोट करना, शासन की अनेक त्रुटियों का प्रचार कर उसके प्रति अप्रीति उत्पन्न कर जनता को युद्धकार्य में सहायता देने में उदासीन करना, शत्रु की रणनीति की प्रशसा कर उसे मुक्तिदाता, उसकी सेना को मुक्ति सेना आदि आकर्षक सबोधन देकर जनता में सभ्रम उत्पन्न करना, आतक के अतिरजित समाचार फैलाकर घबराहट उत्पन्न कर युद्ध से परावृत्त होने की भीरुता निर्माण करना, शांति, सद्भाव, भाईचारा आदि मधुर शब्दों के जाल में भोले लोगों को [illegible] उन्हें स्वदेशद्रोही शत्रु-समर्थक बनाने की चेष्टा करना इत्यादि [illegible] की गतिविधियाँ हो सकती हैं। उनसे जनता को सतर्क रहने [illegible] तथा ऐसे राष्ट्रघाती प्रयत्न जड में ही नष्ट करने की [illegible] सर्वसमाज में निर्माण करना अपना कर्तव्य है।

५ सर्वसाधारण समाज, भिन्न-भिन्न [illegible] के द्वारा कभी उपेक्षित, अनेक बार पोषित, [illegible] के कारण उत्तेजित होने से उसकी विशेष [illegible] से समझना चाहिए।

राष्ट्रविरोधी शक्तियों द्वारा [illegible]

परिणामस्वरूप अपने पूर्व और पश्चिम में जो पाकिस्तान नाम से राज्य बना है, उसकी नींव में ही भारत के प्रति द्वेष और शत्रुता है, यह बात सुविदित है। भारत के प्रति विषवमन करने तथा आक्रमण करने एक भी सुसंधि वहाँ के नेता हाथ से जाने नहीं देते। विभाजन के तुरत पश्चात् भारतीय नेताओं को आतरिक समस्याओं में उलझा देखकर उन्होंने कश्मीर पर अपना अधिकार करने का प्रयास किया था। उसका परिणाम सबके सामने है।

गत कई वर्षों से असम तथा बगाल में अपने नागरिक घुसाकर सीमाओं पर भारी मात्रा में सैनिक सिद्धता कर तथा कश्मीर व पजाब में यावच्छक्य घुसने के लिए अनुकूल काल की वे मानो प्रतीक्षा कर रहे हैं। चीन को सीमा-पार हटाने के बृहत्प्रयास में भारत को उलझा देखकर 'शत्रु का सकट अपनी सुसधि'— इस नीति पर चलनेवाले पाकिस्तानी नेता आज की भारत की परिस्थिति को अत्यत अनुकूल काल समझें तो आश्चर्य नहीं। भारतीय शासन को सतर्क रह कर ऐसी सिद्धता रखने तथा यथासभव मित्रता का सबध बनाए रखने का प्रयत्न करना पडेगा, ताकि उन्हें ऐसा साहस न हो सके। यह शासन का कर्तव्य है।

सर्वसामान्य जनता को तथा अपने स्वयसेवक बधुओं को इससे सबधित महत्त्व का काम करना है। देशभर में पाकिस्तानी मनोवृत्तिवाले अगणित लोग रहते हैं। कुछ वर्षों से उनके विचार, उनकी गतिविधियाँ सदेहास्पद रही हैं। इनके द्वारा देश भर में या कुछ चुने हुए क्षेत्रों में उथल-पुथल मचाकर, दगा-फसाद खडाकर, शाति सुव्यवस्था नष्ट कर, आतक एव दहशत का वायुमडल निर्माण होना तथा इसके द्वारा पाकिस्तान की आक्रमणकारी नीति का पृष्ठपोषण एव सहायता होना, असभव मानना बडी भूल होगी। विगत कुछ काल से कई प्रातों में इन पाकिस्तानी तत्त्वों ने भारतीय कम्युनिस्टों से मेल किया हुआ है। अनेक प्रातों में तो कम्युनिस्ट चोला भी पहन लिया है। इस परिस्थिति को समझकर सूक्ष्म दृष्टि से सब स्फोटक केंद्रों का पता लगाकर, उनसे जनता को सावधान करना तथा स्थान-स्थान पर समाज की सगठित शक्ति से उनकी अनिष्ट गतिविधियाँ असभव हों, ऐसा प्रभावी जागृत वायुमडल बनाकर रखना अत्यावश्यक है। आज की स्थिति में अपने समाज के राष्ट्र के, शासन की पीठ में कोई अकस्मात छुरा न घोप सके, इतनी दक्षता सबसे अपेक्षित है।

इस कर्तव्य को निभाते समय हिंदू-मुसलमान आदि सामाजिक-धार्मिक विरोध तथा विद्वेष का दूषित वातावरण न बने और

केवल राष्ट्ररक्षा की सद्भावना की उत्कट प्रेरणा जागृत रहे, इसका पूर्ण ध्यान रहना चाहिए।

६ जनता में स्वसामर्थ्य का प्रत्यय जगाकर उसका आत्मविश्वास अडिग रहे, विजय की आकाक्षा से सर्व आवश्यक कर्तव्य पूण करने में अथक उत्साह से जन-मन परिपूरित हो। अपनी अदम्य विजयाकाक्षा से शासनाधिष्ठित नेताओं के धैर्य, विश्वास, सपूर्ण विजयप्राप्ति तक सघर्ष को उग्रतम बनाने का निश्चय वर्द्धमान रखने में जनता सफल हो, ऐसा तेजोमय वायुमडल बनाने की ओर विशेष ध्यान रखना होगा। आतक, भीरुता, पलायनवृत्ति, निराशा आदि पापवृत्तियाँ किसी के हृदय को छू तक न सकें, ऐसी दृढ धीर-वीरता जगाना अपना पवित्र कर्तव्य है।

७ यह कार्य हमें अपनी विशिष्ट पद्धति से ही करना है। प्रदर्शनकारिता, अकारण सभा, सम्मेलन, शोभायात्रादि से यावच्छक्य दूर रहकर, छोटी-छोटी बैठकों के द्वारा अत करण से अत करण मिलाकर, व्यक्ति-व्यक्ति में स्फूर्ति और निश्चय जगाना है। कार्य की अपनी नींव स्नेह तथा आत्मीय भावना है। इसका ही व्यवहार सब सबधों में, बातचीत में, कार्यक्रमों में करना चाहिए। किसी भी दल या व्यक्ति के प्रति अनादरयुक्त शब्द-प्रयोग, अन्य दलों की भूलें हुई और हम ही ठीक करते रहें हैं– इसका अहकारयुक्त उल्लेख, अन्य कार्यो पर दोषारोपण, उनके प्रति घृणा या अप्रीति का निर्माण, कटु शब्दों में किसी की आलोचना इत्यादि सर्वथा त्याज्य है। स्वयसेवक के स्निग्ध व्यवहार में इन अनिष्ट बातों को स्थान नहीं रहना चाहिए। विशेषकर आज की सकटपूर्ण अवस्था में सबका एकरूप समन्वय करने की अनिवार्य आवश्यकता का अनुभव कर इन पथ्यों का निश्चय से पालन करना अत्यावश्यक है।

८ अपने चिरजीव राष्ट्र की दिव्य परपरा का स्मरण कर, उसके विजयी पूर्वपुरुषों के पुण्य चरित्रों का स्मरण कर, भारत की सुरक्षा, समृद्धि तथा परपरा से प्राप्त श्रेष्ठ आध्यात्मिक निधि ही समग्र जगत् की मानवता को जगाकर त्रिविध शातिमय जीवन प्रस्थापित कर सकती है। यही अपने राष्ट्र का जीवन-हेतु है, इस सत्य को अत करण में सदैव जागृत रखकर सद्य कालीन भीषण सकट का सपूर्ण निराकरण करने हेतु अपने उपर्निर्दिष्ट कर्तव्यों में काया, वाचा, मनसा, कर्मणा सब स्वयसेवक बधु जुट जाएँ। यह समय स्वार्थ, भोग, वैचारिक आकाक्षा आदि में लिपटे रहने का नहीं है।

जीवन सर्वस्व से अपने सब गुणों का, शक्तियों का आह्वान कर खून-पसीना एक करके, बिना विश्राम के अविरत परिश्रम करने का समय है। हम स्वयंसेवक बंधुओं की ध्येयनिष्ठा, मातृभूमि की भक्ति इस परिश्रमपूर्ण निःस्वार्थ कर्तव्य पूर्ति की यज्ञाग्नि में विशुद्ध सुवर्ण की भाँति चमक उठे, यही सब कार्यकर्ता तथा आबालवृद्ध स्वयंसेवकों से अपेक्षा है।

卐 卐 卐

८. अनुशासन - संगठन का मूलमंत्र

(कोझिकोड, फरवरी १९६६)

नियम पालन अनिवार्य

श्री भास्करराव ने कहा कि मैं अंग्रेजी में बोलूँ। पर सारा दिन मैं हिंदी में ही विचार करता रहा। इस कारण इस क्षण उन सभी को अंग्रेजी में रूपांतरित करना मेरे लिए बड़ा कठिन हो रहा है। मैं प्रयत्न करता हूँ। इस वर्ष प्रांत शिविर की योजना अपने कार्यकर्ताओं ने की, उसी के अनुसार हम यहाँ एकत्र हुए हैं। आज, कल और बहुत संभव है कि परसों भी यहाँ हम सब साथ-साथ रहेंगे। यह अच्छी बात है कि हम एक-दूसरे से मिल सके। साधारण तौर पर हम अपने-अपने स्थान पर शाखाएँ चलाते हैं। यह एक ऐसा अवसर है कि किसी विशिष्ट उप-विभाग या जिले के स्वयंसेवक ही नहीं, विभिन्न जिलों की शाखाओं के स्वयंसेवक एकत्र आए हैं। ऐसा साधारणतः नहीं होता। यह जरूर है कि महत्त्वपूर्ण कार्यकर्ता मिलते रहते हैं, इसलिए वे एक-दूसरे से परिचित रहते हैं। इस शिविर में अपने प्रांत के विभिन्न क्षेत्रों से आए मित्रों से हम परिचय कर पाएँगे। हमारा कार्य इसी आधार पर चलना है कि समूचा समाज एक है, अर्थात् समाज का प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वह दूसरे जैसा ही है। शरीर अनेक हैं, पर हृदय एक है। यह हमारी मान्यता है। इसे व्यावहारिक रूप देने के लिए निकट संबंध हो, यह आवश्यक है। इस परिचय से अधिकाधिक मित्रों-सहकारियों के साथ सच्चा भ्रातृभाव और स्नेह बढ़ना चाहिए।

यहाँ हमें कुछ नियमों का भी पालन करना होगा। प्रातः उठने का समय निश्चित होता है। विभिन्न कार्यक्रमों में जाने का समय निर्धारित होगा। भोजन, विश्राम प्रत्येक के लिए समय तय होगा। हमें यह देखना होगा कि कोई भूल नहीं हो। हर छोटी-छोटी बात के लिए हम इतना आग्रह

इसलिए करते हैं, क्योंकि हम सगठन का कार्य कर रहे हैं। यह लोगों का जमावडा नहीं है। लोगों को आकर्षित करने की अपनी क्षमता का प्रदर्शन भी नहीं है। हम तो एक सगठन खडा करने जा रहे हैं। एक सगठन और भीड में यह अतर होता है कि भीड के कोई नियम नहीं होते। कोई नियम नहीं होना, यही उसका रूप होता है। वहीं एक सगठन व्यवस्थित, योजनापूर्वक एकत्र आए लोगों का बनता है। ऐसा सगठन बनाने के लिए प्रत्येक कार्य हेतु नियम होते हैं। इन नियमों का पालन करना हमें सीखना होगा। हम इन सभी नियमों का पालन करें, भले ही वे साधारण प्रतीत होते हों। अपने इस शिविर में वह हमारा प्रशिक्षण ही होगा, मार्गदर्शन होगा। इसलिए सब काम समय पर करें, व्यवस्थित करें।

मुक्ति के लिये भी बधन

साधारणत कोई भी स्वय को बधन में रखना नहीं चाहता। मनचाहा व्यवहार करने की छूट हर कोई चाहता है। प्राचीनकाल में ऐसे पूर्ण स्वातत्र्य का विचार किया गया था, जिससे धर्म के, नीति के बधन भी लागू नहीं हों। पर केवल इच्छा रहने मात्र से कुछ नहीं होता। कोई राजा बनने की कल्पना करता है, पर नहीं बन पाता। अग्रेजी में एक कहावत है– 'यदि इच्छाएँ घोडे होतीं, तो भिखारी भी घुडसवारी का आनद लेते।' केवल मुक्त रहने की कामना का व्यावहारिक जगत् में कोई अर्थ नहीं है। यदि कोई मुक्त रहना चाहे तो भी उसे अनुशासन का पालन करना होगा। हमारे धर्म में, दर्शन में प्रत्येक व्यक्ति को आचरण के लिए अनुशासन की सहिता दी गइ है, जिसका पालन करने पर वह मुक्त हो सकता है। इस मुक्ति की कल्पना कैसी भी हो, पर प्रश्न उठता है कि क्या प्रत्येक व्यक्ति इच्छानुसार मनचाहा व्यवहार करे– यह योग्य है? क्या इसके परिणाम अच्छे होंगे? हम अपने गृहस्थ जीवन को ही लें। परिवार का हर व्यक्ति यदि मनचाहा व्यवहार करने लगे, तो घर-गृहस्थी नष्ट हो जाएगी। कोई शाति नहीं रहेगी। खुशियाँ, प्रगति, कुछ नहीं होगा। घर-गृहस्थी में भी मुक्ति या कुछ स्वतत्रता पाने के लिए विशिष्ट अनुशासन का पालन करना पडता है, जिससे पारिवारिक जीवन सुव्यवस्थित रहे, सुखी रहे। उसी प्रकार इस बडे परिवार में हमारे कुछ कर्तव्य हैं। अपने राष्ट्र के सदर्भ में भी हमें कुछ नियमों व अनुशासन का पालन करना होगा ताकि इसका रूप व्यवस्थित रहे और प्रत्येक व्यक्ति उतना स्वातत्र्य पा सके, जो सुरक्षा और प्रगति के लिए आवश्यक हो। यह समझना कठिन नहीं है। अत हमें यह विचार

करना होगा कि हमारे क्रियाकलाप, व्यवहार समाज के लिए कल्याणप्रद हैं या नहीं। एक प्रकार से यह हमारे आचरण की परीक्षा ही है। अपने व्यक्तिगत जीवन का परीक्षण करें, तो अपने अस्तित्व का बोध भी हो सकेगा। हमें अपना घर व्यवस्थित रखना है। इस अपनी विशालभूमि की जनता को, अपनी गतिविधियों से सुव्यवस्थित रखना है तो कुछ नियमों का पालन तो करना होगा। सघ में हम इस बात की शिक्षा ग्रहण करते हैं कि आत्मनियत्रण कैसे करें और अपने जीवन को सभी के कल्याण के लिए कैसे मोड दें। प्रत्येक स्वयसेवक को इस दृष्टि से यह सोचना चाहिए कि पूरे समाज को व्यवस्थित, प्रगतिशील, उन्नत, सुखी और विश्व में सम्मान प्राप्त करने की दृष्टि से हम अपना दैनंदिन व्यवहार करते हैं या नहीं। हमारे समाज का हित और अहित किन विचारों और किन कृत्यों से होता है- यह जानने के लिए अपने दैनंदिन जीवन की समीक्षा करनी चाहिए और समाज का अहित अपने व्यवहार से नहीं हो, इसका ध्यान रखना चाहिए। इस सबध में मैं अधिक विस्तार में नहीं जाऊँगा। प्रत्येक व्यक्ति को स्वय ही इसपर विचार करना चाहिए।

समर्थ होना होगा

हमारे सामने केवल एक ही लक्ष्य है। और वह है सामर्थ्यशाली, आत्मनिर्भर सगठित समाज-अवस्था के लिए कर्तव्य करते रहना। यह कैसे किया जाए और क्या किया जाए, यह प्रश्न उठ सकता है। पर इस विषय में कोई भ्रम नहीं कि यह करना ही है। हम ऐसे ससार में रह रहे हैं, जहाँ हर रोज सघर्ष हो रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति ही नहीं, तो राष्ट्र भी परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध खडे हैं। प्रगति और शाति की कोशिशों के बाद भी समन्वय तथा शाति दूर-दूर तक नजर नहीं आ रही। ऐसे सघर्षमय वातावरण में हम रह रहे हैं। ऐसी स्थिति में प्रत्येक को अपनी सुरक्षा करनी ही होगी। स्वय को दबोचने का मौका दूसरे को देना ही आत्मघात है। हमें अपना अस्तित्व टिकाए रखना है, इतना ही नहीं तो दुनिया उसका अनुभव करे, इसका प्रयत्न करना है। हमारे प्रति वह सम्मान की भावना रखे- ऐसा हमारा प्रयास होना चाहिए। हमारा समाज इस सीधे-सादे सत्य की उपेक्षा कर गया। इसका परिणाम भी हमें काफी समय तक भुगतना पडा।

आज के युग में हर सकट का मुकाबला करने की जिसमें ताकत है, वही विजयी हो पाता है। जिनमें वह शक्ति नहीं होगी, वह तो डूबेगा

ही– यह स्पष्ट है और इसी कारण हमारा कर्तव्य भी उतना ही स्पष्ट है कि वह शक्ति अपने में निर्माण करनी होगी जो प्रत्येक सकट का निराकरण कर सके, प्रत्येक विरोध को नष्ट कर विजयशाली बना सके।

सगठन अनुशासन से

इसके लिए सगठन करना होगा यह सत्य है, पर केवल शाब्दिक रूप में नहीं तो प्रत्यक्ष कार्य करना होगा। ऐसा कार्य हम दैनिक शाखा के माध्यम से करते हैं। इससे हम अनुशासित सगठन साध्य करना चाहते हैं। जब हम रोज एकत्र आते हैं, तब परस्पर परिचय होता है, एक-दूसरे के प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार से अपनत्व निर्माण होता है। परस्पर स्नेह बढता है, दृढ होता है। हम एक-दूसरे के प्रति निकटता अनुभव करने लगते हैं। हम सभी इस समाज के अभिन्न अग हैं– यह भाव निर्माण होता है। सगठित शक्ति अनुशासन से निर्माण होती है, व्यक्तिगत आचरण से होती है। मतलब यह कि अनुशासन सगठन की आत्मा है।

शाखा में योगासन, व्यायाम आदि से हम शारीरिक अनुशासन प्राप्त करते हैं। आजकल पाठशालाओं, कॉलेजों में भी योगासनों से शारीरिक अनुशासन की शिक्षा दी जाने लगी है। पर क्या केवल इसी से काम हो सकेगा? यदि हमारा मन अस्थिर है, अनेकानेक आकर्षण उसे खींच रहे हैं, तब क्या हम अपना लक्ष्य पा सकेंगे? मेरी दृष्टि में ऐसे आकर्षणों के प्रति झुकाव अधिक रहा तो केवल शारीरिक अनुशासन किसी काम का नहीं। शारीरिक अनुशासन को मन के योग्य नियत्रण से ही मजबूत बनाया जा सकता है। मन का यह अनुशासन महत्त्वपूर्ण है। हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि हम सभी का लक्ष्य एक ही है। विचारों की एक दिशा आवश्यक है, अन्यथा हम साथ-साथ खडे नहीं रह पाएँगे। फिर सगठन कैसे होगा? यह वैचारिक शक्ति लक्ष्य को पाने के लिये केंद्रित होनी चाहिए। तभी यह अनुशासन फलद्रुप हुआ कहा जाएगा। समाज के सभी लोगों में यह भाव उत्पन्न करना होगा कि हम सारे समाज को सगठित शक्ति के रूप में खडा करना चाहते हैं। यह राष्ट्रीय एकात्मता निर्माण करना ही हमारा लक्ष्य है, क्योंकि एकात्म समाज ही राष्ट्र को बनाता है।

मानव-कल्याण के लिए राष्ट्र सकल्पना

हमारे यहाँ कुछ लोग राष्ट्र की इस सकल्पना को सकीर्ण कहते हैं। इसे मानवता में बिखराव का कारण मानते हैं, सारे सघर्षो की ज-

हैं। जो तनाव है, शाति का अभाव है, इसी कारण है। हमारे शास्त्र शातिपूर्ण सहअस्तित्त्व का सदेश देते हैं। सारी विविधता के रहते हुए भी अपनी विशेषताओं के साथ जीवनयापन कर सकते हैं, पर सबका लक्ष्य एक ही हो– मानव कल्याण। इसका प्रतिरोध करने का कारण नहीं है। हमारे विचारकों ने कहा है कि प्रत्येक राष्ट्रीयता की अपनी विशिष्ट गुणवत्ता है, विचारों की दिशा है और उसी के माध्यम से, मानव जाति के विकास के लिए वह योगदान दे सकते हैं। इसलिए राष्ट्र का विचार गलत नहीं है। यह तो सैद्धातिक दृष्टिकोण हुआ। वैसे भी यह विचार हमारी गतिविधियों के लिए प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करता है। राष्ट्र के लिए सर्वोच्च त्याग की सिद्धता, सहज एकात्मभाव आदि के लिए कार्यप्रवण होने की प्रेरणा देती है। अन्य बातों से यह परिणाम साध्य नहीं होता। इस महान लक्ष्य के प्रति हम सब अपने बौद्धिक सामर्थ्य का प्रयोग करें।

हम जानते हैं कि यह हमारा देश है, हिंदू-राष्ट्र है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक सारी विविधताओं के साथ हम एकात्म राष्ट्रभाव से बँधे हैं। हम सभी इसमें विश्वास करते हैं। हम सघ के स्वयसेवकों के लिए और कोई कल्पना या विचारपद्धति लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में विघ्न नहीं ला सकती। अत हम जो भी विचार करते हैं, जो भी कार्य करते हैं, इसीपर केंद्रित होता है। यही हमारे कार्य का केंद्र-बिंदु है। यही वह लक्ष्य है जिसके प्रति हम कटिबद्ध हैं। हमें स्वय को यह प्रशिक्षण देना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इस राष्ट्र को विश्व में गौरवशाली तथा वैभवशाली स्थान दिलाने के लिए हमें प्रयत्नशील रहना है। ऐसा सुरक्षित वातावरण बने, जहाँ समस्त मानव कल्याण के लिये हमारी गुणवत्ता बढती रहे। हमारे सारे विचारों की दिशा यही हो। यही विचार सतत रहा तो हम अपने मन-मस्तिष्क को नियन्त्रित कर सकेंगे। अपने शरीर को अनुशासित कर सकेंगे और इन सबके द्वारा राष्ट्र की शक्ति बढा सकेंगे। यही हमारे सगठन का रहस्य है। शक्ति निर्माण के लिए सुसगठित, अनुशासित, शक्तिसपन्न सगठन के लिए हमें नियमों का पालन करना होगा। तपस्या के बिना इस ससार से मुक्ति नहीं।

इसी से हमें शक्ति मिलेगी ओर उसी से राष्ट्र के पुनर्जागरण का हमारा लक्ष्य साध्य हो सकेगा। अपने इस शिविर में हमने थोडा प्रशिक्षण लिया है। इस पद्धति से अधिकाधिक लोगों को सहयोगी बनाना है। ग्रामों में नगरों में जहाँ-जहाँ हिंदू समाज है, उन्हें शाखा में लाएँ। वर्तमान सघर्ष

के युग में अपने सगठित प्रयास से लोगों को एक दृढ सगठन के रूप में खडा करें। अपनी सपूर्ण क्षमता से यथाशीघ्र इसका निर्माण करना है। यह कार्य हमें सद्विचार से करना है, किसी के विरोध में नहीं। किसी के विरोध में काम करना तो सरल है, पर वह आदर्श नहीं। हम अपने लोगों से स्नेह करते हैं, देश से प्रेम करते हैं, अपनी परपरा से हमें लगाव है, भावी जीवन के प्रति हमारी एक कल्पना है, इसी प्रेम से हम प्रेरणा पाते हैं, राष्ट्रनिर्माण के कार्य में जुट जाते हैं। अखिल विश्व में मानव कल्याण की कल्पना करने की अपनी पुरानी परपरा का निर्वाह पुन कर सकें, इसी उद्देश्य से हमें कार्यरत रहना है। मातृभूमि के प्रति श्रद्धा नहीं, परपरा के प्रति अपनत्व नहीं, राष्ट्रीय वृत्ति का पोषण नहीं, ऐसी अस्थायी एकता हमें अपेक्षित नहीं। हम स्थायी सगठन चाहते हैं। इस शिविर के तीन दिनों में जो हमें मार्गदर्शन मिला, उससे प्रेरणा लेकर हम आगे बढें।

९ दैनिक शाखा सघकार्य की नींव

(प्रातीय शिविर, कोझिकोड, फरवरी १९६६)

शिविर से क्या पाया?

इस शिविर में हमारे जो स्वयसेवक बधु उपस्थित नहीं रह सके, वे पूछेंगे ही कि वहाँ क्या-क्या हुआ, हमें क्या मिला? अन्य कार्यक्रमों के बारे में तो बिना किसी कठिनाई के हम बता सकेंगे। सघस्थान पर कल-परसों जो कार्यक्रम हुए, जो बैठकें हुईं, कल शाम को जो सार्वजनिक कार्यक्रम हुआ, वह सभी कुछ हम उन्हें सविस्तार बता सकेंगे। पर इन तीन दिनों में यहाँ एकत्र रहकर हममें से प्रत्येक ने क्या पाया, यह बता पाना कठिन होगा, मगर वह अत्यत महत्त्वपूर्ण है।

हमें क्षेत्र की अपनी सगठन की वर्तमान स्थिति का सम्यक ज्ञान मिला है। यहाँ कितनी शाखाएँ हैं, वे कहाँ-कहाँ हैं, उनका कार्य कैसे चल रहा है, क्या वह सतोषजनक है– ये सभी बातें हमें पता चली होंगी। हमारे प्रमुख कार्यकर्ताओं को वर्तमान कार्य की कल्पना हो चुकी होगी और इससे यह भी ज्ञात हुआ होगा कि हमारा कार्य वाछित प्रगति पर है अथवा नहीं? समय की आवश्यकतानुसार है या नहीं? हमारी आकाक्षा क्या है? समय की जरूरत क्या है? इसे समझकर अपने कार्य का मूल्याकन करें।

कार्य सर्वव्यापी करना है

हम जानते हैं कि हम सारे हिंदुओं का अनुशासित, सुसंगठित, सुदृढ़, अजेय सगठन निर्माण करना चाहते हैं। जब हम 'सारे हिंदुओं का'- कहते हैं, तब हम यह जानते हैं कि हिंदू केवल नगरों और शहरों में ही नहीं रहते, वे इस विशाल देश में सर्वत्र हैं और बहुसख्या में हैं। कुछ तो वन्य क्षेत्रों में भी रहते हैं। वे सभी हमारे बधु हैं। सघ का विचार इन सभी क्षेत्रों में प्रत्येक के पास पहुँचाना है, अन्यथा सारे हिंदुओं का सगठन करने का हमारा निश्चय निरर्थक होगा। स्वाभाविकत: इसके लिए भारी परिश्रम आवश्यक है। उसके लिए हममें से कई को घर से दूर, छोटे स्थानों पर जाना होगा। स्थानीय लोगों के साथ रहना पडेगा। उनका होकर रहना होगा, घरेलू सबध स्थापित करने होंगे। ऐसी घनिष्ठता कायम करनी होगी कि हम अपने विचार उन्हें समझा सकें। यह कार्य प्रयास करने पर ही सभव है। कठिनाइयाँ आएँगी ही, उनसे निपटना होगा। उसके लिए हमारी सिद्धता चाहिए।

शब्द नहीं कृति

कई बार लोग बोलते समय सहज ढग से कहते हैं कि सगठन जरूरी है, कार्य का विस्तार होना ही चाहिए। पर बोलना ही तो सब कुछ नहीं है। वास्तव में ऐसी कोरी बातें करना शब्दों का अपव्यय है। जब तक उन्हें जीवन में नहीं उतारा जाता, तब तक उनका कोई उपयोग नहीं। हमारे कार्य में ऐसी बातों का कोई महत्त्व नहीं। भाषणों में हमारी रुचि नहीं, लगातार बोलते रहने में हमारा विश्वास नहीं, शब्दों के जाल खडे करना हमें भाता नहीं, फिर भी बोलना तो पडता ही है। पर हम निश्चयपूर्वक बोलते हैं और जो बोलते हैं, उसे अपने कार्य द्वारा सजीव रूप देते हैं। अपने कार्य द्वारा जीवन की पद्धति में मोड लाते हैं। इसी से हमारे शब्द अर्थ पाते हैं। वह व्यर्थ की अभिव्यक्ति नहीं रहते। यदि हम निश्चय कर लें तो फिर हमारे जीवन से जुडे पात्र, हमारा पारिवारिक जीवन, हमारे अन्य सारे कतव्य बाधा के रूप में खडे हों, तब भी उनसे निपटना होगा।

सौभाग्य से अपने कतिपय बधुओं का आदर्श हमारे सामने है। उन्हें भी निजी कर्तव्यों का निर्वाह करना पडता है। उनका अपना व्यवसाय है, इसके बाद भी सगठन के कार्य के लिए वे समर्पित रहे हैं, इसके लिए समय निकालते हैं अपनी शक्ति लगाते हैं, स्थान-स्थान पर जाते हैं-

केवल इसीलिये कि अपने सगठन की शाखा वहाँ स्थापित हो। ये उदाहरण हमारे लिए मार्गदर्शक होने चाहिए प्रेरक होने चाहिए।

सघकार्य कैसे करे

कई स्थानों पर ऐसे स्वयसेवक हैं, जिन्हें अपने कार्य का पूरा ज्ञान है, दैनिक शाखा के कार्य का अनुभव है, वे अपनी बात कहने और समझाने में सक्षम हैं। ऐसे सभी स्वयसेवकों को एकत्र लाना होगा। कार्य-विस्तार की योजना बनानी होगी। समूचे प्रात में कार्य फैलाने के लिए उनसे परामर्श करना होगा। उस योजना के अनुसार काय विस्तार की दृष्टि से एक-दो स्थान निश्चित करने होंगे। यह दृढ सकल्प करना होगा कि ऐसे स्थानों पर अपनी शाखा सुव्यवस्थित रूप से स्थापित कर, मजबूत कर, सगठन का कार्य प्रगति-पथ पर ले जाएँगे। अपने काय में हिदुओं को अधिकाधिक सहभागी बनाकर फैलते जाएँगे। निजी काम से अवकाश के प्रत्येक दिन का सदुपयोग कर, उन स्थानों पर जाकर, स्थानीय लोगों के साथ रहकर, उपदेश करनेवाले के रूप में नहीं, बल्कि स्वाभाविक रुप मे उनका बनकर मार्गदर्शन करें। स्वधर्म और सस्कृति के सबध में उनसे बातचीत करें, हमारे जीवन को समृद्ध करनेवाले महान लोगों की जानकारी उन्हें दें। उनके जीवन से हमें मागदर्शन, प्रकाश कैसे मिला-- यह समझाएँ। कठिनाई के समय उनका व्यवहार कैसा रहा-- इसके उदाहरण दें। स्वय भी उस गौरवशाली परपरा का अनुभव करें। उस परपरा की श्रेष्ठता और उज्ज्वल भविष्य को समझें। इस प्रकार के उच्च विचारों से उन्हे जागृत कर हम उन्हें समझाएँ कि हमारी मातृभूमि क्या हे? यह कितनी पवित्र है, यहाँ कितने पवित्र तीर्थ है, ऐतिहासिक तथा धार्मिक दृष्टि से वे कितने महत्त्वपूण है।

इसके साथ प्रत्येक के अत करण मे इस मातृभूमि के प्रति श्रद्धा का भाव जागृत करना होगा। उन्हें समझाना होगा कि इस देश के वासी हम सभी उसके पुत्र रूप में हैं। वे कौन से मूल्य हैं जिनके लिए हजारों लोगों ने स्वय को समर्पित कर दिया। हमारी कितनी सारी भाषाए हैं, अततोगत्वा सभी कैसी एक दूसरे से सबद्ध हैं। समाज की व्यवस्था कैसी है? समाज के रूप का चित्रण उसमें कैसे होता है? ईश्वर की उपासना के हमारे भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। हमारे अलग-अलग स्वभाव के अनुसार वे कैसे ढाले गए हैं। यह सब समझाना होगा, ताकि दृढ एकात्मभाव उनके हृदय में उत्पन्न हो।

उन्हें यह भी समझाना होगा कि भूतकाल में हम कितने समृद्ध थे। आत्मविस्मृति की आज की स्थिति कैसी है। इसमें परिवर्तन करना कैसे

आवश्यक है और शिविर में एक [illegible] आत्मविश्वास, [illegible] से
ऐसे [illegible] है कि सारे हमारे राष्ट्र को समाज की [illegible] से हों। यह
समझाना होगा कि इस ध्यान की पूर्ति के लिए हमें सामर्थ्यशाली बनाना है—
एक-एक व्यक्ति का [illegible] करना होगा। प्रत्येक कार्य में [illegible] देना होगा।

किन्तु यह समझना होगा कि इस शिविर में [illegible] और हम
[illegible] ही हम सब गये हैं जिनको अपने [illegible] पर विश्वास है। इसमें एक
विचार द्वारा लोगों की स्थिति में बदल नहीं होगी। इसी कारण हमें [illegible]
करना है। समझना व लिए आवश्यक [illegible] होगी। आज, जो [illegible]
हों और उन्हें आवश्यक विभिन्न कार्यक्रमों का शिक्षण मिले। हम एक
संगठित अस्तित्व के लिए आवश्यक सभी गुणों को आत्मसात कर सकें।
कुछ अच्छे उत्साही तरुणों का चुनाव कर एक शाखा का गठन करें। एक
ऐसा गुट जो शेष लोगों को एक विशिष्ट स्थान पर एकत्र कर सशक्त और
प्रभावी शाखा का रूप दे सके। उनकी स्थिति कमजोर नहीं पड़े, यह भी
ध्यान देना होगा। अपने समय के प्रति उनका ध्यान लगा रहे। हम जहाँ
कहीं जाएँ समय निकालकर शाखा का निर्माण करना ही होगा। इस कार्य
के लिए समय देना ही होगा। दूर-दूर के क्षेत्र में हमें शाखा स्थापित करनी
है और अपने कार्य को विस्तार तथा सुदृढ़ स्वरूप देकर संगठन कार्य
प्रभावी करना है।

इन तीन दिनों के शिविर में हमने कार्य की दिशा पाई है। हमें योजना बनानी है और उसके अनुसार स्थान निश्चित कर अपना समय तथा शक्ति खर्च कर शाखाएँ स्थापित करनी हैं। आज की परिस्थिति में हम सभी को यह समझना है कि हिंदू समाज की स्थिति गत शताब्दियों में अत्यंत खराब हो चुकी थी। दूसरे लोग हमेशा हमें लूटते-खसोटते रहे हैं। आज भी यही क्रिया जारी है। हमारे लोगों की देखभाल करनेवाला, रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। परिणामत हमारी जीवन-पद्धति का जो विरोध करते हैं, उन तत्त्वों के कारण हमारे अस्तित्व के लिए संकट उत्पन्न हुआ है। हमारे लोगों के साथ दूसरों के दुर्व्यवहार की हम शिकायत ही करते रहें, इसका कोई मतलब नहीं। लोग हम पर आक्रमण करते हैं— यह रुदन हम करना नहीं चाहते। हम पर वे कहर ढाते हैं, पीड़ा देते हैं, इसकी चर्चा भी हम करना नहीं चाहते। वास्तव में हम तो ऐसी बातों की चर्चा से ध्यान हटाना चाहते हैं। हमारे एक मित्र ने जोशीला भाषण दिया था। संभाजी का वध जो औरंगजेब ने करवाया, उसपर बड़ा जहरीला भाषण था। वह घटना

इतिहास में है। पर अपने भाषण में वह घटना इस प्रकार बताई कि लोगों को वह भयानक लगी। वक्ता ने सोचा उसने वर्णन बहुत अच्छा किया। बाद में उसे बताना पडा कि ऐसे भाषण लोगों की भावनाओं को उस क्षण भले ही भडका दें, पर बाद में उसका कुछ अर्थ नहीं रहता। इस कारण ऐसे भाषण देने से बचा जाए। हमें इसमें नहीं पडना है। पर उसी समय जो कुछ होता है, उसके प्रति आँखें नहीं मूँदनी हैं।

कार्य-सीमा

समाज की सुरक्षा की स्थायी पद्धति जनता में क्रमश जागृति उत्पन्न करना है। उनमें देशभक्ति के भाव व आत्मविश्वास जागृत करना है। आत्मसम्मान का बोध कराना है। अपने प्रति गर्व का भाव निर्माण करना है। अपनी परपरागत जीवन-पद्धति और धर्म के प्रति गौरव उत्पन्न कर ये सारे सस्कार करने हैं। एक ऐसा वातावरण निर्माण करना कि कोई भी व्यक्ति यह अनुभव न करे कि वह अकेला है, वह सकटों से घिरा है और उसका कोई सहायक नहीं है। हमारे समाज में किसी के मन में ऐसा विचार तक उभरना नहीं चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति यह अनुभव करे कि वह इस विशाल परिवार का एक सदस्य है, जहाँ सहकार्य का महत्त्व सभी जानते हैं और हर सकट का हल उसके भाइयों के पास है। इसके लिए हमें हर जगह अपनी शाखा स्थापित करनी होगी। जब हम ऐसा निश्चय करते हैं, तब हमारे सामने न्यूनतम मर्यादा क्या होनी चाहिए? हम भले ही कहते हों कि समूचे हिदू समाज को सगठित करना है, पर हम यह भी जानते हैं कि यह तत्काल सभव नहीं। इसमें काफी समय लगेगा। शाखाओं का कोई तुलनात्मक प्रतिशत नहीं बताया जा सकता। हमें प्रत्येक स्थान के लिए परिस्थिति के अनुसार निर्धारण करना होगा। मान लो कोई छोटा स्थान है, जहाँ हम शाखा प्रारभ करना चाहते है। वहाँ देखना होगा कि क्या वह शाखा उस क्षेत्र के समाज-जीवन का केंद्र-बिंदु हो सकती हे? क्या स्वयसेवक बधु वहाँ जनता में विश्वास जागृत कर पाते हैं? क्या यह अनुभव किया जाता है कि यहाँ एक मजबूत सगठित गुट है जो सभी से स्नेह करता हे और विपरीत स्थिति अथवा सकट की घडी में उसकी ओर सहायता के लिए देख सकते हैं? हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह सहायता करने को तैयार है? क्या लोगों में यह विश्वास है? क्या जनता समझती है कि यह सच्चरित्र, नि स्वार्थी होने से हमारे विश्वास को सार्थक कर सकते हैं। यदि शाखा के प्रति ऐसी विचारधारा हो जनता का विश्वास हो, तब हम कहेंगे कि यह

हमारे कार्य की न्यूनतम सीमा है।

कुछ परिस्थितियों में सख्या में वृद्धि नहीं होती। मुझे बताया गया कि एक शाखा में हमारे कार्यकर्ता एक कार्यक्रम करना चाहते थे। पर शाखा में स्वयसेवकों की उपस्थिति कम याने १२-१३ थी। कुछ समय बाद एक स्थान पर एकत्रीकरण था। उस शाखा के वे ही १२-१३ स्वयसेवक आए थे। तीन-चार बार यही अनुभव हुआ। देखा गया कि शाखा में सख्या नहीं बढ पाती। मुख्यशिक्षक से बात की गई कि शाखा की उपस्थिति बढाने का क्या विचार है? उसका उत्तर था 'यह सभव नहीं है, क्योंकि हमारा ग्राम एक छोटी सी बस्ती है और इस क्षेत्र में रहनेवाले तरुण इतने ही हैं। स्वाभाविक है कि तरुण स्वयसेवकों की सख्या नहीं बढ सकती। ग्राम में ८-१० ही तो घर हैं। जो शिशु व बाल हैं, उनके तरुण होने तक सख्या नहीं बढ सकती।' ऐसा होता है कभी-कभी। ऐसा भी होता है कि कुछ लोग सहानुभूति रखनेवाले होते हैं, पर कुछ कारणों से सगठन से नहीं जुड पाते। हमें इन सारी परिस्थितियों के रहते निर्णय करना है कि जनता में पर्याप्त विश्वास, परस्पर आदरभाव प्रेरित करने के लिए न्यूनतम कितने लोग लग सकते हैं। जहाँ कहीं भी हमें शाखा स्थापित करनी है, उसमें इस सीमा से कम सख्या नहीं रहनी चाहिए।

हो सकता है कि इसमें कुछ अधिक समय लगे, पर हमें अधीर न होते हुए, धैर्य से प्रयत्न जारी रखने चाहिए। जनता के हृदय में प्रतिदिन अपनी महान सस्कृति के सिद्धात के प्रति, अपने सगठन के प्रति अपनत्व का भाव बढाने का प्रयत्न करना चाहिए। यह सब करने का प्रयत्न हम करें।

अपनत्व भाव

एक और मुद्दा है। विभिन्न स्थानों से आए बधुओं से हमारा इस दौरान सपर्क हुआ। कुछ स्वयसेवक तो छोटे-छोटे स्थानों से आए हैं। क्या हमारे मन में उनके प्रति अपनत्व जागा? उदाहरण के लिए किसी के घर में कोई बीमार हो तो क्या हमने पूछताछ की? किसी को कोई कठिनाई है तो क्या हमने जानने की कोशिश की? सहायता की? मैं जानता हूँ कि आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रहने से लोग कुछ नहीं कर पाते, परतु हम शारीरिक दृष्टि से सहायता कर सकते हैं। मधुर वाणी से राहत दे सकते हैं। धीरज बंधाकर सहायता कर सकते हैं। क्या हम वह सब करते हैं? कल शाम जैसा मैंने कहा, कुछ ऐसा कार्यक्रम लेकर लोगों की आवश्यकताओं की

पूर्ति कर, जिसमें अपना भी थोडा-बहुत योगदान हो, बधुओं की पीडा, दूर करें। जब तक हम स्वय नहीं करते, दूसरों को सलाह देने का हमें कोई अधिकार नहीं।

इस सुझाव के साथ ही हम सभी, प्रत्येक छोटी शाखा भी यह देखें कि कौन ईमानदारी से काम करनेवाला है? उसके बच्चे, पत्नी, अन्य लोग जो उसपर निर्भर हैं, कठिनाई में हैं, तो उनकी भी थोडी-बहुत सहायता करें। हर समय हमें नि शुल्क सहायता ही नहीं देनी है। उनमें से कुछ तो उसके लिए भुगतान कर सकते हैं। हमने अपने सामने जो आदर्श रखा है, उसे इस भाँति व्यवहार में ला सकते हैं। भारी कठिनाई के समय ऐसे व्यवहार से हम वास्तविक रूप से कार्य को मूर्त रूप दें।

अनुशासन का प्रभाव

हमारे व्यवहार से जनता अनुभव करेगी कि यहाँ कुछ विशेष हो रहा है। कोई बडा कार्य है। नया है। अच्छा है। यह सभी कुछ अनुशासन से ही सभव हुआ है। हम जितने अधिक अनुशासित होंगे, परिणाम उतने ही अच्छे होंगे। मैं चैन्ने की बात बताता हूँ। कोई २० वर्ष पूर्व की घटना है। एक ऐसी बस्ती में, जहाँ शाखा नहीं थी, एक कायक्रम रखा गया था। हमारे कार्यकर्ताओं से परिचित कुछ लोग वहाँ रहते थे। उन्होंने सोचा कि इन लोगों की मदद से अच्छा कार्यक्रम यहाँ हो सकेगा और शाखा भी प्रारभ की जा सकेगी। स्थानीय लोग भी आमन्त्रित थे। कुछ व्यायामयोग और अन्य कार्यक्रम हुए। वैयक्तिक गीत के बाद हमारी शाखा के अधिकारी ने प्रास्ताविक भाषण दिया। फिर मुझे बोलने के लिए बुलाया। मैं खडा हुआ ही था कि तेज हवा चलने लगी। बादल छा गए ओर पानी बरसने लगा। पानी जम कर बरसा। बौछारें बडी तीखी थीं। कुछ ही मिनट यह चला, पर सामने बैठे स्वयसेवकों के नीचे से वर्षा का पानी बहने लगा। सारा मैदान जलमय हो गया, मगर स्वयसेवक बैठे रहे। बाल स्वयसेवक तक नहीं उठे और भाषण सुनते रहे। जो प्रेक्षक लोग आए थे, इधर-उधर छाया में जाना चाहते थे। कुछ छतरी खोलना चाहते थे तो कुछ लोग वापस घर जाना चाहते थे। पर मैंने अपना भाषण जारी रखा। कुछ साथी कहते हैं कि कठिनाइयाँ जैसे आती हैं, मेरे बोलने का आनद भी बढता है। पर ऐसा है नहीं। मुझे विषय पूरा करना था। इसलिए मैं बोल रहा था। उठकर जा रहे लोगों ने लाउड स्पीकर पर आवाज सुनी तो वे मुडे। उन्होंने देखा, कार्यक्रम तो चल रहा है। वे लौटे और सुनने लगे। उन्होंने देखा कि स्वयसेवक भीग

चुके हैं, फिर भी कोई हिला नहीं था। मैं स्वयं भीग चुका था पर बोलता जा रहा था, तब उन्होंने भी सोचा कि थोडा-बहुत भीगने से कुछ नहीं होगा। वे लौटे और सारा कार्यक्रम व्यवस्थित संपन्न हुआ। आश्चर्य था कि जैसे ही मेरा भाषण समाप्त हुआ और ध्वजप्रणाम के लिए खडे हुए, बरसात रुक गई। मानो वह (वर्षा) भी भाषण सुनने के लिए ही रुकी थी। लोगों पर इस घटना का जो प्रभाव पडा, वह आज भी कायम है। उस बस्ती में अब हमारी बहुत अच्छी शाखा चलती है। वह स्मृति वहाँ अंकित हो गई। छोटा बच्चा भी दृढ निश्चय के साथ बैठा रहा, हिला नहीं। अनुशासन का भाव वहाँ आए सज्जनों पर गहरा प्रभाव डाल गया। यदि वे लोग अन्य जनसभाओं के समान चल देते, तो ऐसा माना जाता कि हमारी शाखा का अनुशासन प्रभावी नहीं रहा।

हम क्या केवल खेलकूद के ही कार्यक्रम करते हैं? या ऐसा प्रशिक्षण ले रहे हैं, जिसमें हमें जो कर्तव्य सौंपा गया है, उसपर हमें अडिग रहना सिखाया गया है। वे अन्य बातों से प्रभावित नहीं होते। हमने गत संध्या को पथसंचलन किया। पथसंचलन में भाग लेनेवाले को अपनी दृष्टि सामने रखनी चाहिए। सडक के किनारे की दुकानों के फलकों पर क्या लिखा है, यह पढना उसका काम नहीं। व्यवस्थित चल पाने के लिए मस्तिष्क पर योग्य नियंत्रण जरूरी है। भटकनेवाले मस्तिष्क पर नियंत्रण ही तो अनुशासन है। यह हमें सीखना होगा। यदि हम यह कर सके तो मुझे विश्वास है कि हम विशुद्ध अनुशासन से युक्त संगठन का निर्माण कर सकेंगे। दूसरे लोगों पर भी वांछित प्रभाव डाल सकेंगे। उन्हें प्रेरणा देकर, राष्ट्र को हम विश्व में गौरवमय स्थान पर पहुँचा सकेंगे, इसमें मुझे संदेह नहीं है। इसके लिए अपने व्यवहार में हमें पूर्ण परिवर्तन करना होगा। अपने रवैये में, अपनी मानसिकता में, अपनी समझ में परिवर्तन कर शाखा के द्वारा वास्तविक रूप में एक अनुशासित, राष्ट्रीय सामर्थ्य का प्रतीकस्वरूप प्रस्तुत करना है।

ॐ ॐ ॐ

१० प्रभावी कार्य और हम

(१२ जुलाई १९६९ को नागपुर में विविध क्षेत्र के कार्यकर्ताओं की त्रिदिवसीय बैठकों के समारोप के अवसर पर दिया गया बौद्धिक)

हम सब स्वयंसेवक किसी भी क्षेत्र में कार्यरत हों– ध्येय एक ही

है। किसी क्षेत्र-विशेष में कार्य करने से ध्येय दूर नहीं होता। दूर हुआ तो ठीक नहीं होगा। जिसे सिद्ध करना है, वही यदि विस्मृत हो गया तो गडबड होगी। अत अपने ध्येय का नियमित रूप से स्मरण करना चाहिए। पर देखने में आता है कि इस ओर दुर्लक्ष्य व उपेक्षा है। मैंने देखा है कि शाखा सामने चल रही है, प्रार्थना का समय हो गया है, पर आसपास बैठे भिन्न-भिन्न क्षेत्र में काम करनेवाले अपने बधु प्रार्थना में सम्मिलित नहीं हुए। किसी गभीर विषय पर चर्चा चल रही हो– ऐसा भी नहीं था। साधारण गपोडबाजी चल रही थी। यह देखकर मन बहुत व्यथित हुआ। इससे तो विस्मरण ही बढता है। इसीलिए अपने ही स्वयसेवक बधुओं का आपस में मेल नहीं बैठता, मिल-जुलकर काम करने की शक्ति समाप्त हो जाती है। अपने सघनिर्माता ने कहा था– 'अपने बीच स्निग्ध सहयोग (Lubricant Co-operation) चाहिए। किसी प्रकार का घर्षण नहीं होना चाहिए।' वैसा पारस्परिक सहयोग एक ही ध्येय के नाते हममें होना चाहिए। अपने कार्यकर्ताओं में भी मतभेद व आत्मप्रतिष्ठा की ध्वनि के कारण कभी-कभी कर्कश व्यवहार भी हो जाता है।

पद-प्रतिष्ठा की अनासक्ति

काम करते-करते मनुष्य को प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। होनी भी चाहिए। अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त होनी चाहिए। अन्यों की कीर्ति से अधिक कीर्ति सपादित करनी चाहिए। इसमें मुझे प्रसन्नता है। सघ में भी मुझसे कोई अधिक सम्मान प्राप्त करे, तो उतना प्रिय और कुछ नहीं। परतु यह अपने कर्तृत्व, गुण, परिश्रम और सबको साथ लेकर चलने की पात्रता के कारण होना चाहिए। यदि हम किसी दायित्व पर है और कहा कि अब यह दायित्व किसी दूसरे को करने दो, तो उसे दु ख होता है। वह सोचता है कि मेरी टाँग खींचना चाहते हैं, उसकी अवहेलना की जा रही है, सम्मान घटाने का प्रयत्न हो रहा है, उसके बडप्पन से ईर्ष्या की जा रही है। ऐसे बेसिर-पैर के अनेक विचार मन में आते हैं और विषाद उत्पन्न होता है।

सघ में किसी को जिम्मेदारी का पद मिलने पर समाज फूल-माला नहीं पहनाता, न ही जय-जयकार करता है। अन्य कोई फायदा नहीं होता, फिर भी कभी-कभी यह दिखाई देता है। यदि सघकार्य में विषण्णता आती है तब अन्य क्षेत्रों में कार्य करनेवालों को जिन्हें मान प्रतिष्ठा मिलती है, विषण्णता आती होगी, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। पर ऐसा स्वार्थमूलक विचार नहीं होना चाहिए अन्यथा जिस कार्य को करने का सकल्प किया

है, उसमें हम ही बाधक हो जाएँगे। इसलिए किसी भी प्रकार से यह अनिष्ट भाव नहीं आना चाहिए। सोचना चाहिए कि अपने ध्येय की प्राप्ति में मैं एक छोटा-सा अवयव हूँ। छोटा-सा स्वयसेवक भी दक्ष करवाता है, तो वैसा करना मेरा धर्म है। यदि यह सोचा तो हम अपनी मानसिक क्षमता को अबाधित रख सकते हैं।

ध्येय की स्पष्टोक्ति

ऐसे प्रसग आ सकते हैं जब स्पष्ट शब्दों में ध्येय का उच्चारण करना अहितकारक प्रतीत हो सकता है। मुझे उसका लाभ प्रतीत नहीं होता। जैसे हिंदूराष्ट्र के बारे में गोलमाल शब्दों में बोलने का प्रयास होता है। चेन्नै में डा जॉन को जनसघ का अध्यक्ष बनाते समय का उदाहरण मेरे सामने है। उपाध्यक्ष के घर पर उनसे मेरी भेंट हुई थी। वे कहने लगे, यदि श्री वी राजगोपालाचारी (जो चेन्नै प्रातसघचालक रहे थे) सहयोगी होंगे तो मैं काम करूँगा। उनको आप बता दीजिए। मैंने पूछा– 'क्या आपने जनसघ की जानकारी ठीक तरह से ली है? बाद में कुछ अनिष्ट नहीं लगना चाहिए। क्योंकि जनसघ के बहुत से कार्यकर्ता सघ के स्वयसवेक हैं। वे कट्टर भी हैं। कई लोग कहते हैं कि सघ वाले डोमिनेट करते हैं। हमें बतानेवाले ये कौन होते हैं? ऐसा मन में आ सकता है।' किंतु उन्होंने सब मान लिया। इसाई होते हुए भी उन्होंने हिंदूराष्ट्र की बात स्पष्ट रूप से स्वीकार की। सघ बडा कट्टर हिंदूराष्ट्रवादी है और इस सिद्धात पर कोई समझोता नहीं होगा, ऐसा कहने पर उन्होंने कहा– 'ये न माननेवाले राष्ट्रद्रोही है। यह हिंदुओं का राष्ट्र है, ऐसा कहलानेवाले ही सत्य बोलते है। किंतु दुर्भाग्य से वे अधिक दिन उपलब्ध नहीं रहे। मेरी ऐसी स्पष्टोक्ति से कोई नुकसान नहीं हुआ। कभी-कभी व्यवहार में स्पष्ट न बोलना आवश्यक हो सकता है, पर उसकी आदत हो गई तो गडबड होगी। अत्यन सतर्क न रहे तो ऐसा हो सकता है।

प्रभाव होना है

अपने देश में जातिवाद है, प्रातवाद है और विशेषकर राजनैतिक क्षेत्र में तो बडा विचित्र है। सकुचित वाद का आश्रय लेकर तुरत फल भी मिल सकता है और इसी कारण उधर आकर्षण हो सकता है। किसी जाति को प्रसन्न करने की प्रवृत्ति जागृत हो सकती है। [illegible] को न छोडते हुए सबको साथ लेकर चलना [illegible] ध्यान [illegible]

रखकर ही चलना चाहिए। हावी हो जाते हैं– ऐसा किसी ने कहा, तो दुर्लक्ष्य करना। 'हावी होना' आदि बात की चिंता न करते हुए कहना चाहिए– 'हाँ, जीवन के सभी क्षेत्रों में हावी होना हमारा लक्ष्य है।' हमारा संगठन, हमारा त्याग, हमारी ध्येयवादिता है तो हर क्षेत्र में प्रभाव डालेंगे, अन्यथा संघ से दूर रहने की प्रवृत्ति बन जाती है। चारों ओर का वातावरण भी साम्प्रदायिक इत्यादि कहने का है, उसका हम पर भी परिणाम होता है।

मेरे पास समाचार आते हैं कि ऐसे कार्यक्रम बनाए जाते हैं कि कोई संघ के कार्यक्रम में न जाए। कार्य के प्रति लज्जा या संकोच उत्पन्न करने की भावना से अपने को मुक्त कर लेना होगा।

आपसी परामर्श हितकर

भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपने अच्छे-अच्छे कार्यकर्ता नियोजित किए हैं। योजनापूर्वक जाना अच्छा है, स्वेच्छा से जाना सूत्रबद्धता को खंडित करना है। अनुभव ऐसा आ रहा है कि जितने कार्यकर्ता भेजे हैं, उतने से काम नहीं चलेगा। सभी संगठनों से और अधिक कार्यकर्ताओं की आवश्यकता होने की बात की जाती है। परंतु अब कुछ अलग ढंग से विचार करना चाहिए। जहाँ से अपनी योजना हुई है, वहीं से कार्यकर्ता मिलें ऐसा सोचना ठीक है, लेकिन किसी से चर्चा न कर अथवा बिना सूचना दिए परस्पर प्राप्त करना ठीक नहीं होगा। यह संगठन की सूत्रबद्धता की दृष्टि से उचित नहीं है। भूख लगी तो भी रसोईघर में से कुछ भी उठाकर खा लेना अशिष्टता होती है। क्षेत्र का दायित्व जिसपर है, उससे पूछकर ही कार्य करना चाहिए।

इसके साथ ही यह देखना चाहिए कि जिस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं, वहीं से सातत्य से कार्य करनेवाले अच्छे लोग संघ का काय करनेवाले हम बना सकते हैं या नहीं। यदि नहीं बना सकते, तो फिर हम संघ के भक्षक ही बनेंगे। कार्यकर्ताओं की न्यूनता होने का अर्थ है कि पास आए हुए व्यक्ति का ध्येयवाद, चारित्र्य, व्यवहार, सुयोग्य स्वयंसेवक बनाने का हमने प्रयास नहीं किया। सोचना चाहिए कि उसे बड़ा करेंगे, प्रतिष्ठित करेंगे, बढ़ा लेंगे। संघ में कार्यकर्ता बनाने का जैसा प्रयास चलता है, वैसे अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करते हुए कर्तृत्ववान संघ के स्वयंसेवक बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इससे कार्यकर्ताओं की न्यूनता दूर हो सकती है।

यह तो वास्तविकता है कि देश की परिस्थिति बिगडती जा रही है। इसलिए यह देखना लाभदायक होगा कि कितने भिन्न-भिन्न दल सच्चाई से देश का काम करनेवाले हैं। देशहित का ही विचार करनेवाले लोगों का एक देशव्यापी रूप खडा करें– यह आवश्यक है।

दूसरी बात यह है कि बिगडती परिस्थिति केवल बातचीत से नहीं सुधरेगी। ऐसी परिस्थिति में हमें डटकर खडा होना होगा। राष्ट्रविरोधी और शत्रु– दोनों शक्तियों से जल्दी ही प्रत्यक्ष संघर्ष हो सकता है। शांति व लोकतांत्रिक पद्धति से संपूर्ण परिवर्तन होने की आशा कुछ कम होती जा रही है। ऐसा कहा जाता है कि तीन चुनाव बडी शांति से हुए हैं। लगता है कि ऐसा कहनेवालों ने चुनाव को देखा नहीं है। कितनी गुंडबाजी, कितने दंगे हुए– इसका उन्हें पता ही नहीं है। सारा तात्त्विकतापूर्ण व सहजता से नहीं हुआ। केवल पैसे देकर वोट लेना ही नहीं हुआ, अनेक स्थानों पर बलप्रयोग भी किया गया।

आगे चलकर कभी न कभी सडक पर युद्ध जैसी स्थिति खडी हो जाएगी। वैसी स्थिति में स्थान-स्थान पर, ग्राम-ग्राम में संगठित, आत्मविश्वास से परिपूर्ण खडी शक्ति सबका निराकरण कर सकेगी। हम उस शक्ति को बनानेवाले हैं। इसलिए हमें उसका अधिकाधिक मात्रा में दृढीकरण करना होगा। इसके लिए उसका कर्मशील अंग बनकर खडा होने की आवश्यकता है। इसलिए सब क्षेत्र यशस्वी बनें– ऐसी अपनी इच्छा है। सभी प्रयासों को प्रतिष्ठा मिले और इस प्रकार समाज में चारों ओर अपनी पकड हो। यह ध्यान में रखकर कार्य करना आवश्यक है।

११ संगठनात्मक नींव बलिष्ठ हो

(भाग्यनगर, आन्ध्रप्रदेश, २ दिसंबर १९७० को प्रांतीय बैठक का समारोप भाषण)

मैंने आपसे कुछ प्रश्न इसलिए पूछे थे ताकि अपनी शाखाओं की व्यवस्था और उसके परिणामस्वरूप अपने चारों ओर रहनेवाले समाज से बढते हुए संबंध इत्यादि के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर लूँ। सबको इस बात का स्मरण होगा कि अभी सभी तहसीलों और तहसील केंद्रों में

शाखाएँ नहीं हैं। इसकी भी जानकारी मिली होगी कि जिन तहसीलों में शाखाएँ हैं, उन सबमें संघचालक या कार्यवाह का दायित्व लेनेवाला कोई स्थानीय व्यक्ति नहीं है। अनेक बड़े नगरों की शाखाओं में भी जो छोटी-छोटी उपशाखाएँ हैं या ग्रामीण शाखाओं में जहाँ एक शाखा ही रहती है, उन सबमें भी इस प्रकार से कोई कार्यवाह है, सो बात नहीं। मुख्यशिक्षक तो रहता ही है। क्योंकि बिना मुख्यशिक्षक के शाखा चलती नहीं। अपनी व्यवस्था में यह अभी न्यून है। इसका विचार सबको करना चाहिए। यह कहना ठीक नहीं होगा कि योग्य व्यक्ति मिलते ही नहीं। अनेक बार योग्य व्यक्ति के संबंध में अपना विचार कुछ विचित्र हो जाता है। कोई सर्वगुणसंपन्न मनुष्य मिलेगा—ऐसा सोचकर चलते हैं। वस्तुतः इस जगत् में, जगत् के बाहर भी, भगवान को छोड़कर सर्वगुणसंपन्न तो कोई मिलने की आशा नहीं। तो क्या हर स्थान पर कार्यवाह, मुख्यशिक्षक आदि सब भगवान ही हो जाएँ और हम घर में बैठ जाएँ छुट्टी लेकर?

कार्यकर्ता-नियोजन

इसलिए हमें अपनी कल्पना को जरा व्यावहारिक बनाना चाहिए। आदर्शवादी बनते समय भी हमें ऐसा कोई आदर्शवाद अपने सामने नहीं रखना चाहिए, जिसपर चलना असंभव हो। अतः हम व्यावहारिक दृष्टिकोण रखें। जो संघ के संपर्क में आए हैं, संघ के विचार और इसकी व्यवस्था को मानते हैं, इसके अनुशासन का अभिनंदन करते हैं, ऐसे महानुभावों को यह काम दिया जा सकता है। इस दृष्टि से हम लोगों को व्यवस्था बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। लगभग एक वर्ष पहले, विदर्भ और महाराष्ट्र प्रांतों के संघचालकों की बैठकें हुई थीं। मैंने कहा कि संघचालकों की संख्या बढ़ाने का काम आपका है। भिन्न-भिन्न स्थानों के संघचालकों ने अपने जिले में जाकर सभी स्थानों का निरीक्षण कर, स्थानीय स्वयंसेवकों से परामर्श कर किसी व्यक्ति को निश्चित कर, अपनी पद्धति के अनुसार दायित्व स्वीकार करने के लिये कहना चाहिए। जो अपना उत्तरदायित्व समझेगा और शाखा का सब प्रकार से संचालन करने के लिए आवश्यक परिश्रम करेगा, उसको कार्यवाह के नाते नियुक्त करना चाहिए। कोई दायित्व न हो, तो मनुष्य काम नहीं करता। उसे यह समझ में नहीं आता कि क्या करना है। किंतु यदि स्पष्ट बता दिया जाए कि तुमको कार्यवाह का काम करना है, तो उसकी सीमाएँ ध्यान में रखकर वह काम करने के लिए उद्यत होता है। नहीं तो किसी को कहा कि जरा संघ का काम करो।

यह 'हाँ' भी करता है। पर करो याने क्या काम करना है, यह लोगों को समझता नहीं। इसलिए निश्चित कार्यभार किसी को देने से वह काम कर सकेगा।

गटनायक अर्थात् सपर्क व सबध

अपने कार्य का यह स्वरूप सगठन का है। यह कोई ढीला-ढाला, अस्तव्यस्त लोगों का जमाव तो है नहीं। एक-दूसरे के साथ अति निकट, आत्मीयता के अनुशासन से बँधे हुए एक ध्येय के उपासक के नाते, सुव्यवस्थित सगठित शक्ति के रूप में कार्य करना अपना काम है। ऐसा सगठित सुव्यवस्थित स्वरूप अपने कार्य को प्राप्त कराने के लिए, गट-व्यवस्था बनाई गई है।

यहाँ बहुत पुराने स्वयसेवक हैं। सघ शिक्षा वर्ग में मैं जो बोलता आया हूँ, वह बहुत स्वयसेवकों ने सुना होगा। कुछ वर्ष पहले मैंने गटनायक का विषय रखा था। क्या गटनायक का काम केवल अपनी सूची में जितने स्वयसेवकों के नाम होंगे उनको बुलाकर लाना है। आए तो ठीक, न आए तो ठीक, उनको बुलाना मात्र ही उसका काम नहीं है।

उसका काम केवल किसी को पुकार लगाना और 'चलो-चला, समय हो गया', इतना कहकर स्वय चले जाना ही नहीं है। सघकार्य हर एक घर में होना चाहिए। इसलिए अपने सभी स्वयसेवकों के साथ नित्य का मेल-जोल रहना चाहिए। एक-दूसरे के घर में प्रवेश रहे। घर के सभी लोग स्वयसेवकों के सबध में आत्मीयता का भाव रखें। यह दायित्व गटनायक पर होने के कारण, उसे अपना व्यवहार सबके साथ उत्तम रखना चाहिए।

गटनायक अपने स्वयसेवकों से ही नहीं, तो घरों में उनके पिता, चाचा, बडे भाई आदि सभी से बडे आदर व स्नेह का सबध जोडे। उनसे बातचीत करें। उनके अत करण में यह भाव निर्माण करे कि यदि स्वयसेवक गटनायक के साथ शाखा में जाता है, तो उसका भला ही होगा, उन्नति होगी, चरित्र का विकास होगा। घरों में सघ के प्रति प्रीति उत्पन्न होने के कारण यदि कोई कार्यकर्ता उनके घर गया, तो आवश्यकतानुसार उसके भोजन आदि का प्रबध करने में घर के लोगों को कष्ट का अनुभव नहीं होता, आनद ही होता है। तभी सघ का प्रभाव, सघ का सस्कार घर में भरा है, ऐसा कहा जा सकेगा। ये सब छोटी-बडी बातें सब लोगों के साथ गटनायक के जो सबध रहते हैं उनसे निर्माण हो सकने वाली हैं।

कार्यनिर्माण का इतना बड़ा दायित्व गटनायक पर है। कार्य परिश्रम का है। परंतु संघकार्य घर बैठकर आराम से करनेवाला काम नहीं है। इसलिए ध्यान रखना चाहिए कि अपना गटनायक ऐसा व्यवहार करे।

गटनायक अपने क्षेत्र का प्रमुख

इतना करने पर भी उसका काम पूरा नहीं होता। उसे ध्यान में रखना चाहिए कि मैं केवल सूचीबद्ध स्वयंसेवकों का ही गटनायक नहीं हूँ। वह जिस क्षेत्र में रहता है, उस संपूर्ण क्षेत्र का प्रमुख है। उस क्षेत्र के सभी लोगों को संघानुकूल करने का दायित्व उसका है। इस दृष्टि से वह भिन्न-भिन्न लोगों के घर जाता रहे। सब लोग सोचें कि यह बहुत उत्तम मनुष्य है, हमारे लिए एक प्रकार का आधार है। साथ ही बीच-बीच में चारों ओर होनेवाली घटनाओं का उल्लेख करते हुए, वह उनके साथ बातचीत करे। बातचीत में संघ का विचार सामने रखे और यही विचार किस प्रकार योग्य है, इसका ठीक प्रकार से वर्णन करे। उनके अंत:करण में जो कुछ भाव हों, उनमें योग्य और उचित परिवर्तन करे। किसी ने विचार मान लिया है, इतने मात्र से संतोष नहीं करना चाहिए। क्योंकि एक दिन किसी ने माना भी, तो कुछ दिन बाद वह भूल जाएगा। अत: इस प्रकार का कार्य हमें बार-बार करते रहना चाहिए। हर एक स्थान की जो कुछ विशेषता होगी, उसके अनुरूप कार्य की पद्धति बनाने की प्रतिभा भी उसमें चाहिए। कहीं-कहीं पर सब लोगों को एकत्र करने के लिये साप्ताहिक विचार-विमर्श हेतु कोई विषय सामने रखना, उस पर सबने मिलकर चर्चा करना और उसमें से कोई निष्कर्ष निकालना भी उपयोगी होगा।

इस तरह भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों को इकट्ठा करके वह उस क्षेत्र का स्वाभाविक रीति से नेतृत्व करनेवाला बने। उसके कथन के अनुसार चलने में ही लोग अपना भला समझें ऐसा प्रयत्न भी करने का दायित्व गटनायक का रहता है। ऐसे योग्य व्यक्ति को अपने काम में लगाना चाहिए। इससे लाभ होता है। समाज को अपने साथ ले जाने की क्षमता उसमें उत्पन्न होती है। ऐसी व्यवस्था हमारी शाखा की है या नहीं— यह देखना चाहिए।

गटनायक गढ़ने होंगे

ऐसे गटनायक अपने आप तो मिलेंगे नहीं। अच्छी सुंदर, स्वयं-भू मूर्ति तो अपवादस्वरूप ही मिलती है। बाकी तो टेढ़ा-मेढ़ा, विचित्र आकार

अभियान की मर्यादा

अभी कुछ दिन पूर्व हम लोगों ने जनसपर्क किया। जनसपर्क का कार्यक्रम अल्पमात्रा में हुआ। विचार करना चाहिए कि जनसपर्क करने के लिये हमें विशेष रूप से प्रयत्न करने की आवश्यकता इसलिए पडी क्योंकि अपना नित्य का जनसपर्क नहीं होता। नित्य का सपर्क अपने कार्य का आधार होना चाहिए। यह अभी यथार्थ रीति से नहीं हो पाता। इसलिए हमें कभी-कभी ऐसा विशेष कार्यक्रम करना पडता है।

वैसे, यह 'जनसपर्क अभियान' महा भयकर शब्द है, क्योंकि यह 'अभियान' शब्द मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। अभियान, याने तात्कालिक रूप से थोडे समय के लिए चलाना और फिर उसको भुला देना। हमें जनता का सपर्क जीवन्त रखना है। अभियान अपने लिए उपयोगी नहीं है।

हाँ, विवेकानद शिला स्मारक जैसे अवसर पर धन इकट्ठा करने के लिये अभियान तो ठीक है, क्योंकि वह नित्य-कार्य नहीं है। पर सघ का सपर्क-कार्य तो नित्य है, उसमें अभियान की भावना नहीं रखनी चाहिए। उसे नित्य बनाने की व्यवस्था अपनी शाखा की रचना में सुयोग्य रीति से करनी चाहिए। उसके लिए अपने सब स्वयसेवकों को बराबर समझदार और योग्य बनाना चाहिए। उनका कर्तृत्व विकसित करना चाहिए। हम भी स्वत के विचारों को बार-बार चिंतन के द्वारा और अपने बडे कार्यकर्ताओं से परामर्श द्वारा शुद्ध रखें। अपना व्यवहारकौशल्य जागृत रखें और अपने उदाहरण से अपने कार्यक्षेत्र में काम करनेवाले अपने बधुओं की योग्यता को बढाएँ। ऐसा प्रयत्न करना हम सब लोगों के लिए बहुत आवश्यक है।

हम लोगों ने एक और कार्य जनसपर्क के नाम से किया। बीच में हवा फैली थी कि दिल्ली का केंद्रीय शासन सघ पर प्रतिबध लगाने का प्रयत्न कर रहा है। कोई एक कानून बनाने के प्रयत्न के विरोध में जनमत कितना प्रबल है, यह उनको दिखाकर, उनके प्रयत्न को नष्ट करने का हेतु लेकर वह काम हुआ। यह भी एक तात्कालिक हेतु था। लेकिन यह ध्यान में रखना चाहिए कि अभियानों का सघ के नित्य कार्य से कोई मेल नहीं है।

सघ पथ नहीं सगठन है

किसी तात्कालिक हेतु को लेकर जैसे-जैसे काम होता है, वैसे-वैसे मनुष्य स्वय को एक छोटी-सी दीवार के अदर बद करने लग जाता है। तब कार्य पथ बनने लगता है और अपने बाहर या समाज की ओर देखने की

का पत्थर ही मिलता है। उसको ठीक प्रकार से काट- छाँटकर ही मूर्ति बनानी पड़ती है। इसी प्रकार चारों ओर जो व्यक्ति मिलेंगे, वे इन सब आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए लगनेवाले गुणों से युक्त ही मिलेंगे, ऐसा जरूरी नहीं। हमें उन्हें आवश्यक गुणों से युक्त करना पड़ता है। उसके लिए शिक्षक, मुख्यशिक्षक, कार्यवाह और सारे बड़े अधिकारियों का दायित्व है। प्रचारक का तो यह सबसे बड़ा दायित्व है।

वैचारिक सिद्धता

हम सब का विचार दोहराते हैं, यह सरल और सीधा है कि हमें अपने हिंदू-समाज को संगठित करना है। परंतु लोगों को सरल विचार जल्दी समझ में आता नहीं। उसे विस्तारपूर्वक बताना पड़ता है। अपना इतिहास धर्म, संस्कृति, समाज-व्यवस्था और पूर्वकाल से अपने समाज के ऊपर आई हुई भिन्न-भिन्न प्रकार की आपदाएँ, उसमें से हमें प्राप्त हुआ बोध, आज की अपनी स्थिति, भविष्यकाल में अपना लक्ष्य, जगत् के भिन्न-भिन्न देशों से आनेवाले संबंध, उनसे निर्मित सहयोग और संघर्ष की स्थितियाँ उसमें अपनी रक्षा के लिए शक्ति की आवश्यकता आदि अनेक प्रकार के विषय लाकर उस सरल विषय को समझाना पड़ता है।

अपना काम बिल्कुल सरल होने पर भी लोगों के मन में अनेक प्रकार की कुशंकाओं से ग्रसित होने के कारण उनके मनों को मूल विचार ग्रहण कराने के लिये वैचारिक और भावात्मक सिद्धता करनी चाहिए। एक दिन बताने से होता नहीं। उसका बार-बार स्मरण कराना पड़ता है। यह कार्य भिन्न-भिन्न प्रकार से करना पड़ता है। क्योंकि उस विषय को सुनने की उनकी रुचि भी बनाकर रखनी पड़ती है। इस प्रकार हमें विविध रूप से अपने मूल विषय का बार-बार मंडन करते हुए एक-एक स्वयंसेवक के अंतःकरण में उसको गहराई तक पहुँचा देने और इस विचार द्वारा उसके पूरे जीवन को व्याप्त करा देने का प्रयत्न करना चाहिए। सामूहिक गीति से भाषण प्रवचन आदि में सुनी हुई बातें भूल जाना स्वाभाविक है। अतः व्यक्ति-व्यक्ति को साथ लेकर उसने सुना कि नहीं, कितना सुना, क्या सुना, क्या समझा, समझने में क्या त्रुटि रही, क्या ठीक रहा, आदि बातों को उससे परामर्श करते हुए समझ लेना चाहिए और जिस प्रकार हो उस प्रकार उसे योग्य तथा समझदार बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसलिए व्यक्तिशः प्रयत्न करना चाहिए।

अभियान की मर्यादा

अभी कुछ दिन पूर्व हम लोगों ने जनसपर्क किया। जनसपक का कार्यक्रम अल्पमात्रा में हुआ। विचार करना चाहिए कि जनसपर्क करने के लिये हमें विशेष रूप से प्रयत्न करने की आवश्यकता इसलिए पडी क्योंकि अपना नित्य का जनसपर्क नहीं होता। नित्य का सपर्क अपने कार्य का आधार होना चाहिए। यह अभी यथार्थ रीति से नहीं हो पाता। इसलिए हमें कभी-कभी ऐसा विशेष कार्यक्रम करना पडता है।

वैसे, यह 'जनसपर्क अभियान' महा भयकर शब्द है, क्योंकि यह 'अभियान' शब्द मुझे कभी अच्छा नहीं लगा। अभियान, याने तात्कालिक रूप से थोडे समय के लिए चलाना और फिर उसको भुला देना। हमें जनता का सपर्क जीवन्त रखना है। अभियान अपने लिए उपयोगी नहीं है।

हाँ, विवेकानद शिला स्मारक जैसे अवसर पर धन इकट्ठा करने के लिये अभियान तो ठीक है, क्योंकि वह नित्य-कार्य नहीं है। पर सघ का सपर्क-कार्य तो नित्य है, उसमें अभियान की भावना नहीं रखनी चाहिए। उसे नित्य बनाने की व्यवस्था अपनी शाखा की रचना में सुयोग्य रीति से करनी चाहिए। उसके लिए अपने सब स्वयसेवकों को बराबर समझदार और योग्य बनाना चाहिए। उनका कर्तृत्व विकसित करना चाहिए। हम भी स्वत के विचारों को बार-बार चितन के द्वारा और अपने बडे कार्यकर्ताओं से परामर्श द्वारा शुद्ध रखें। अपना व्यवहारकौशल्य जागृत रखें और अपने उदाहरण से अपने कार्यक्षेत्र में काम करनेवाले अपने बधुओं की योग्यता को बढाएँ। ऐसा प्रयत्न करना हम सब लोगों के लिए बहुत आवश्यक है।

हम लोगों ने एक और कार्य जनसपर्क के नाम से किया। बीच में हवा फैली थी कि दिल्ली का केंद्रीय शासन सघ पर प्रतिबध लगाने का प्रयत्न कर रहा है। कोई एक कानून बनाने के प्रयत्न के विरोध में जनमत कितना प्रबल है, यह उनको दिखाकर, उनके प्रयत्न को नष्ट करने का हेतु लेकर वह काम हुआ। वह भी एक तात्कालिक हेतु था। लेकिन यह ध्यान में रखना चाहिए कि अभियानों का सघ के नित्य कार्य से कोई मेल नहीं है।

सघ पथ नहीं सगठन है

किसी तात्कालिक हेतु को लेकर जैसे-जैसे काम होता है, वैसे-वैसे मनुष्य स्वय को एक छोटी-सी दीवार के अदर बद करने लग जाता है। तब कार्य पथ बनने लगता है और अपने बाहर या समाज की ओर देखने की

प्रवृत्ति कम होने लगती है। लगने लगता है कि हमारा काम और उसका आवश्यकताएँ तो अपने स्वयसेवकों से पूरी हो ही जाती हैं, तब बाकी की जनता से क्या करना है? ऐसी स्वाभाविक उपेक्षा-वृत्ति उत्पन्न हो जाती है। यह अपने अकेले का ही दोष नहीं है, मनुष्यमात्र का दोष है। ऐसे कितने पथ छोटी-छोटी दीवारों में बद हो गए हैं। लेकिन ऐसा अपना नहीं होना चाहिए। अपना सघ तो सगठन है, कोई पथ या सप्रदाय नहीं। इसी दृष्टि से अपने कार्य की यह व्यवस्था है कि हमारा अपने समाज से नित्य का सपर्क रहे, विचारों का आदान-प्रदान होता रहे। सबका समर्थन प्राप्त करने का प्रयास सतत होता रहे।

इसका पालन करने की इच्छा नहीं रहती, इसलिए हमेशा पालन नहीं करते। इसी कारण बीच के कालखड में मैंने देखा कि हमारा गटनायक केवल बाहर जाकर पुकारनेवाला हो गया है। बाकी के हमारे शिक्षक वगैरह अपने स्वयसेवकों से मिलकर अपना कार्यभार पूरा हुआ माननेवाले हो गए हैं। किसी उत्सव का निमत्रण देने मात्र के लिए वे समाज में जाते थे, अन्यथा नहीं। अत मैंने कई स्थानों पर यह नियम किया कि निमत्रण-पत्रिका डाक से नहीं भेजना। स्वयसेवक प्रत्येक घर जाए, वहाँ का प्रमुख व्यक्ति अगर न मिला तो दुबारा जाकर मिले और उन्हें पत्रिका देकर निमत्रण दे। ऐसा इसलिए करना है, क्योंकि सतत सपर्क बना रहे। कहीं पर उसमें न्यूनता न आए। सघ एक पथ न बन जाए।

समावेशक जनसपर्क

यह दृष्टि रखकर जनसपर्क करें। अपना भाग्य अच्छा है, क्योंकि कभी मित्र, तो कभी शत्रु हमें सपर्क करने का अवसर देते हैं। पिछली बार अपने मित्रों ने गोहत्या-निरोध के लिए काम करने का मौका प्राप्त करवा दिया। अब जो अपना विरोध करनेवाले हैं, उन्होंने मौका दिया। वे चारों ओर घोषणा करते हैं कि सघ बहुत खराब है। इसे बद करने के लिए कानून बनाएँगे। मैंने कहा था कि उनकी घोषणाओं से चिंतित होने की आवश्यकता नहीं परतु उसका निमित्त बनाकर सबके बीच जाओ। भिन्न दलों के हुए तो क्या हुआ, वे सब हिंदू ही हैं। इसलिए सबसे मिलना चाहिए। सबको आत्मीय बनाकर रखना अपना धर्म ही है। जन-जागरण कर सबका समर्थन प्राप्त करें। सब अपने पीछे अपने साथ खडे हैं, ऐसा चित्र उत्पन्न करें।

अपने सपर्क अभियान में सब प्रकार के राजनीतिक लोग आ गए। बडे-बडे नेता, लोकसभा-राज्यसभा के सदस्य भी। भिन्न-भिन्न प्रकार के काम करनेवाले लोग व सामाजिक सस्थाएँ आ गई। जन-साधारण तो थे ही, क्योंकि अपनी सबसे बडी शक्ति तो जन-साधारण ही है। उसका समर्थन भी हमें मिला। राजस्थान से समाचार मिला है कि जोधपुर व जयपुर, जहाँ अपना अच्छा काम है, वहाँ के अधिकाश वकीलों ने एक सयुक्त ज्ञापन शासकों को भेजा। उसमें उन्होंने लिखा कि सघ के बारे में जो प्रतिकूल योजना चल रही है, वह सर्वथा अश्लाध्य है। उसका हम लोग विरोध करते हैं। छोटे-छोटे गाँवो में भी अच्छी सभाएँ हुईं। अनेक प्रांतों से आए हुए समाचारों का यह निष्कर्ष है कि हमें जनता का समर्थन प्राप्त हुआ है। हमने सोचा कि हमारे स्वयसेवक अपनी छोटी सी मर्यादा में बद रहते हैं, उनकी मर्यादा को विस्तीर्ण व समाजव्यापी करने के लिए एक मौका मिला है, इसका उपयोग करना चाहिए। इस दृष्टि से यह जनसपर्क था।

कोई प्रतिबध लगाए अथवा न लगाए। दुबारा प्रतिबध की बात करे, तब फिर हम काम करेंगे, ऐसा तो अपना काम नहीं है। अपना काम तो अपने स्वत के विचार से चलता है।

अपने ध्येय की पूर्ति, समग्र समाज का सगठन है। इसलिए उसको ही अपने सामने रखकर यह जनसपर्क का कार्य निरतर करना है। उसमें से चुन-चुनकर स्वयसेवक बनाना, स्वयसेवक बनाकर उनको नित्य नियमित शाखा पर आने के लिए प्रेरणा देना अपना काम है।

जनसपर्क को व्यापक स्वरूप दे

हमने जनसपर्क-योजना के नाते लोगों तक पहुँचने का थोडा प्रयत्न किया है। अब हम उसे अधिक व्यापक स्वरूप दें और उसे निरतरता से चलाने का अभ्यास करें। इस प्रकार अपनी शाखा का सवर्द्धन करें। भिन्न-भिन्न स्थानों पर शाखाओं का निर्माण कर, उनको अधिकाधिक अच्छी प्रकार से चलाने के लिए प्रयत्न करें। हम यह मानकर चलें कि इसके लिए लगनेवाला समय और कष्ट करना पडेगा, वह करना ही अपना धर्म है। मन में यह विचार पक्का होना चाहिए कि सघ देश की एक अनिवार्य आवश्यकता है। आज समय की मॉग है कि हिंदू समाज का राष्ट्रभक्ति-परिपूर्ण सगठन देशव्यापी होकर सपूर्ण जीवन को प्रभावित करनेवाला होना ही चाहिए। ऐसा पूर्ण विश्वास, विचार और चितन से उभरकर आने की आवश्यकता है।

प्रवृत्ति कम होने लगती है। लगने लगता है कि हमारा काम और उसकी आवश्यकताएँ तो अपने स्वयसेवकों से पूरी हो ही जाती हैं, तब बाकी की जनता से क्या करना है? ऐसी स्वाभाविक उपेक्षा-वृत्ति उत्पन्न हो जाती है। यह अपने अकेले का ही दोष नहीं है, मनुष्यमात्र का दोष है। ऐसे कितने पथ छोटी-छोटी दीवारों में बद हो गए हैं। लेकिन ऐसा अपना नहीं होना चाहिए। अपना सघ तो सगठन है, कोई पथ या सप्रदाय नहीं। इसी दृष्टि से अपने कार्य की यह व्यवस्था है कि हमारा अपने समाज से नित्य का सपर्क रहे, विचारों का आदान-प्रदान होता रहे। सबका समर्थन प्राप्त करने का प्रयास सतत होता रहे।

इसका पालन करने की इच्छा नहीं रहती, इसलिए हमेशा पा नहीं करते। इसी कारण बीच के कालखड में मैंने देखा कि ह गटनायक केवल बाहर जाकर पुकारनेवाला हो गया है। बाकी के शिक्षक वगैरह अपने स्वयसेवकों से मिलकर अपना कार्यभार पूरा माननेवाले हो गए हैं। किसी उत्सव का निमत्रण देने मात्र के लिए में जाते थे, अन्यथा नहीं। अत मैंने कई स्थानों पर यह नियम निमत्रण-पत्रिका डाक से नहीं भेजना। स्वयसेवक प्रत्येक घर जाए प्रमुख व्यक्ति अगर न मिला तो दुबारा जाकर मिले और उन्हें प निमत्रण दे। ऐसा इसलिए करना है, क्योंकि सतत सपर्क ब पर उसमें न्यूनता न आए। सघ एक पथ न बन जाए।

समावेशक जनसपर्क

यह दृष्टि रखकर जनसपर्क करें। अपना भाग्य कभी मित्र, तो कभी शत्रु हमें सपर्क करने का अवसर दे अपने मित्रों ने गोहत्या-निरोध के लिए काम करने का दिया। अब जो अपना विरोध करनेवाले हैं, उन्होंने भी और घोषणा करते हैं कि सघ बहुत खराब है। इसे कानून बनाएँगे। मैंने कहा था कि उनकी घोषणाओं आवश्यकता नहीं, परतु उसका निमित्त बनाकर सबके दलों के हुए तो क्या हुआ, वे सब हिंदू ही हैं। चाहिए। सबको आत्मीय बनाकर रखना अपना धर्म कर सबका समर्थन प्राप्त करें। सब अपने पीछे, अपने चित्र उत्पन्न करें।

गया, तो वह अपने को कुछ विशेष प्रतिष्ठित स्वयसेवक मानता था और वहाँ के कार्यकर्ताओं से इस प्रकार की डाँट-फटकार की बात करता था, मानो वह कोई बडा अधिकारी है और अन्यान्य शाखाओं के कार्यकर्ता बिल्कुल क्षुद्र हैं। मेरे सामने भी एक बार ऐसी घटना हुई। नागपुर शाखा का एक स्वयसेवक पजाब में मैट्रिक की परीक्षा देने के लिए गया था। वहाँ पहुँचने पर उसने वहाँ की शाखा के कार्यवाह को, जो बडे बुद्धिमान व पढे लिखे डाक्टरेट प्राप्त थे, काम न करने के लिये डाँटा। मेरे सामने जब वह घटना आई, तब मैंने उस स्वयसेवक को बुलाकर पूछा— 'तू ऐसा कौन विशिष्ट है, जो यहाँ के कार्यवाह से इस प्रकार की बातें करता है?' उसने कहा— 'मैं नागपुर का स्वयसेवक हूँ।' मैंने कहा— 'नागपुर का कोई भी आ जाए तो क्या हम उसकी इस प्रकार की डाँट-फटकार सुनेंगे? तुम नागपुर के हो तो मैं भी नागपुर का हूँ, मेरे सामने क्या बात करते हो? नागपुर के 'शेंबडे पोर' (छोटे बच्चे जिनको अभी नाक साफ करना भी नहीं आता) बाहर प्रतिष्ठित बनकर लोगों से बातचीत करें, क्या उचित है?'

उस दिन इसी विषय को लेकर चर्चा चली कि नागपुर की ऐसी क्या विशेषता है। एक पक्ष का कहना था कि नागपुर सघ का केंद्र है— इस नाते नागपुर शाखा की एक विशेष प्रतिष्ठा है। हमें उस प्रतिष्ठा को बनाकर रखना चाहिए। दूसरे पक्ष ने कहा कि ऐसी कोई बात नहीं है— अनेक शाखाओं की तरह नागपुर भी एक शाखा है। यह तो योगायोग है कि सघ यहाँ प्रारम्भ हुआ। परमात्मा ने क्या सभी कार्यकर्ता यहीं पैदा किए हैं? इस प्रकार दोनों पक्षों के बीच काफी आवेशपूर्ण बातचीत हुई।

तटस्थ होकर अपने डाक्टरजी शातचित्त से सब सुन रहे थे। बैठक में मैं भी था। मेरा उपरोक्त अनुभव भी था। जब काफी समय हो गया और कुछ निर्णय नहीं होता दिखाई दिया तो मैंने कहा कि नागपुर की शाखा को महत्त्व देने का कोई कारण नहीं है, अन्य बडे-बडे नगरों में भी उत्साह से अच्छी शाखाएँ चलती हैं। बडे बुद्धिमान तथा कर्तृत्ववान स्वयसेवक उन शाखाओं में भी आते हैं, इसलिए नागपुर शाखा को अन्य शाखाओं से भिन्न मानने की आवश्यकता नहीं है।

इसपर नागपुर को केंद्र माननेवालों ने कहा कि किसी भी सगठन के लिए एक कार्य के जड की आवश्यकता होती है। बिना जड के सगठन का विस्तार नहीं हो सकता और सघ की जड तो नागपुर है। मैंने कहा— 'सघकार्य की जड नागपुर की शाखा, तुम, मैं और न ही ये बडी-बडी बातें

१२ नागपुर शाखा का दायित्व

(नागपुर में ४ जुलाई १९७१ को विभिन्न क्षेत्रो में काम करनेवाले कार्यकर्ताओं की बैठक में श्रीगुरुजी ने सघकार्य का केंद्रस्थान होने के नाते नागपुर के महत्त्व को बताया। परतु यह मार्गदर्शन, सघकार्य की रचना, पद्धति, व्यवहार ओर आदर्श की दृष्टि से सपूर्ण देश की सभी शाखाओं के कार्यकर्ताओं को भी लागू होता है)

अपने नागपुर में भिन्न-भिन्न प्रकार के काम-धाम व उद्योग करनेवाले स्वयसेवक हैं। कुछ वकालत करनेवाले भी हैं। उन्हें यहाँ देखकर मुझे अपनी नागपुर शाखा का पिछला स्मरण आ रहा है। पहले अपने यहाँ प्रति सप्ताह ऐसे स्वयसेवकों की बैठक होती थी, जो वकालत करते थे और नागपुर जिले या तहसील में सघकार्य के लिए दौरा करते थे। उस बैठक में मैं भी अपेक्षित रहता था। यद्यपि मैंने वकालत कुछ विशेष नहीं की, पर वकालत का लाइसेन्स था। वह बैठक प्रति मगलवार रात्रि को होती थी। अपने सघ के निर्माता जब-जब नागपुर में होते, उस बैठक में अवश्य उपस्थित रहते थे। वकील स्वयसेवक बधुओं से अपेक्षा रहती थी कि वे प्रति रविवार नागपुर या जिले के किसी विशिष्ट स्थान पर जाकर शाखा निर्माण करने का प्रयत्न करें। यदि वहाँ पहले से ही शाखा हो तो उसे अच्छी प्रकार से चलाने का प्रयत्न करें। गॉव के सब लोगों से मिलें। उनके साथ स्नेह-सबध प्रस्थापित करें। उनकी समस्याएँ कठिनाइयाँ इत्यादि समझकर, आवश्यकतानुसार उन्हें उचित सलाह दें। इस प्रकार अपने सघकार्य तथा उसके प्रभाव-क्षेत्र के विस्तार का प्रयत्न करें। अत मगलवार को होनेवाली इस बैठक में रविवार को किए गए कार्य का लेखा-जोखा हुआ करता था। अन्य अनेक विषयों पर भी बातचीत हुआ करती थी।

नागपुर के स्वयसेवक जब किसी काम से नागपुर से बाहर जाते, तब वहाँ शाखा होने पर शाखा में जाने का नियम होने के कारण वहाँ की शाखाओं में जाते थे। वहाँ के कार्यकर्ताओं तथा स्वयसेवकों से मिलते तथा सघकार्य की दृष्टि से विचार-विनिमय करते थे। उन दिनों अनेक बार यह अनुभव आता था कि नागपुर का कोई स्वयसेवक किसी दूर की शाखा में

गया, तो वह अपने को कुछ विशेष प्रतिष्ठित स्वयसेवक मानता था और वहाँ के कार्यकर्ताओं से इस प्रकार की डाँट-फटकार की बात करता था, मानो वह कोई बडा अधिकारी है और अन्यान्य शाखाओं के कार्यकर्ता बिल्कुल क्षुद्र हैं। मेरे सामने भी एक बार ऐसी घटना हुई। नागपुर शाखा का एक स्वयसेवक पजाब में मैट्रिक की परीक्षा देने के लिए गया था। वहाँ पहुँचने पर उसने वहाँ की शाखा के कार्यवाह को, जो बडे बुद्धिमान व पढे लिखे डाक्टरेट प्राप्त थे, काम न करने के लिये डॉटा। मेरे सामने जब वह घटना आई, तब मैंने उस स्वयसेवक को बुलाकर पूछा– 'तू ऐसा कौन विशिष्ट है, जो यहाँ के कार्यवाह से इस प्रकार की बातें करता है?' उसने कहा– 'मैं नागपुर का स्वयसेवक हूँ।' मैंने कहा– 'नागपुर का कोई भी आ जाए तो क्या हम उसकी इस प्रकार की डॉट-फटकार सुनेंगे? तुम नागपुर के हो तो मैं भी नागपुर का हूँ, मेरे सामने क्या बात करते हो? नागपुर के 'शेंबडे पोर' (छोटे बच्चे जिनको अभी नाक साफ करना भी नहीं आता) बाहर प्रतिष्ठित बनकर लोगों से बातचीत करें, क्या उचित है?'

उस दिन इसी विषय को लेकर चर्चा चली कि नागपुर की ऐसी क्या विशेषता है। एक पक्ष का कहना था कि नागपुर सघ का केंद्र है– इस नाते नागपुर शाखा की एक विशेष प्रतिष्ठा है। हमें उस प्रतिष्ठा को बनाकर रखना चाहिए। दूसरे पक्ष ने कहा कि ऐसी कोई बात नहीं है– अनेक शाखाओं की तरह नागपुर भी एक शाखा है। यह तो योगायोग है कि सघ यहाँ प्रारभ हुआ। परमात्मा ने क्या सभी कार्यकर्ता यहीं पैदा किए हैं? इस प्रकार दोनों पक्षों के बीच काफी आवेशपूर्ण बातचीत हुई।

तटस्थ होकर अपने डाक्टरजी शातचित्त से सब सुन रहे थे। बैठक में मैं भी था। मेरा उपरोक्त अनुभव भी था। जब काफी समय हो गया और कुछ निर्णय नहीं होता दिखाई दिया तो मैंने कहा कि नागपुर की शाखा को महत्त्व देने का कोई कारण नहीं है, अन्य बडे-बडे नगरों में भी उत्साह से अच्छी शाखाएँ चलती हैं। बडे बुद्धिमान तथा कर्तृत्ववान स्वयसेवक उन शाखाओं में भी आते हैं, इसलिए नागपुर शाखा को अन्य शाखाओं से भिन्न मानने की आवश्यकता नहीं है।

इसपर नागपुर को केंद्र माननेवालों ने कहा कि किसी भी सगठन के लिए एक कार्य के जड की आवश्यकता होती है। बिना जड के सगठन का विस्तार नहीं हो सकता और सघ की जड तो नागपुर है। मैंने कहा– 'सघकार्य की जड नागपुर की शाखा, तुम, मैं और न ही ये बडी-बडी बातें

करनेवाले लोग हैं, वह तो डॉ. हेडगेवार हैं।' जब उनका नाम आया, तब उन्होंने 'चाय लाओ' कहकर चर्चा को रोक दिया। क्योंकि उन्हें पसद नहीं था कि उनके नाम का विशेष उल्लेख हो। इसलिए उस विषय को उन्होंने वहीं बद कर दिया।

केंद्र का महत्त्व

इस विषय पर दूसरी दृष्टि से विचार करने पर हमें अनुभव होगा कि केंद्र का महत्त्व तो है ही। अपना कार्य जब सपूर्ण देश में विस्तारित हो रहा है, तब सघकार्य के एक अच्छे उदाहरण के रूप में और सब ओर का सामान्य नियमन कर सकने योग्य व्यवस्था किसी न किसी केंद्र में रहनी आवश्यक ही है। इसलिए कार्य की नींव के रूप में दृढ केंद्र की आवश्यकता है।

इस दृष्टि से सघकार्य की क्रमानुसार प्रगति का जो इतिहास है, जो चित्र हमारे सामने है, उसमें नागपुर शाखा को केंद्र के नाते प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त होता है। अन्य शाखाओं के लिए उदाहरण बने, इस दृष्टि से यहाँ की शाखा के कार्य विस्तार व स्वरूप को बनाकर रखने की आवश्यकता है, ताकि सपूर्ण देशभर के कार्य का सचालन, नियन्त्रण व मार्गदर्शन कर सके।

इतने वर्षों में कार्य की जो कुछ प्रगति अभी तक हुई है, उसमें सपूर्ण सगठन के आधारस्वरूप उदाहरण बनने का भाग्य नागपुर को प्राप्त हुआ है। अब हम उसको टाल नहीं सकते। उसको टालना याने सगठन को क्षति पहुँचाना है, धक्का देना है। यह दायित्व हमारी इच्छा हो, चाहे न हो, हम पर आया है। हम नागपुर में रहने, आने, जन्म लेने अथवा किसी भी कारण से यहाँ की शाखा के स्वयसेवक बने हों, अब इस दायित्व को टाल नहीं सकते। हममें से प्रत्येक को वह छोटा हो या बडा, यह भार उठाना ही होगा। उसके लिये अपनी शक्ति लगानी ही होगी।

अपना उदाहरण प्रस्तुत करें

क्या हमने यह देखने के लिए नागपुर का पूर्ण नक्शा अपनी आँखों के सामने रखा है कि ऐसे कौन-कौन से क्षेत्र हैं, जहाँ पर अभी शाखाएँ प्रारभ करनी हैं? इसे ध्यान में रखकर कार्य के विस्तार की क्या ऐसी कोई योजना बनाई है कि कोई भी क्षेत्र सघकार्य से अछूता नहीं रहेगा? ऐसा करने के लिए जितनी मनुष्य-शक्ति लगेगी उतनी लगाएँगे। इस प्रकार

देशभर की शाखाओं के सामने उदाहरण प्रस्तुत करेंगे कि तुम भी ऐसा ही करो।

कार्यकर्ताओं के सामने भी उदाहरण प्रस्तुत करना आवश्यक है। नागपुर में भिन्न-भिन्न प्रांतों के कार्यकर्ता व स्वयसेवक आते रहते हैं। वे स्मृति-मन्दिर तथा कार्यालय को देखने आते हैं। वे सब अपनी ओर देखते हैं। हमारा काम कैसे चलता है, कैसी व्यवस्था है, कार्यकर्ता केसा आचरण करते हैं, उनका व्यवहार कैसा है आदि बातों की ओर उनका सूक्ष्म ध्यान रहता है। दुर्भाग्य से किसी की कमजोरी देखना मनुष्य का स्वभाव होने के कारण, वही उनको दिखाई देती है, अच्छाई नहीं दिखाई देती। इसलिए हमें बडा सतर्क रहकर काम करना चहिए। न्यून सबके ध्यान में आना, कार्य के लिये लाभदायक नहीं है। इसलिए हमें अपने सपूर्ण आचरण, व्यवस्था-कार्य आदि की ओर ध्यान देकर निर्दोष बनने का प्रयत्न करना होगा। यह भी अपना दायित्व है।

'अधिकार' का सबध कर्तव्य से

यहाँ सब बडे-बडे कार्यकर्ता उपस्थित हैं। वे सोचें कि अपने काय व दायित्व को हम कितनी मात्रा में पूर्ण कर रहे हैं। अपनी हिदू-प्रणाली में 'अधिकार' शब्द अग्रेजी के 'राइट' शब्द के अर्थ में प्रयुक्त नहीं होता। अपने यहाँ इसका अर्थ 'कर्तव्य' है। अग्रेजी के सपर्क के कारण आज अधिकार को 'राइट' का समानार्थक मानकर, उस शब्द को अर्थभ्रष्ट कर डाला है। 'अधिकारी' का अर्थ है अधिक कार्य की जिम्मेदारी उसपर है। इसलिए अपने सारे व्यवहार में उसे अधिक सतक होकर चलने की आवश्यकता है। स्वय आगे बढकर और अपने साथी कार्यकर्ताओं को साथ लेकर काम करने के लिए वह बँधा हुआ है। अधिकार, याने अधिक बडा व्यापक कर्तव्य। सामान्य स्वयसेवकों का अधिकार शाखा में आने का है। गटनायक का अधिकार अपने गट के स्वयसेवकों को नित्य उपस्थित रखने तथा अपने क्षेत्र के अनेक मित्रों को जुटाने का है। इसी प्रकार शिक्षक, मुख्य शिक्षक, कार्यवाह का दायित्व उत्तरोत्तर बढता जाता है। कार्यवाह पर पूरे क्षेत्र का दायित्व है। हर घर से स्वयसेवक बनाना, प्रत्येक व्यक्ति तक सघ का विचार पहुँचाना, उसके अत करण में सघ के प्रति श्रद्धा निर्माण करना, उनमें से योग्य स्वयसेवक प्राप्त करना, शाखा को शक्तिपुज के रूप में क्षेत्र में खडा करना, यह दायित्व कार्यवाह पर रहता है। उसने स्वय

परिश्रमी बनकर अपने साथ काम करनेवाले या अपने कार्यक्षेत्र में काम करनेवाले सब बंधुओं को अपने समान परिश्रमी बनाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

आत्मपरीक्षण

हमें स्वयं का परीक्षण करना चाहिए कि हम आदर्श की दृष्टि से अपने जीवन में ठीक प्रकार चलने के लिए प्रस्तुत हुए अथवा नहीं। जैसा व जितना परिश्रम हमसे अपेक्षित है, वैसा हम पूर्ण कर पाते हैं अथवा नहीं? हम अपने स्वयंसेवकों की साज-संभाल करते हुए उनके साथ अतीव आत्मीयता का पारिवारिक संबंध प्रस्थापित करते चलते हैं या नहीं? हर छोटे-बड़े मामले में उनको उचित सलाह देते हुए, उनके उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त करने में सहायक बनते हैं या नहीं?

इसके लिए अनेक प्रकार के कष्ट हमें स्वयं सहन करने पड़ेंगे तथा समय लगाना पड़ेगा। इस प्रकार का दायित्व उठाते हुए भी सदैव आनंदित रहकर कार्य करना होगा। इसलिए प्रत्येक को अपने स्वतः के अंदर निरीक्षण करना चाहिए। ऐसा निरीक्षण कर अपने व्यवहार को अधिकाधिक निर्दोष बनाते हुए और संघकार्य-संबंधी विचारधारा को स्पष्ट रूप से अंतःकरण में धारणकर, अपने कार्य का विस्तार तथा दृष्टिकोण प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए।

अनुशासन और कार्यक्रम

दृढ़ीकरण के लिए भी सावधानीपूर्वक सोचना होगा। स्वयंसेवकों के अंतःकरण में कितनी मात्रा में कार्य का ही विचार आता है, अनुशासन का बंधन पालन करने की कितनी क्षमता उनमें है, इस पर दृढ़ीकरण निर्भर करेगा। यदि अनुशासनबद्ध रीति से चलने के लिए हम लोग आनंद से प्रस्तुत हो सकते हैं, तब तो अपना एक पक्का शक्तिसंपन्न कार्य सबके सामने खड़ा हो सकता है। लोग कहते हैं कि संघ में अनुशासन है। कुछ मात्रा में लोगों का यह कहना सही भी है। फिर भी उससे समाधान मानने की आवश्यकता नहीं क्योंकि हम संपूर्ण समाज का संगठन करने निकले हैं। कभी-कभी ऐसा समाधान मानने पर अभिमान भी हो जाता है।

अनुशासन का अर्थ है शारीरिक क्रियाओं से लेकर मन में उठनेवाले विचारों तक, शरीर, मन व बुद्धि निर्देशानुसार कार्य करे। इन तीनों पर नियंत्रणवाला अनुशासन जितनी मात्रा में निर्माण कर स्वयंसेवक

वधुओं को प्रेमपूर्वक, प्रसन्नता से बाँधकर रख सकेंगे, उतना ही वह पक्का होगा। इस दृढता को अपने अदर लाने के लिए कुछ प्रयत्न करना पडता है। यह प्रयत्न करने के लिए शरीर को अभ्यास करवाने से धीरे-धीरे मन के ऊपर नियत्रण आता है। मन पर नियत्रण होने के पश्चात् आपस में विचार-विमर्श करने के लिये बैठें, तो अपनी बुद्धि में उत्पन्न होनेवाले विचारों में भी एकरूपता स्वभावत उत्पन्न हो जाती है। इसलिए हम कहते हैं कि अपनी शाखाओं में शारीरिक शिक्षा से प्रारभ करें। शरीर को सूत्रवद्ध व्यवहार का अभ्यास करवाएँ। अभ्यास करवाते समय मन को काबू में रखना ही पडता है, क्योंकि भटकनेवाले मन से युक्त मनुष्य-शरीर योग्य रीति से काम नहीं कर सकता। मन को किसी न किसी प्रकार से सयमित करना ही पडता है। इसका अभ्यास बढाने से हम जिस प्रकार का सामजस्य चाहते हैं, निर्माण कर सकेंगे।

हमारी शाखा चलती है, दो-चार खेल खेलकर उत्साह निमाण कर लेते हैं दौड-धूप करते हैं, हो-हल्ला करते हैं, परतु इस उत्साह से शक्ति तथा दृढता उत्पन्न नहीं होती। केवल आपस में प्रेम उत्पन्न हो जाएगा, परतु साथ काम करने की जो शक्ति निर्माण होनी चाहिए वह न हो पाएगी। इसलिए हमें अपने अन्य कार्यक्रमों का अवलब करना चाहिए। अपने प्रवास में शाखा पर होनेवाले कार्यक्रमों के बारे में मैं पूछता हूँ, तब सामान्यत लोग खेल बताते हैं। क्वचित् दड, व्यायाम-योग बताते हैं। ऐसे भी मुख्यशिक्षक हैं, जिन्होंने 'समता' शब्द नहीं सुना है। फिर भी समझते हैं कि हमारी शाखा बडी अच्छी चल रही है। मैं भी अधिक आग्रह नहीं करता, क्योंकि मैं मोहिते साय शाखा का अनियमित स्वयसेवक हूँ। यदि लोगों ने पूछा कि तुम्हारी शाखा में समता का अभ्यास कितनी बार होता है, तो मेरे सामने समस्या खडी हो जाएगी। विजयादशमी के कार्यक्रम की पूर्वसिद्धता के समय जो कुछ समता का अभ्यास होता होगा, बस वही होता है। शाखाओं में सूर्यनमस्कार जैसे कार्यक्रम भी नहीं होते।

कार्यक्रम-सबधी आग्रह

अपने यहाँ इतने सुचारु रूप से कार्यक्रम बनाकर दिए हैं कि हम अपना मानसिक, बौद्धिक तथा शारीरिक— सब प्रकार का विकास कर सकते हैं। हम आग्रहपूर्वक करें तो अन्य लोग भी करने लगेंगे। सघ का पक्का काम इसमें से ही होगा।

जिस कार्यरूपी लक्ष्य के लिए ये सब कार्यक्रम करते हैं, उस लक्ष्य को भी समझना चाहिए। चारों ओर की परिस्थिति समझनी चाहिए। भूत, वर्तमान, भविष्य, तीनों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए तथा उसमें अपना लक्ष्य किस प्रकार अति शुद्ध, योग्य, करणीय और इससे बढ़कर अपने जीवन में कोई अन्य कर्तव्य नहीं, इतना सुस्पष्ट बोध मन में जागृत रहे— ऐसा प्रयत्न होना चाहिए।

शाखा में योजनापूर्वक बौद्धिक वर्ग होते हैं, पर स्वयंसेवक उसे अपना सोने का समय समझते हैं। इस कारण किसी ने एकाध विषय उत्तम रीति से रखा भी, तो उसके सभी पहलू ध्यान में नहीं आ पाते। अत दूसरा बौद्धिक-वर्ग होने तक उस विषय को अच्छी प्रकार से स्वयंसेवकों को समझाया जाए। आपस में चर्चा, बातचीत द्वारा उस विषय को स्वयंसेवकों के अंत करण में पक्का करने का प्रयत्न करना चाहिए। स्वयंसेवकों को प्रार्थना जैसी नित्य की बातों का भी पता नहीं रहता। अपना विचार समझने के लिए उसका उपयोग है। हमें प्रार्थना भली प्रकार आ गई है, अब उसकी ओर देखने की आवश्यकता नहीं है-- यह सोचना गलत है। मनुष्य बहुत जल्दी भूल जाता है। बार-बार गाते रहना पडता है। स्वयंसेवक के मन में यह विचार रहे कि मेरे सामने एक बडा श्रेष्ठ भव्य-दिव्य लक्ष्य है। इससे बढकर और कोई लक्ष्य अपने हिंदू-समाज के सामने हो नहीं सकता। इस श्रेष्ठ लक्ष्य को अपने अंत करण में स्थायी बनाकर सुसंगठित अनुशासित जीवन बनाया जा सकता है। वह अनुशासित जीवन अपनी दिन-प्रतिदिन की शाखा के रूप में संस्कार ग्रहण करने के कार्य से ही हो सकता है। इसलिए अपनी पूरी शक्ति से संपूर्ण समाज को इस ओर आकृष्ट करने में अपना समय लगाने से बढकर और कोई कर्तव्य नहीं है। इससे अपनी शाखा में कभी न्यूनता नहीं आएगी। शाखा नित्य वर्धमान रहेगी और समग्र समाज इस दृश्य को देखकर अपनी ओर आकृष्ट होता रहेगा। संपूर्ण समाज अपने विचारों को सुनने के लिए उत्सुक होगा। इस प्रकार समग्र राष्ट्रजीवन इन विचारों से व्याप्त होने की स्थिति उत्पन्न हो सकेगी।

अपना सौभाग्य

आज यदि संपूर्ण देश का चित्र देखें तो दिखाई देगा कि राष्ट्र का विचार कोई नहीं कर रहा है। सभी अपने स्वार्थ के विचार में लगकर सारी नीति-अनीति भूल गए हैं। इस कारण भ्रष्टाचार ही सबसे बडा आचार हो

गए है। जिनका जीवन भ्रष्ट हो चुका है, उनके हाथों राष्ट्र का भविष्य सुरक्षित कैसे रह सकता है? इसका उपाय करने की क्षमता किसी के पास है, तो वह केवल संघ ही है। इसलिए सोचना चाहिए कि हम पर कितना बड़ा दायित्व है। यह हमारे लिए भाग्य की बात है। इस भाग्य के अनुरूप बनने के लिए जी-तोड मेहनत करने की आवश्यकता है। हमारे पास उत्तम लक्ष्य व उत्तम कार्य होते हुए भी अपने राष्ट्र के साथ सच्चाई का व्यवहार नहीं किया तो यह अपने राष्ट्र और जीवन के साथ धोखा करना होगा।

पोषित अथवा पोषक

शाखाएँ वृक्ष से पोषण पाती हैं तथा वृक्ष का पोषण करती हैं। अपनी शाखाएँ पोषण पानेवाली हैं अथवा पोषण करनेवाली अर्थात् संघ को खानेवाली हैं? जब से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में कार्य शुरू हुए हैं, उनसे अपेक्षा यही है कि ये सारे कार्य सब प्रकार से पोषक बनें। ये सब संपूर्ण समाज में घुसने के मार्ग हैं। समाज को अपने कार्यानुकूल बनाने के साधन हैं। समाज में से स्वयंसेवक प्राप्त करने के साधन हैं। इसके लिए उदाहरण रूप कार्य नागपुर के क्षेत्र में चलाना है। कार्य की जड के नाते, नागपुर का कार्य सबका पोषण करनेवाला खडा होगा, तब वह सबके लिये आदर्श उदाहरण के रूप में प्रस्तुत होगा। तब हम लोग अपने संघकार्य को देशभर में उत्तम रीति से चलाने की बात कहने का विश्वास हृदय में रखकर देश-भ्रमण कर सकेंगे।

१३ मैं साधारण स्वयंसेवक

(महाराष्ट्र प्रांत के कार्यकर्ता वर्ग में समारोप बौद्धिक)

परिचय देते समय कतिपय स्वयंसेवक 'मैं एक साधारण स्वयंसेवक हूँ' अथवा 'सामान्य स्वयंसेवक हूँ', ऐसा बताते हैं। उनके कहने का आशय होता है कि 'संघकार्य का मुझ पर कोई दायित्व नहीं है। यदि कोई दायित्व है तो वह यह कि ऐसा आचरण करना, जिससे गटनायक, गणशिक्षक आदि को अपने लिए विशेष प्रयास करने पडें। अर्थात् संघ-शाखा से अनुपस्थित रहना, जिससे बुलाने के लिए अथवा सूचना देने के लिए उन्हें इनके घर आना पडे। इस प्रकार गटनायक अथवा गणशिक्षक काम में सतर्क रहें,

मानो यही उनका दायित्व है– ऐसा स्वर उनके कहने से निकलता है।

प्रतिष्ठा की बात

अब यह जो 'साधारण स्वयसेवक' शब्द का प्रयोग है, वह तो अच्छा है, क्योंकि हम सभी साधारण स्वयसेवक हैं। असाधारण कौन है? कुछ स्वयसेवक मेरे बारे में कहते हैं कि सघ में मेरा प्रमुख स्थान है। अग्रेजी में 'चीफ ऑफ आर एस एस ' कहते हैं। लेकिन मुझमें असाधारणता कौन सी है? इतना ही कि थोडी दाढी बडी है। आप भी नित्य दाढी न बनाएँ तो आपकी भी बढेगी। उसमें असामान्यता क्या है? यहाँ पर भी कुछ ऐसे लोग हैं, जो उस दिशा में प्रयत्नशील हैं। इसलिए उसमें कोई विशेषता नहीं। अपने सघ का कार्य जिन्होंने आरभ किया, उन्होंने अपने सहयोगी कार्यकर्ता बधुओं से आग्रहपूर्वक कहा– 'यह जो सरसघचालक का काम है, उसे करने के लिए किसी अन्य को तैयार करो, जिससे मैं उसे यह दायित्व सौंपकर एक 'साधारण स्वयसेवक' के रूप में खुल कर काम कर सकूँ। साधारण स्वयसेवक कैसा हो– इस सबध में मेरी कुछ धारणा, इच्छा, अपेक्षा है। तदनुसार स्वय चलकर अपने साथ-साथ काम करने वालों के सामने एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा सके।' अर्थात् उनकी कल्पना 'साधारण स्वयसेवक' बनकर रहने की थी। परिस्थिति ने उन्हें वैसे रहने नहीं दिया ओर सघ प्रमुख के नाते काम करना पडा। उन्होंने ऐसी इच्छा रखी, उसका एकमात्र कारण यह था कि अपने सगठन में 'साधारण स्वयसेवक' होना अत्यत प्रतिष्ठा की बात है। कोई मुझसे पूछे कि 'तुम्हारे जीवन में सर्वाधिक गर्व करने योग्य बात कौन सी है?' इसके उत्तर में मैं कहना चाहूँगा– 'मैं राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ का स्वयसेवक हूँ।' इससे अधिक गर्व करने योग्य कोई बात नहीं है। हाँ, कुछ पढ लिया, कुछ उपाधियाँ मिली, कुछ लोगों को पढाया भी, कहीं–कहीं जाकर भाषण करता हूँ, कुछ लोग आकर माला पहनाते हैं कुछ साष्टाग दडवत प्रणाम भी करते हैं। मेरे इस रूप और वेश के कारण मुझे अधिक लोग नमस्कार करते हैं, उसमें भी मुझे गौरव अनुभव नहीं होता। बडे–बडे लोग मिलते हैं, बाहर के भी मिलते हैं, धार्मिक क्षेत्र के श्रेष्ठ साधु पुरुष मिलते हैं। हम लोगों पर उनकी कृपा है। राजनीति के क्षेत्र के लोग मिलते हैं, शिक्षा-क्षेत्र वाले मिलते हैं, विभिन्न समस्याएँ सामने रखते हैं और कहते हैं कि हमें परामर्श दीजिए। ये सब बातें मन में एक प्रकार से अभिमान उत्पन्न करने वाली अवश्य हैं, परतु मुझे कभी ऐसा नहीं लगा कि इसपर गर्व किया जाए। गर्व करने की

यदि कोई बात हो तो यही है कि 'ईश्वरीय सकेत और सयोग से मैं अपने सघ का स्वयसेवक हूँ।'

कार्य-व्यवस्था

भावार्थ यह कि स्वयसेवक होने से बढकर गर्व और सम्मान की दूसरी बात हमारे लिए कोई नहीं है। अब आप सोचेंगे कि यदि ऐसा है तो सरसघचालक से लेकर गटनायक तक अपने ये सारे अधिकारी हैं, उनका क्या? इसका उत्तर यही है कि यह तो अपने कार्य की व्यवस्था है। क्योंकि कोई भी सगठन व्यवस्था के बिना चल नहीं सकता और हमें अपना सगठन चलाना है। अर्थात् वह उस दायित्व का भार वहन करनेवाला स्वयसेवक है। परतु उसे भी जीवन में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण यदि कोई बात माननी हो, तो वह यह है कि व्यवस्था में आज मुझे भले ही कोई अधिकार दिया गया हो, मैं स्वयसेवक हूँ, यही एकमात्र गर्व की बात है।

इसलिए जब हम कहते हैं कि मैं एक साधारण स्वयसेवक हूँ, तब इस दायित्व का बोध हमें अपने हृदय में रखना चाहिए कि यह दायित्व बहुत बडा है। समाज भी हमारी ओर देख रहा है और समाज हमें एक स्वयसेवक के रूप में देखता है। समाज की हमसे बडी-बडी अपेक्षाएँ रहें और उन अपेक्षाओं को पूर्ण करते हुए हम उनसे भी अधिक अच्छे प्रमाणित हों।

शाखा कैसी हो ?

सघ-शाखा के विषय में ध्यान रखें कि हमारी शाखा निम्नलिखित अपेक्षाओं को पूर्ण करनेवाली हो–

* शाखा नित्य लगनी चाहिए।
* वह निश्चित समय पर लगनी चाहिए।
* शाखा में भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यक्रम होने चाहिए।
* सब स्वयसेवकों में परस्पर मेलजोल, स्नेह, प्रेम और शुद्धता का वातावरण हो।
* आपस में विचार-विनियम, चर्चा आदि कर अपने अत करण में ध्येय का साक्षात्कार नित्य अधिकाधिक सुस्पष्ट और बलवान करते रहने की हमारे अदर प्रेरणा व इच्छा रहे।
* सामूहिक रूप से नित्य अपनी प्रार्थना का उच्चारण गभीरता श्रद्धा तथा उसका भाव समझकर करें।
* हमारे परम पवित्र प्रतीक के रूप में जो अपना भगवा ध्वज है, उसे

मिलाकर नम्रतापूर्वक प्रणाम करें।

* 'शाखा विकिर' के अनन्तर बैठकर आपस में बातचीत करें। कौन आया, कौन नहीं आया, इसकी पूछताछ करें।

ऐसी अपनी दैनिक शाखा के विषय में नित्य करणीय बातें हैं।

हमारे लिए करणीय

* यदि शाखा नियमित एवं समय पर प्रारंभ करनी है तो शाखा के निर्धारित समय से पर्याप्त पूर्व अपने निवास से निकलें और शाखा के समय से कम से कम दो मिनट पूर्व संघस्थान पर उपस्थित रहें।
* कोई हमें बुलाने आएगा तब जाएँगे, ऐसी प्रतीक्षा करना आवश्यक नहीं है। बुलाने वाला अपना कर्तव्य करेगा पर उसे कर्तव्य करने का अवसर देने के लिए घर पर ही बैठे रहें, यह उचित नहीं, इसका ध्यान रखें।
* विचार करें कि मैं संगठन करनेवाला मनुष्य हूँ, अकेलाराम नहीं। तब शाखा के लिए कुछ पहले निकलकर आसपास जो स्वयंसेवक रहते हों, उन्हें पुकारकर अपने साथ ले जाएँ। इसमें दायित्व का प्रश्न नहीं उठता। गटनायक अथवा गणशिक्षक बनने पर ही करने का काम नहीं है। सामान्य बात है कि जब भी हम किसी अच्छे काम के लिए जाते हैं, तो अपने साथ अपने मित्रों को बुलाकर ले जाते हैं। यह हमारे लिये स्वाभाविक कार्य होना चाहिए।
* संघस्थान पर सभी कार्यक्रम मन लगाकर, अनुशासनपूर्वक, नियमानुसार करें। उसमें कष्ट हो तो रुष्ट न हों। अपने कार्यक्रम कष्टकर होते हैं। कष्ट करने का अभ्यास कर बड़े-बड़े काम सहज करने की शक्ति बढ़ानी चाहिए। इसलिए उन्हें प्रयत्नपूर्वक करें। ये कार्यक्रम अंतःकरण में निर्भयता, आत्मविश्वास, पराक्रम के भाव उत्पन्न कर सबको एक अनुशासन में गूँथकर, हम सब एक महती शक्ति के अंग हैं, इस अनुभूति को निरंतर जाग्रत रखने के लिए हैं। इसलिए उन कार्यक्रमों का उत्तम अभ्यास करें।
* विकिर होने पर तुरत-फुरत घर भागने की इच्छा नहीं होनी चाहिए। घर जाने अथवा और कहीं घूमने जाने की इच्छा होने का अभिप्राय होगा कि हम शाखा में अनिच्छा से बलात् आए थे। विकिर होते ही इस बला से मुक्त होने का अनुभव करते हैं। हम किसी के दबाव में शाखा नहीं आते। आना भी नहीं चाहिए। अतः बैठकर दो काम करें–

पहला यह कि शाखा में आनेवाले स्वयसेवक वधुओं में से कौन आए, कौन नहीं आए, इसकी जानकारी कर लें और जो नहीं आया हो, उसकी चिता करें। वे क्यों नहीं आए इसका पता लगाने छोटी-छोटी टोलियों में सबके यहाँ जाएँ। कोई कठिनाई हो तो उसका निवारण करने का प्रयास करें। कठिनाई न हो, तो अकारण शाखा से अनुपस्थित रहना ठीक नहीं– यह बात उसे भली-भाँति समझाएँ।

दूसरा यह कि नित्य अपने ध्येय का स्मरण करें। हिमालय से लेकर दक्षिणी महासागर के तट तक असख्य पवित्र स्थान बिखरे हैं, उनका स्मरण करें। अनेक ऐतिहासिक स्थल हैं, प्रत्येक स्थल से किसी महापराक्रमी पुरुष की कुछ न कुछ विशेषता जुडी हुई है, उसका स्मरण करें। उस महापुरुष की विशेषता में से जो गुण प्रकट होते हैं, उनका सब मिलकर स्मरण करें और उन्हें अपने में उतारने के प्रयास का निश्चय करें।

यह है हमारा नित्य का न्यूनतम कार्य। 'साधारण स्वयसेवक' के रूप में इतना हमें करना ही चाहिए। इसके अतिरिक्त भी हमारे लिए कुछ कर्तव्य हैं।

पडोसी का धर्म

अपना कुछ पडोस धर्म भी है। उस धर्म के अनुसार हमें यह जानकारी करनी चाहिए कि इन पडोसियों का जीवनयापन कैसे चलता है। उनकी कठिनाइयाँ, दु ख क्या हैं? उनकी सहायता में तत्पर रहना पडोसी का धर्म है। पडोस में कोई गडबड हुई, तो अपना दरवाजा अदर से बदकर बैठना पडोस-धर्म नहीं है। पडोस में कोई अस्वस्थ हुआ तो अपने भाग्य से हुआ होगा, वह जिए चाहे मरे, ऐसा सोचकर उसकी अनदेखी करना पडोसी का धर्म नहीं है। इसमें पडोस-धर्म तो दूर की बात रही, मनुष्यता भी नहीं है। अत पडोस-धर्म का पालन करने हेतु घर-घर में जाना, सबसे मिलना, बोलना, सबसे अत्यत स्नेह और आत्मीयता के सबध रखने का प्रयास करना और इस बात का भी कि सबके हृदय में हमारे बारे में ऐसी धारणा बनें कि यह व्यक्ति विश्वास करने योग्य है, इसमें अपने प्रति निष्कपट, नि स्वार्थ प्रेम है। यह अपना सच्चा मित्र है, अपने को कोई कष्ट नहीं होने देगा, नित्य अपना साथ देगा और जरूरत पडने पर सहायता के लिए दौडा आएगा। इस विश्वास के बल पर सब पडोसी मानो एक बडा परिवार बने हैं, ऐसा हम प्रयास करें। इस प्रकार का वायुमडल उत्पन्न कर

सकेंगे तब उनमें से अपने संघकार्य के लिए स्वयंसेवक प्राप्त कर सकेंगे।

बुद्धिवाद नहीं चाहिए

अब कोई सोचे कि मैं बड़ा बुद्धिमान हूँ और बुद्धि के बल पर दूसरे को संघकार्य की अच्छाई समझा दूँगा और वह हमारे साथ आ जाएगा, तो यह उसकी भूल है। माना कि अपने पास बुद्धि है, लोगों से वाद-विवाद और तर्क करने में समर्थ भी हों, परन्तु यह सत्य नहीं है कि इस कारण हमारी बात लोगों को जँचेगी ही। कुछ लोग वाद-विवाद में हमसे निरुत्तर होकर अपनी पराजय मान भी लेंगे, परन्तु कार्य स्वीकार करेंगे, ऐसा कतई नहीं होगा।

मुझे स्मरण है कि अपने एक अच्छे वकील स्वयंसेवक थे। मेरे एक मित्र ने कहा कि उनके मन में संघ के विषय में अनेक प्रकार के संदेह व आशंकाएँ है। वे बात करके उनका निराकरण करना चाहते हैं। वे मेरे पुराने परिचित थे। अतः मैं उनके घर गया और पूछा -- तुम्हारे मन में कौन सी शंकाएँ हैं? उनसे लगभग डेढ-दो घंटे बातचीत हुई। दो घंटों में उनके जो भी संदेह और आशंकाएँ थी, उन सबका समाधान करने का मैंने प्रयास किया। प्रत्येक बार वह कहता 'यह ठीक है, पर ', और वह पुनः वही बात पूछता। मैं उसे फिर समझाता और वह कहता-- 'आपका यह कहना ठीक है, पर ?' मैंने उसे कहा-- 'अरे भाई, तुम्हारे कितने 'पर' हैं? मैं एक-एक पर उखाडता जाता हूँ, फिर से एक नया 'पर' उग आता है।' अर्थात् उसे समझाना संभव नहीं हुआ।

मेरा अनुभव तो ऐसा है कि बहस करके बुद्धि से परास्त करने पर सामनेवाला अपमान का अनुभव कर हमसे दूर हो जाता है। मेरा एक मित्र था। हम एक ही कक्षा में थे। उसे बहस करने में बड़ा आनंद आता था। उसने काफी अध्ययन किया था, इसलिए उसमें वाद-विवाद का उत्साह भी था। हमारी विभिन्न विषयों पर बहस होती थी। दो-चार बार ऐसा हुआ कि बहस में उसकी हँसी हुई। मित्रमंडली उसे कहने लगी- 'तुम बडे विद्वान बने फिरते हो, फिर यहाँ बोलती बंद क्यों हो जाती है?' अपना उपहास देखकर वह मुझसे मिलने से कतराने लगा। मुझे सामने से आता देखकर पास की किसी गली में खिसक जाता। मैंने दो-चार बार यह देखा। एक दिन ऐसे ही गली में घुसते देख मैंने उसे जा पकडा और कहा- 'कहाँ भागे जा रहे हो?' उसने कहा-- 'मैं आपसे बोलना नहीं चाहता, क्योंकि

आप सबके सामने मेरी हँसी उडाते हो। अपनी हँसी कराने और अपमान करवाने के लिए कौन बात करे?' मैंने कहा— 'अरे, तुमको ही तो वाद-विवाद करने का व्यसन है, मुझे कतई नहीं है। तुम्हारा व्यसन पूरा करने के लिए, अपनी इच्छा न होते हुए भी बहस करता हूँ। तुम बहस के झमेले में पडकर अपनी हँसी कराते हो, उसके लिए मैं क्या करूँ? कोई बात नहीं अब निश्चय करें कि बहस नही करेंगे। वाद-विवाद के व्यसन के लिए क्या हम अपनी मित्रता छोड दें? महत्त्व मित्रता का है, वाद-विवाद का नहीं।' तब से उसके साथ वाद-विवाद करना छोड दिया और उसी दिन से मन में गाँठ बाँध ली कि वाद-विवाद से मनुष्य हमसे टूटता है, दूर जाता है, पास नहीं आता।

बुद्धि से उसकी आशकाओं का समाधान हो भी गया, तब भी सघकार्य करने की बात जँचे यह जरूरी नहीं है। इसका अर्थ यह नहीं कि अपने में बुद्धि नहीं है, लेकिन उसकी अपनी कुछ सीमा है, वह उसके आगे नहीं जा सकती। वाद-विवाद में बुद्धि का उपयोग अवश्य होता है, किंतु इस प्रकार किया तो वह उपकारी नहीं, प्रत्युत् अपकारी होता है।

लोग हमारी बात कैसे मानते और ग्रहण करते हैं, उसके कुछ कारण हैं–

१ कुछ लोग ऐसे हैं मानो परमात्मा ने उन्हें सघकार्य के लिए ही नियोजित कर रखा है। जैसे ही कोई उनके पास जाकर शाखा पर चलने अथवा सघ का कार्य करने की बात करता है, उनके पूर्वजन्म के सस्कार जागृत हो जाते हैं और वे हमारे सहयोगी बन जाते हैं। उन्हें कुछ समझाना नहीं पडता। ऐसे लोग बहुत हैं।

२ कुछ लोग स्वय सोच-विचार कर, देश की परिस्थिति आदि देखकर विवेकपूर्वक सघकार्य के अतिरिक्त गत्यतर नहीं है— ऐसा सोचकर कर्तव्य-बुद्धि से कार्य करने हेतु आगे आते हैं।

३ कुछ लोग स्नेह के, मित्रता के भूखे होते हैं। सघ में उनकी भूख मिटती है। इसलिए वे आते हैं।

स्वार्थ नहीं चाहिए

कभी कोई स्वार्थ के कारण भी आता है। एक वकील थे। वे शाखा में आने लगे। पूछने पर उन्होंने बताया— 'मुझे लगा कि सघ का कार्य अच्छा है, शाखा में जाना चाहिए। इसलिए शाखा आता हूँ।' मैंने सोचा कि

इन्हें एकाएक ऐसा क्यों लगा, इसका पता लगाना चाहिए। वकील के नाते पुराना परिचय था। इसलिए इधर-उधर की बातें करता रहा। चर्चा में से ध्यान में आया कि नागपुर में वकील स्वयसेवकों के लिए एक योजना बनी थी। उन्हें नागपुर तहसील और जिले में सघशाखा प्रारभ करने का काम सौंपा गया था। शनिवार को जाकर काम करना और वहाँ क्या काम किया इसका वृत्त-निवेदन अगले मगलवार को रात्रि की बैठक में कर अगले सप्ताह के सबध में योजना बनाना। इन्हें इस बात का पता लगा। उन्होंने सोचा कि इससे जिले भर में परिचय हो जाएगा। जिला-केंद्र पर न्यायालय विषयक कुछ न कुछ काम निकलता ही है। परिचय हो जाने पर वे लोग मेरे पास ही आएँगे। अपना धधा बढेगा। इस व्यावसायिक स्वार्थ के कारण वे शाखा में आने लगे थे। मुझे वकील जानकर उन्होंने सारी बातें बता दीं। मैंने उनसे कहा– 'आपने अधूरा विचार किया।' उन्होंने आश्चर्य से पूछा, 'अधूरा क्यो?' मैंने बताया– 'आप स्वयसेवक मित्र हैं, इसलिए अपनत्व के कारण वे आपके पास काम लेकर तो आएँगे, पर अपने होने के कारण आपको शुल्क नहीं देंगे।' यह सुनकर उन्हें धक्का लगा। वे बोले– 'सघ में क्या सचमुच ऐसा होता है?' मैंने कहा– 'मेरा ही उदाहरण देख लीजिए।' वे समझ गए कि यहाँ कुछ मिलने वाला नहीं है। दूसरे दिन से उनका शाखा आना बद हो गया। ऐसे अनेक कारणों से लोग शाखा में आते है।

शुद्ध प्रेम का आधार

लोग हमारे पास आएँ और हम उन्हें सघ का कार्य समझा सकें, ऐसी स्थिति उत्पन्न करने के लिए पहले सामने वाले के साथ अत करण की एकात्मता स्थापित होनी चाहिए। यह स्थिति उत्पन्न होने पर हमारे हृदय की ध्येयनिष्ठा उसके हृदय में प्रविष्ट होगी और ऐसे विशुद्ध प्रेम के आधार पर ही एक-एक मनुष्य को अपना बनाकर उसमें अपने ध्येय की उपासना, भक्ति करने की इच्छा जाग्रत कर, उसे अपना सहयोगी बना सकते हैं। इस आत्मीयता के कारण हमारे हृदय की सघ-विषयक दृढ अनुभूति उनके हृदय में स्वयमेव सक्रमित होगी।

'साधारण स्वयसेवक' के रूप में ये सारे काम करना हमारा कर्तव्य है। उसके लिए असाधारण होने की आवश्यकता नहीं है। इसे करते हुए ही हम सघकार्य की वृद्धि कर सकते हैं।

शुद्ध चरित्र

अपने संघकार्य का जिन्होंने निर्माण किया उनका आदर्श हमारे सामने है। वे अत्यत विमल चरित्र के थे। वैसी शुद्धता हमारे अदर हो। अर्थात् जो दो बातें चरित्र का नाश करती हैं — 'काम और काचन', उनका अपने मन पर प्रभाव नहीं होना चाहिए। इस सीमा तक हमारा अत करण शुद्ध व निर्लिप्त बने, इसका बुद्धिपूर्वक प्रयास करना चाहिए। यह कर सकते हैं, कठिन नहीं है। असभव तो कदापि नहीं है। तभी हम विश्वसनीय बनेंगे। फिर किसी के घर जाने-आने पर उसे कभी नहीं लगेगा कि यह क्यों आया। प्रत्येक घर के दरवाजे हमारे लिए मानो चौबीस घटे खुले हैं, ऐसी स्थिति बनेगी।

इस प्रकार स्वय शुद्ध-चरित्र बनकर विश्वासपात्र बनें और सबके लिए कष्ट उठाने की सिद्धता रखें। कष्ट करने का यह अर्थ नहीं कि सबके बिना मूल्य के नौकर बनें, बल्कि सबके हृदय में हमारे विषय में सत्कार, आदर उत्पन्न हो, हमारे कष्ट करने से उनके मन में श्रद्धापूर्ण सकोच उत्पन्न हो।

इसके साथ हमारा सघ-दृष्ट्या व्यवहार ठीक रहा तो हमारे अत करण की सघनिष्ठा और विचार ग्रहण कर लोग हमारे साथ सघकार्य करने के लिए खडे होंगे।

कार्यवृद्धि का अर्थ

कुछ लोग कहते हैं कि सघ का काम काफी बढ गया है। सारे प्रांतों में शाखाएँ लगने लगी हैं, समाचार-पत्र में नाम आने लगा है और कितना काम बढाना है? किंतु हमने सपूर्ण हिंदू समाज का सगठन करने का लक्ष्य अपने सामने रखा है। एक छोटा सा सगठन बनाना हमारा लक्ष्य नहीं है।

एक बात स्पष्ट है कि यह केवल पुरुषों का काम है, तब कम से कम समाज के आधे लोग तो शाखा पर नहीं आएँगे। अब जो बहुत छोटे, बहुत वृद्ध या अपग हैं, वे चाहकर भी आ नहीं सकते। जो दो पैरों पर चल कर आ सकता है, वही आएगा।

बहुत पहले एक बार अपने डाक्टर जी ने कार्य का परिमाण बताया था। उतना कार्य हो, तब न्यूनतम सीमा पूरी होगी। लोगों ने उसका भी विपर्यास लगाया था। स्थान-स्थान से मुझे पत्र आते थे कि हमारे यहाँ

निर्धारित प्रतिशत स्वयसेवक हो गए हैं। अव बताइए क्या करें?' मैंने विनोद में उन्हें पत्र लिखा कि सत्यनारायण की एक कथा करो, सबको प्रसाद खिलाओ और सघ वद कर दो। और क्या कहता? कितनी भ्रात धारणा है प्रतिशत अनुपात के विषय में।

समूचे समाज के लिए

हमने साधारण स्वयसेवक के कर्तव्यों के बारे में जो सोचा है, वह केवल अपने नगर अथवा अपनी शाखा के लिए ही नहीं है। अपितु ऐसा सबध समग्र हिंदू समाज के साथ स्थापित करना है। नगरवासी, ग्रामवासी, दुर्गम वनों, अरण्यों, गिरिकदराओं के निवासी, सभी अपने बधु हैं। उन सबसे अपना नित्य का जीवत, आत्मीयता, विश्वास और सहकार्य का सबध रहे। इसके लिए जितने कार्यकर्ता आवश्यक हैं उतनों से युक्त और उतनी शाखाएँ, वे भी पूरे देश में फैली हुई नियमित चलनेवाली चाहिए। उससे कम काम से हमें सतोप नहीं होगा। अत अपने-अपने कार्य की कम से कम सीमा तक तो कार्यवृद्धि करनी है और उसे कम नहीं होने देना है। इस प्रकार जीवनव्यापी कार्य हमारे सामने है। अब हम विचार करें कि अभी कितना काम बाकी है।

इसलिए 'साधारण स्वयसेवक' के नाते हमें कितना अधिक परिश्रम करना आवश्यक है, उसमें ढील अथवा टालमटोल करना हमारे लिए अनिष्ट, अयोग्य और अशोभनीय है। इसके अनुसार अपने जीवन की रचना करें तथा अत्यत कर्तृत्ववान कार्यकर्ता बनकर कार्य करने के लिए अग्रसर हों।

❧ ❧ ❧

१४ विलक्षण सघकार्य

(तैंतीस वर्षों तक मातृभूमि की भक्ति जगाने हेतु श्री गुरुजी के अखड प्रवास-क्रम की 'इति श्री' हुई रॉची (विहार) में। ११ मार्च १९७३ को रॉची में कार्यकर्ताओं की बैठक की समाप्ति पर हुआ यह भाषण, स्वयसेवकों के बीच उनका अतिम भाषण है। सन् १९७३ के फरवरी-मार्च में अन्यत्र दिए गए भाषणों के अश भी इसमें सम्मिलित किए गए हैं)

संघ का मौलिक विचार

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के समान उद्देश्य लेकर अन्य कई कार्य तथा संस्थाएँ चल रही हैं। कई व्यक्ति राष्ट्रोत्थान के लिए उत्सुक हैं। भले ही उनके मार्ग बाह्यत हमसे अलग दिखाई देते हों, परंतु सबका लक्ष्य एक ही है। वह है अपने इस प्राणप्रिय राष्ट्र को जगत् में श्रेष्ठ बनाना। हम लोग भी प्रतिदिन प्रार्थना में कहते हैं– 'परं वैभवं नेतुमेतत् स्वराष्ट्रम्, समर्था भवत्वाशिषा ते भृशम्'– याने हमारे राष्ट्र को परम वैभवसंपन्न बनाने के लिए, हमारी यह नित्य विजयशालिनी कार्यशक्ति अति शीघ्र समर्थ बने। प्रार्थना की इस अंतिम पंक्ति को हमें भूलना नहीं चाहिए। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये हम सब प्रयासरत हैं।

हमारे समान जो अन्य लोग इसी लक्ष्य से प्रेरित हैं, वे अपने ढंग से राष्ट्र के वैभव का विचार करते हैं। उनका कहना है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के कारखाने आदि खोलने से राष्ट्र वैभवसंपन्न हो जाएगा। परंतु हम लोगों ने इसका विचार कुछ अलग किया है। हमने कहा कि यद्यपि कल-कारखानों से उत्पादन बढ़ेगा, संपत्ति की कुछ वृद्धि होगी। फिर भी इसका विश्वास क्या है कि यह संपत्ति अपने ही हाथों में रहेगी? जब संपत्ति किसी ऐसे व्यक्ति के पास होती है, जो उसका रक्षण करने में समर्थ है और अपनी योजना तथा इच्छा से उसका उपयोग-विनियोग कर सकता है, तभी यह कहा जा सकता है कि वह व्यक्ति संपन्न हुआ है। इसके विपरीत किसी ने यदि धनसंचय किया और लूटनेवाले लूट ले गए, तो उसे कुछ मिलनेवाला नहीं है। इसी कारण हमारा विचार है कि अपना राष्ट्र स्वपराक्रम से सुख-समृद्धि प्राप्त करने की क्षमता रखनेवाला, स्वावलंबी होकर विश्व के सामने खड़ा रहनेवाला और अपने ही पराक्रम से रक्षण करने की क्षमता रखनेवाला होना चाहिए। इसीलिए इस राष्ट्र के राष्ट्रीय समाज याने हिंदू समाज को संगठित और शक्तिशाली बनाने का बीड़ा हमने उठाया है। सब प्रकार की प्रगति इसी पर निर्भर है। यह मौलिक विचार है।

एकमात्र श्रद्धाकेंद्र मातृभूमि

हम सभी इस बात को कई बार दोहरा चुके हैं कि संगठित समाज होने के लिए कुछ बातों की आवश्यकता होती है। विभाजित अंत करण से संगठन नहीं हो सकता। इसीलिए पूरे समाज का एक ही श्रद्धा-केंद्र होना चाहिए। श्रद्धा-केंद्र अनेक रहने से समाज विभाजित रहेगा इस बात को

ध्यान में रखकर हम लोग आसेतु-हिमाचल मातृभूमि की भक्ति जगा रहे हैं। यह जन्मदात्री भूमि, जिस पर हमारा पालन-पोषण हुआ है, हम सब लोगों के लिए एक श्रद्धा-केंद्र के रूप में विद्यमान है। इसके प्रति कृतज्ञता की भावना याने उत्कट भक्ति सबके अंतःकरण में समान रूप से रहने पर समाज-संगठन के कार्य में सब प्रकार की सुगमता प्राप्त हो जाती है।

लेकिन हमें दिखाई देगा कि अपने देश में जो विभिन्न संस्थाएँ राष्ट्र को वैभवसंपन्न बनाने के उद्देश्य से चल रही हैं, उनके पास मातृभूमि की प्रबल भक्ति जगाने का कोई कारगर साधन नहीं है। यह भी अनुभव आता है कि इस मूलगामी कार्य का विचार भी वहाँ नहीं है। कई बार तो इन संस्थाओं में काम करनेवाले बड़े लोगों में भी राष्ट्रभक्ति का प्रबल आग्रह नहीं पाया जाता।

महायोगी अरविंद का नाम आप लोगों ने सुना है। पांडिचेरी में उनका आश्रम है। अनेक लोगों पर सत्संस्कार करने का कार्य वहाँ चलता है। बालक-बालिकाओं के लिए विद्यालय भी खुले हैं। वहाँ एक छोटा-सा मैदान है। उसमें कथा-प्रवचन आदि के लिए लोगों को बैठाते हैं। सामने की दीवार पर अखंड भारत का मानचित्र लगा है। राजनीतिक उथल-पुथल में खंडित हुआ आज का भारत, जैसा कि देशभर के स्कूलों में बालकों को बताया जाता है, वहाँ नहीं बताया जाता। पिछले वर्ष महायोगी अरविंद जन्मशताब्दी महोत्सव का आयोजन हुआ। आश्रमवासियों ने अरविंद जी के सभी ग्रंथों को भारत की सभी भाषाओं में अनूदित कर अत्यल्प मूल्य में जनता के बीच उपलब्ध कराने की व्यवस्था का विचार किया। इसके लिए काफी धन की आवश्यकता थी। अपनी केंद्र-सरकार ऐसे काम के लिए विपुल धन-राशि का प्रावधान रखती है। इसलिए सोचा गया कि उस सरकारी पैसे का राष्ट्र के इस महत्त्वपूर्ण कार्य में कुछ योगदान हो। आश्रम के दो व्यक्ति, जिनमें योगी अरविंद के एक फ्रान्सिसी शिष्य भी थे, केंद्र सरकार के प्रतिनिधि से मिलने गए। सरकारी प्रतिनिधि ने आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए उनके सामने दो शर्तें रखीं। पहली यह, कि आश्रम में अखंड भारत का जो चित्र लगा है, उसे हटाकर आज के राजनीतिक खंडित भारत का चित्र लगाया जाए और दूसरी शर्त थी कि योगीराज अरविंद के ग्रंथों में जहाँ-जहाँ हिंदू धर्म, हिंदू राष्ट्र, सनातन धर्म जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है, उन्हें हटा दिया जाए। तब अरविंद जी के उन स्वाभिमानी शिष्यों ने दोनों सरकारी शर्तों को अस्वीकार करते हुए कहा—

'पैसे देने हो तो दो, नहीं तो कोई परवाह नहीं। अखड भारत का मानचित्र, योगी अरविंद की श्रद्धा का विषय है, उसे हम कदापि नहीं हटाएँगे। उसी प्रकार उन्होंने जो लिखा है, वह उनकी अनुभूति का सत्य है। उसमें परिवर्तन करने का हमें कोई अधिकार नहीं है। अत हम नहीं करेंगे।'

इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि केंद्र-सरकार के शीर्षस्थ व्यक्तियों में भी मातृभूमि की उत्कट भक्ति का कितना अभाव है। इसी तरह अनेक लोगों में मातृभूमि की स्पष्ट कल्पना और उसकी भक्ति का अभाव दिखाई देता है। राष्ट्र के लिए, यह बहुत सकट उपस्थित करनेवाली बात है, एक भयकर त्रुटि है। किंतु इस अभाव को दूर करने का प्रयत्न और तदनुसार कोई व्यवस्था कहीं पर भी होती दिखाई नहीं देती। सेकडों वर्षों से हमारे हृदयों पर अकित मातृभूमि के इस साक्षात्कार को हम भूलते जा रहे हैं। इतनी बडी विस्मृति को दूर करने के लिए अखडित रूप से बहुत प्रबल प्रयास करने पडेंगे। इसका विचार केवल अपना सघ ही करता है।

यह मातृभूमि अपनी माता है, वह चेतनामयी है, आदिशक्ति जगज्जननी का स्वरूप है, केवल ककड-पत्थर नहीं। इसीलिये हम उसकी आराधना करते है। 'वंदेमातरम्' गीत में उसका उच्चारण करते हुए, बडे-बडे देशभक्त हँसते-हँसते प्राणों का उत्सर्ग करने के लिए तैयार हुए। कहा गया 'त्व हि दुर्गा दशप्रहरण-धारिणी, कमला कमलदलविहारिणी, वाणी विद्यादायिनी नमामि त्वाम्', याने माँ, तू शक्तिमयी दुर्गा है, हम तुझे प्रणाम करते हैं। मातृभूमि की इस प्राथना से पुराने समय में देश जाग उठा था। हम उसी भावना को प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में अंकित करना चाहते हैं।

मराठी के एक बडे सतकवि रामदास हुए हैं। उन्होंने अपने ग्रथ दासबोध में लिखा है कि भगवान के साथ मित्रता-स्नेह जोडने के लिए, अपने मोह के निकटतम रिश्ते-नाते तोड देने चाहिए। यही नहीं, तो सर्वस्वार्पण करना चाहिए और अत में प्राण तक न्योछावर कर देना चाहिए-

देवाच्या सख्यत्वासाठी। पडाव्या जिवलगाच्या तुटी।
सर्वस्व अर्पावे शेवटी। प्राण तोही वेचावा।।

मातृभूमि के प्रति ऐसी उत्कट श्रद्धा की भावना होना जरूरी है। इसके लिए प्रतिदिन चितन-मनन आवश्यक है। मातृभूमि के प्रति श्रद्धा

जगाने का यह आवश्यक कार्य क्या संघ को छोड़कर अन्य कोई सामाजिक, राजनीतिक संस्था अथवा व्यक्ति करता है? प्रतिदिन नियमपूर्वक 'नमस्ते सदा वत्सले' कहते-कहते अंतःकरण में संस्कार करने का कार्य संघ में होता है। कभी-कभार राष्ट्रभक्ति की बात करने अथवा भाषण देने मात्र से यह नहीं होगा।

आचरण में राष्ट्रीय स्वाभिमान चाहिए

मातृभूमि की इस भक्ति के साथ हमें अपने आचार और व्यवहार का मेल बैठाना भी जरूरी है, यानी अपने राष्ट्र की जीवन-प्रणाली का स्वाभिमान हमारे आचरण से प्रकट होना चाहिए। लेकिन आज व्यवहार और आचार दोनों में ही हमारा समाज अहिंदू होता जा रहा है। विशेषतः महाविद्यालयीन विद्यार्थी और शिक्षित युवकों की स्थिति बड़ी विचित्र है। प्रमुख साप्ताहिक 'धर्मयुग' में दिल्ली विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों पर एक लेख छपा था। उस लेख में बताया गया था कि विद्यार्थियों का व्यवहार इस प्रकार का है कि छात्र और छात्राओं में अंतर करना असंभव हो गया है। वेशभूषा देखकर लगता है कि ब्रह्मदेव कोई भूल कर बैठे हैं। विदेशों का इतना अधिक विकृत अंधानुकरण चल पड़ा है कि हिंदू जीवन-पद्धति, तत्त्वज्ञान और धर्म का संकल्प कहीं दिखाई नहीं देता। हिप्पी जैसे टेढ़े-मेढ़े बाल और कपड़े धारण करने में प्रसन्नता का अनुभव होता है। इस बात का वे विचार ही नहीं करते कि वे उन लोगों का अनुकरण कर रहे हैं, जो अपने ही देश में समाज से बहिष्कृत कर दिए गए हैं, क्योंकि उनका जीवन बड़ा गंदा, उच्छृंखल और पापाचरणयुक्त है।

कितना घोर अधःपतन है यह। हिंदूपन का स्वाभिमान कम होने के ही कारण यह नकल बढ़ रही है। इसमें क्या आनंद आता है, यह बात समझ के परे है। हाँ, विदेश के किसी अच्छे व्यक्ति का अनुकरण समझा जा सकता है। जैसे अमेरिका के एक पुरुष का उल्लेख मैंने पिछली बार किया था। उन्होंने सारे जगत् के साथ इतना तादात्म्य स्थापित किया है कि यदि वे पानी में हाथ डालते हैं तो मछली निर्भय-निःसंकोच उनके हाथ के साथ खेलती है। अभारतीय होते हुए भी जीवसृष्टि के साथ इतना तादात्म्य स्थापित करनेवाले वे महापुरुष कौन हैं, इसका पता लगाना आपका काम है। यदि उनका अनुकरण कोई करता, तो समझने लायक बात होती। परंतु वहाँ के पापी लोगों का ही अनुकरण आजकल हो रहा है।

यह बात ध्यानपूर्वक समझ लेनी चाहिए कि जो समाज अपना राष्ट्रीय स्वाभिमान खो देता है, वह विश्व में कौडी कीमत का नहीं रहता। कुछ दिनों पहले जब मैं मुबई गया था, तब एक सज्जन मुझे मिले। वे कहने लगे कि क्रिकेट हमारा राष्ट्रीय खेल हो गया है। रग-विरगे कपडों में शरीर से चिपका हुआ परिधान ही हमारा राष्ट्रीय वेश बन गया है तथा अग्रेजी हम सबकी भाषा बन गई है। उनकी बात सुनकर मैंने कहा कि अब यही कहना बाकी है कि हमारा कोई स्वतत्र-सार्वभौम राष्ट्र नहीं है। हमारा राष्ट्र तो अग्रेजों का ही एक उपराष्ट्र है। इस स्थिति तक बातें आ चुकी हैं।

इसलिए हिंदूपन का स्वाभिमान जगाना आवश्यक है। परकीयों का क्षुद्र अनुकरण छोडकर यदि हम अपने राष्ट्रजीवन के आधार पर खडे न होंगे, तो हम कदापि सगठित-शक्तिशाली नहीं बन सकते ओर तब समाज में पृथकता बनी ही रहेगी। आज जातियों को लेकर अलग-अलग स्वार्थ हैं, पथों ओर भाषाओं को लेकर झगडे हैं, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में क्षुद्रस्वार्थो की पूर्ति के लिए भेदभाव, प्रतिस्पर्धा तथा ईर्ष्या व्याप्त है। अभी हाल ही के उत्तरप्रदेश के निर्वाचनों में मुझे किसी ने बताया कि वहॉ जातिवाद के नाम पर जाटवाद उग्र हुआ है। कोई सोचता नहीं कि ऐसे उग्र भेद खडे करने से राष्ट्र का एकात्मभाव टूटता है, शक्ति नष्ट होती है। शक्ति नष्ट राष्ट्र, विश्व में कभी टिक नहीं सकता।

सघ ही एकमात्र आधार

ऐसे वायुमडल में किसी प्रकार के भेदों को न मानते हुए, उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम सपूर्ण राष्ट्र में एकात्म-समाज की अनुभूति जगाने की धुन जिसके अत करण में लगी है, ऐसा केवल अपना सघ ही है, यह हमें कभी भी भूलना नहीं चाहिए।

हमारे धर्मगुरुओं को भी हिंदू जीवनपद्धति के विषय में लगाव नहीं है, तब अन्य लोगों के विषय में क्या कहा जा सकता है? इसलिए यह निर्विवाद है कि सुस्पष्ट रीति से हिंदू-राष्ट्र के सत्य को निर्भयता से बोलनेवाला कोई नहीं है। इतनी सब सस्थाऍ चलती हैं, पर किसी में उन्नत मस्तक हो ललकारकर हिम्मत से यह कहने का साहस नहीं है कि यह मेरा राष्ट्र है, हिंदू-राष्ट्र हे। यह भारतवर्ष हिंदू का ही है। क्या निर्भयता से दृढतापूर्वक कोई इस सत्य को बोलता है? केवल अपने सघ को छोडकर अन्य कोई ऐसा साहस नहीं करता।

राष्ट्र जीवन के स्वरूप का ध्यान

यह हिंदूराष्ट्र सनातन है। इस भूमि के साथ इसका संबंध सदा-सर्वदा का है। इसलिए यह ध्यान में रखना चाहिए कि अनेकानेक महापुरुषों ने इसकी अखंड धारा को ही पुष्ट किया। इसके शताब्दियों के प्रवाह को खंडित नहीं होने दिया। उसी प्रकार हम भी इससे पूर्ण अभिन्नत्व के साथ तादात्म्य प्राप्त करेंगे और भूल से भी ऐसा कोई व्यक्तिगत अथवा संस्थागत अभिनिवेश निर्माण नहीं होने देंगे, जो अलगाव का परिचायक हो।

इस राष्ट्रजीवन के उस स्वरूप का ध्यान हमें रखना होगा, जिसमें व्यक्तिवादी अभिनिवेशों को कोई स्थान नहीं है। बात उस समय की है, जब हिंदू महासभा पार्टी के लिए झंडा निश्चित करने की बात चली। उन्होंने भगवे रंग का त्रिकोणाकार, कृपाण-कुंडलिनी-स्वास्तिक और यज्ञवेदी चित्रित झंडा स्वीकार किया। उनकी इच्छा थी कि ध्वज के इस नए रूप को हिंदू राष्ट्रध्वज की मान्यता प्राप्त हो। श्री बाबाराव सावरकर याने वीर सावरकर के बड़े भाई डाक्टर जी के पास आए और बोले कि संघ की शाखाओं में भी इस नए ध्वज का प्रचलन होना चाहिए।

पूजनीय डाक्टर जी तो कुशल संगठनकर्ता थे। श्री बाबाराव से उनके बहुत घनिष्ठ, आत्मीय और आदरपूर्ण संबंध भी थे। सभी सावरकर बंधु हिंदू-राष्ट्र के तेजस्वी उद्‌घोषक के नाते विख्यात थे। संघ-शाखाओं के प्रारंभिक निर्माण और विस्तार में भी श्री बाबाराव का महत्त्वपूर्ण सहयोग रहा था। महाराष्ट्र में शाखा-विस्तार के लिए वे डाक्टर जी के साथ प्रवास करते रहे थे। स्थान-स्थान पर शाखा स्थापन का कार्य भी उनके द्वारा हुआ था। इसलिए डाक्टर जी ने उन्हें कहा— 'बाबाराव, यह ध्वज आपने ही शाखा में लगाया है, इसलिए आप ही इसे निकालकर नया ध्वज लगा दीजिए। नागपुर के सभी स्वयंसेवकों को एकत्र करेंगे, वहीं सबके सामने आप यह नया ध्वज लगा दीजिए।' श्री बाबाराव समझ गए कि डाक्टर जी का मन नया ध्वज शाखा में लगाने का नहीं है। इसलिए वे चुप हो गए।

डाक्टरजी ने बाबाराव से पूछा— 'बाबाराव, यह हिन्दू-राष्ट्र कब बना?' उन्होंने कहा— 'यह तो अति प्राचीन है। डाक्टर जी ने पूछा 'उसका ध्वज कौन सा था?' वे बोले— 'यही जो हम लोग शाखा में लगाते हैं।' तब डाक्टर जी ने कहा— 'अगर यह बात है, तो इस नये झंडे को हिंदूराष्ट्र के ध्वज के रूप में लगाने की आवश्यकता क्यों लगती है?' श्री बाबाराव ने

इसपर अपनी सहमति प्रकट की कि जहाँ राष्ट्र के चिरतन स्वरूप का विचार होता है, वहाँ ऐसा नया ध्वज लगाना ठीक नहीं।

उक्त उदाहरण बताता है कि राष्ट्र के चिरतन प्रवाह की रक्षा कितनी सावधानी से करने की आवश्यकता है। हिंदूराष्ट्र सबधी स्वयसिद्ध सत्य को व्यक्ति अथवा पार्टी के सीमित अभिनिवेशों से मुक्त रखने के लिए, कितनी दृढता की आवश्यकता है। ऐसी दृढता हमें अन्यत्र कहीं दिखाई नहीं देती।

अनुशासन का निर्माण

सगठन द्वारा राष्ट्र की शक्ति खडी करने का अर्थ भी सघ में अनूठा है। हमारे यहाँ माना गया है कि केवल कदम से कदम मिलाकर चलना ही अनुशासन नहीं है। शरीर, मन और बुद्धि– तीनों में अनुशासन व्याप्त होना चाहिए। बुद्धि का यह निश्चय जरूरी है कि यह राष्ट्र मेरा है और मुझे इसके लिये सर्वस्व अर्पण करना है। इस प्रकार के निश्चय से अत करण में सद्भावना का जागरण हो। उस सद्भावना से शरीर की सब क्रियाएँ आपस में एक दूसरे के साथ मेल करनेवाली हों, तभी वह अनुशासन कहा जाता है। बुद्धि का स्थिर निश्चय, अत करण की उर्मि और शारीरिक क्रियाएँ– सभी समान तथा सुव्यवस्थित रूप से चलने पर बिखरा हुआ सपूर्ण सामर्थ्य एकत्रित आकर शक्ति का वह प्रचड रूप उपस्थित होता है, जिससे राष्ट्र का वैभव प्राप्त कर लेना अति सरल और राष्ट्र की रक्षा करना सभव होता है। ऐसा अनुशासन प्रतिदिन निर्माण करने का प्रयास भी सघ को छोडकर अन्यत्र कहीं होता दिखाई नहीं देता।

लोग कहते हैं कि शासन द्वारा एन सी सी आदि के माध्यम से अनुशासन निर्माण करने का प्रयत्न होता है। परतु क्या सघ में हम जिस अनुशासन का सस्कार देते हैं, वैसा वहाँ हो पाता है? मैं अपना एक अनुभव बताता हूँ। सघ के दो दिन का शिविर एक प्रात में था, उसमें मुझे जाना था। शिविर-स्थान निश्चित करने के लिए अपने कार्यकर्ता एक ऐसे मैदान को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हुए, जहाँ अमरूद का बगीचा था। बगीचे में कुआँ था और उस पर पप लगा था। जब अपने कार्यकर्ता उस स्थान की अनुमति माँगने के लिये गए तो बगीचे के मालिक ने अनुमति नहीं दी। वह बोला– 'पिछली बार यहाँ एन सी सी वाले आए थे। सरकार के लोगों का मुझपर दबाव था, इसलिए मुझे स्थान देना पडा। परतु उन्होंने

मेरा सारा बगीचा उजाड़ दिया। अमरूद तो खाए नहीं क्योंकि वे कच्चे थे, परतु डालियाँ तोड़ डालीं। सारा बगीचा बरबाद कर दिया।' तब अपने कार्यकर्ता ने उसे समझाकर कहा— 'हम लोग सघ के शिविर के लिए माँग रहे हैं।' यह सुनते ही वह बोला— 'सघ के लिए चाहिए तो दे दो। मैं जानता हूँ कि सघ के लोगों में अनुशासन है। अगर उन्हें सूचना रही कि किसी वृक्ष को हाथ नहीं लगाना, तो वे किसी पत्ते को भी हाथ नहीं लगाएँगे।

अतत वहीं अपना शिविर हुआ। शिविर के समारोप के दिन कुछ प्रौढ सज्जनों की बैठक हुई। उसमें बगीचे का स्वामी भी आया था। उसने मुझे बताया – 'मैं शिविर लगाने की अनुमति नहीं दे रहा था, पर जब सघ का नाम सुना तो सोचा सघ तो बड़ी अनुशासनयुक्त सस्था है। इसके स्वयसेवकों के द्वारा कोई नुकसान नहीं होगा। बगीचे के उस मालिक के मन में सघ के प्रति यह धारणा क्यों बनी थी, इसका विचार करने पर पता चलेगा कि हमारे यहाँ अनुशासन में बुद्धि की स्थिरता है और मन में विशुद्ध राष्ट्रभक्ति की भावना। मन, बुद्धि और शरीर का सामजस्य स्थापित करते हुए जो अनुशासन शाखा पद्धति में निर्माण होता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं हो रहा है। अन्य स्थानों पर उद्दडता एव उच्छृखलता चलती है। इसलिए कहना पड़ेगा कि राष्ट्र की सगठित शक्ति खड़ी करने के लिए यह अनूठा अनुशासन केवल अपने सघकार्य के द्वारा ही सभव हो रहा है।

सद्गुण निर्माण

इतिहास से प्राप्त शिक्षा के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि व्यक्ति गुणवान होना चाहिए। यदि मनुष्य स्वार्थ के कारण सद्गुणों का पालन करना छोड दे, राष्ट्रभक्ति को सर्वोपरि न मानकर व्यक्तिगत हित का ही विचार करे और सब प्रकार के अविचारी कार्य करने के लिए प्रवृत्त हो जाए तो ऐसे व्यक्तियों से बना हुआ समाज और उसका राष्ट्रजीवन विश्व में ऊँचा स्थान प्राप्त नहीं कर सकेगा। अर्थात् अपना राष्ट्र वदनीय नहीं हो सकेगा। राष्ट्र के नाते सपूर्ण मानवता के लिए उसका जो योगदान है, उसे पूर्ण करने में वह समर्थ नहीं हो सकेगा।

इसलिए प्रत्येक व्यक्ति में अतर्निहित सद्गुणों का आह्वान करना चाहिए और श्रेष्ठ चारित्र्ययुक्त महापुरुषों के उदाहरण सामने रखते हुए वैसा बनने के लिए अत करण में निश्चय जगाना चाहिए। पर इसके लिए उपयुक्त वायुमडल की आवश्यकता होती है। अपने प्रत्येक कार्य, व्यवहार

तथा चिंतन से इस वायुमंडल को मजबूत करना चाहिए, ताकि सड़क पर चलनेवाला साधारण व्यक्ति भी सद्गुणों की प्रेरणा प्राप्त कर सके। दिन-प्रतिदिन, दृढ़तापूर्वक, बिना किसी प्रचार या दिखावे के, शांतचित्त के साथ क्या कोई चरित्र और सद्गुणों की आराधना में एकाग्रचित्त है? बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि ऐसा कार्य अन्य किसी स्थान पर होता दिखाई नहीं देता। सभी मानो हताश और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर इस समस्या की ओर देख रहे हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि यह कार्य साधु-सन्यासियों का है। परंतु आज स्थिति यह है कि उन्होंने भी हाथ टेक दिए हैं। मैं संपूर्ण देश में घूमता हूँ। मुझे मालूम है कि क्या स्थिति है। कुछ दिन हुए, ऋषिकेश के एक साधु दिल्ली आए थे। मैं दिल्ली में अपने माननीय प्रांतसंघचालक लाला हंसराज जी के मकान पर रुका था। सर्दी के दिन थे, इसलिए बाहर बरामदे में कुर्सी पर धूप में बैठा था। उसी समय साधु महाराज आए। मैंने पूछा— 'महाराज, आज आपका कैसे आगमन हुआ।' वे बोले— 'लालाजी से मिलने आया हूँ।' मैंने पूछा— 'क्या कोई खास काम है?' वे बोले— 'हाँ, लालाजी का मंत्रियों से बहुत परिचय है। इसलिए उनके द्वारा कुछ काम निकालना है।' उनका उत्तर सुनकर मैंने पूछा— 'मंत्रियों से क्या काम निकालना है?' उन्होंने बताया 'आजकल जमींदारी-उन्मूलन के कानून बने हैं। उनसे हमारी मठ व आश्रम की जमीन चली जाएगी। उसे बचाने का प्रयत्न करने के लिये मैं आया हूँ। मैंने कहा, 'महाराज, आप किस फंदे में पड़े हैं? आप तो साधु हैं। गेरुआ वस्त्र पहना है। छोड़ दीजिए न यह सब। आपको खेती से क्या करना? मठ-आश्रम आदि से आपका क्या वास्ता?' इस पर वे कहने लगे, 'तब मठ का काम कैसे चलेगा?' मैंने कहा, 'जिसने मठ स्थापित किया, वे पूर्वकाल के रहे होंगे। उनके पास तपस्या थी, ज्ञान था, चारित्र्य था, पावित्र्य था और थी एक लंगोटी। इसके अतिरिक्त क्या और कुछ था?' वे कहने लगे, 'नहीं, और कुछ नहीं था।' मैंने कहा, 'तब फिर आप भी वैसे ही रहिए। इसी विचार से आप कार्य कीजिए। अगर सरकार संपत्ति ले भी लेती है, तो जनता फिर से आपको दे देगी। यह जनता भगवान का रूप है। वही देगी। फिर आप क्यों चिंता करते हो? लगता है आपका भगवान पर विश्वास नहीं है।' मेरी बात सुनकर वे बड़े नाराज हुए और बोले, 'कैसे कहते हो कि मेरा भगवान पर विश्वास नहीं है?' मैंने कहा 'कहता जरूर हूँ। विश्वास होता तो ऐसा सोचते कि जाता है तो जाने दो।

हमारा देनेवाला भगवान है। वह फिर से देगा।'

अब यदि साधु भी स्वार्थ के लिए राजनीतिज्ञों के पीछे दौड़ेंगे, तब लोगों को चारित्र्य का उपदेश भला किस प्रकार करेंगे? यदि करेंगे भी, तो मानेगा कौन? इस प्रकार हम पाते हैं कि किसी भी क्षेत्र में दृढ़तापूर्वक सद्गुणों का आह्वान नहीं हो पा रहा है। जो कुछ अत्यन्त अल्प मात्रा में हम संघ में कर पा रहे हैं वही हो रहा है।

सबसे अनूठा

इसीलिए मैंने कहा कि अनेक कार्य समाज में चलते रहेंगे परंतु अपने संघ का कार्य इन सबमें शुद्ध और अनूठा है। समाजसेवा के लिए अनेकविध कार्य होने चाहिए। होते हैं और आवश्यकता पड़ने पर हमें भी उन कार्यों में सम्मिलित होना पड़ता है। फिर भी राष्ट्ररचना के पवित्र कार्य में अपने संघकार्य का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है उसे ध्यान में रखकर हमें अपनी शक्ति-बुद्धि का प्रयोग अधिकाधिक मात्रा में करना चाहिए। इसी की आवश्यकता है। समाज की संगठित शक्ति के रूप में शाखा चलाने के लिए जो व्यवस्था करनी है, वह कितनी मात्रा में ठीक है इत्यादि बातों का विचार हम सदैव करें और जो कमी दिखाई देती हो उसे पूर्ण करने का प्रयत्न करें।

卐 卐 卐

१५. विजय ही विजय

(सन् १९७३ में अ भा प्रतिनिधि सभा के समय श्री गुरुजी का स्वास्थ्य बहुत ही चिंताजनक था। इस कारण वे बैठक में पूर्ण समय उपस्थित नहीं रह सके थे। फिर भी बैठक के अंतिम दिन अर्थात् २५ मार्च को उन्होंने समारोप बौद्धिक दिया। बोलने में बहुत कष्ट हो रहा था। एक-दो वाक्य बोलने के बाद उनकी साँस फूल जाती थी, खाँसी भी कष्ट देती थी। फिर भी अपनी स्वाभाविक पद्धति के अनुसार उन्होंने ४० मिनट तक विचार व्यक्त किए। अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा में उनका यह भाषण, अंतिम भाषण रहा)

आजकल लोग मेरे स्वास्थ्य को लेकर बहुत चिंता करते हुए दिखाई देते हैं। ठाणे की बैठक में जब पहले दिन मैंने यह कहा कि संघकार्य बाकी सब लोगों को करना है, मेरा तो उसमें अब कोई साथ नहीं, तब अपने कई प्रमुख कार्यकर्ताओं ने मेरे पास आकर कहा कि ऐसा नहीं कहना चाहिए था। मैंने कहा, 'सच बात कह दी।' उसके बाद से फिर इस शरीर की क्षमता बहुत ही तीव्र गति से कम हो गई है, जिसकी मुझे भी अपेक्षा नहीं थी। अभी भी मैं आशा रखता हूँ कि यह जो शारीरिक अवस्था निर्माण हुई है, वह तात्कालिक सिद्ध होगी और फिर से शरीर कुछ काम कर सकेगा। अभी तो मैंने अपने साथियों और डा थत्ते से कहा है कि सब संघ शिक्षा वर्गों में जाने का कार्यक्रम बना डालो, बाकी आगे जो होगा, सो देखा जाएगा। कार्यक्रम तो बनाएँ, जाना हो सका तो ठीक ही है, नहीं हुआ तो बोल देंगे कि भाई, नहीं हो सका। ऐसा लगता है कि कार्यक्रम बना तो उसे ठीक तरह से निभा लूँगा। देखें, क्या होता है।

अब हम लोगों को एक बात सोचनी है। वह याने यह आदमी रहा या न रहा, इससे संगठन का कोई बडा नुकसान नहीं होनेवाला। वैसे, अपने देश का इतिहास रहा है कि संस्थाएँ कुछ दिनों तक अच्छी चलती हैं, फिर आपस में कुछ मतभेद उत्पन्न हो जाता है। मतभेद तो कम ही रहते हैं, व्यक्तिभेद ही रहते हैं। कांग्रेस सहित बाकी की संस्थाएँ टूटी हैं, केवल एक जनसंघ ही ऐसा है जो टूटा नहीं। परंतु अब लोगों को इस बात से बडी खुशी हो रही है कि इनके एक पुराने कार्यकर्ता को दल से निकालने की बारी आई है। इससे ऐसे लोगों के मन में यह आशा उत्पन्न हुई है। उनका सोचना है कि संघ से संबधित कार्यकर्ता-वर्ग जनसंघ में है और उसमें विच्छेद आया है, वह धीरे-धीरे संघ में भी आ जाएगा। इसी आशा का तार पकडकर समाचार-पत्रों में ऐसे समाचार बना-बना कर प्रकाशित भी किए गए हैं कि सरसंघचालक के पद को लेकर काफी कशमकश चल रही है। अत संघ में भी कभी ना कभी विच्छेद होगा।

हम संगठन के लिए

पर हम लोग तो संगठन करने के लिए निकले हैं, विच्छेद के लिए नहीं। हम कभी विच्छेद नहीं होने देंगे। यह ठीक है कि कभी-कभी कार्यकर्ताओं का छोटी-छोटी बातों पर आपस में मतभेद हो जाता है और आपस में नाराज हो जाते हैं। अभी तो ठीक है कि नाराज भी होते हैं तो एक-दूसरे को मना लेते हैं, परंतु बार-बार ऐसा प्रसंग आया तो मनाना

हमारा उद्देश्य एक है

राष्ट्र की चिरतन शक्ति निर्माण करने का अपना ध्येय लोगों को समझाने से भले ही एकदम समझ में न आए, परतु काम करते-करते अपना जैसे-जैसे एक-एक आदमी से सबध आता जाएगा, वैसे-वैसे उनको समझाते रहना चाहिए। ये जो भिन्न-भिन्न काम हैं, उन सबका उद्दिष्ट एक ही है कि यह देश, समाज व राष्ट्र अपना है तथा इसका श्रेष्ठ जीवन निर्माण करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों के ये सब व्यवहार हो रहे हैं। राष्ट्र ही हमारा उपास्य है। उसी की सेवा में सब कार्य हैं। अपने सामने यह राष्ट्र न हो, तो बाकी के व्यवहारों से भला हमें क्या करना हैं?

हिंदूराष्ट्र सकल्पना स्वीकार होगी

कुछ लोग कहेंगे कि यदि हमने अपना हिंदूराष्ट्र का विचार कहा, तो सभी लोग उसे नहीं मानेंगे। परतु इस सत्य की उद्घोषणा को कुछ लोग आज मानें न मानें, उससे कुछ बिगडता नहीं है। हमारा दृष्टिकोण स्पष्ट हो और उसके सबध में अपने मन का पूर्ण विश्वास हो, तो आग्रहपूर्वक प्रतिपादन करने पर सच बात को लोग मानने लग जाएँगे। हम सभी का अनुभव है और मुझे भी ऐसा विश्वास है कि लोग मानते हैं।

यदि कोई कहे कि मैं इस विश्वास को मानने के लिये तैयार नहीं हूँ, तो यह उसकी दुर्बलता है। अपने-अपने क्षेत्र में विशेषत अपना सुस्पष्ट भाव अधिकाधिक मात्रा में लोगों को समझाएँ, तो नए-नए लोग अपने साथ आकर खडे होंगे। परतु यदि हमने अपने में दुर्बलता रखकर अपने ध्येय के सबध में लचर भाषा में बोलना प्रारभ कर दिया तो सब समाप्त हो जाएगा तथा यह ध्येय को पोषक बनने के स्थान पर एक और सकट उत्पन्न करनेवाली बात सिद्ध होगी।

चारित्र्य का आदर्श

अपने यहाँ चारित्र्य का आदर्श रखा गया है। हम लोगों ने सार्वजनिक रूप से एक राष्ट्रीय चारित्र्य खडा करने का प्रयत्न किया है। उसमें कुछ मात्रा में यश भी मिला है। डा मुजे स्मारक समिति द्वारा निधि-सग्रहार्थ जनता को आह्वान करने का निर्णय किया गया। उस आवेदन पर किसके हस्ताक्षर हों, इस पर विचार हुआ। मुझ जैसे व्यक्ति जिसके पास अपना कोई पैसा नहीं हे, के हस्ताक्षर रहने से कौन पैसा

कठिन हो जाएगा। ऐसे प्रसग बार-बार नहीं आएँ, ऐसा विचार हमें करना चाहिए। मुझे तो समझ में नहीं आता कि छोटी-छोटी बातें इस प्रकार लग क्यों जाती हैं? वास्तव में ऐसा नहीं होने देना चाहिए। आपस में थोडा भी मनोमालिन्य नहीं आने देना चाहिए। प्रत्येक बात में सघ का ही विचार रहना चाहिए। किसी बात पर अपने साथियों द्वारा लिया हुआ कोई निर्णय अपने सामने आया, तो मन में यह विचार कदापि नहीं लाना चाहिए कि यह निर्णय कैसे लिया गया। एक बार निर्णय हो जाने पर उसका समर्थन करने की तैयारी होनी चाहिए। इस प्रकार छोटी-छोटी बातों पर मतभेद टालना चाहिए। हमें सपूर्ण समाज को सगठित कर सहजीवन की भावना को समाजव्यापी करना है। इस बडे कार्य का दायित्व हम पर है। इसलिए कैसी भी परिस्थिति क्यों न आ खडी हो, अपने अदर किसी प्रकार का मनोमालिन्य नहीं आने देना चाहिए।

विभिन्न क्षेत्रो मे सगठन

सगठन की इस स्थिति का हमें अब और भी विचार करना पडेगा क्योंकि विभिन्न कार्यक्षेत्रों, जैसे– विद्यार्थी, राजनीति, मजदूर आदि में अपन कार्यकर्ता काम कर रहे हैं। इन कार्यों की रचना, सविधान, नियम, व्यवहार आदि भिन्न प्रकार के हैं। फिर भी अपना स्वयसेवक वहाँ सगठन की धारणा लेकर जाता है और उसे वहाँ प्रस्थापित करने का प्रयत्न करता है। हम सभी को इस बात का विचार करना चाहिए कि इस प्रकार की प्रत्यक्ष चेष्टा वहाँ होती है या नहीं।

ऐसा करते समय लोग भले ही कहते हों कि यहाँ पर भी ये लोग अपने सघ की तानाशाही चलाने का प्रयास कर रहे हैं, तो हम लोग उसपर ध्यान न दें। जो लोग ऐसा कहते हैं उन्हें यह मालूम नहीं है कि तानाशाही क्या चीज है। अपने यहाँ के कार्य में तानाशाही का लवलेश भी नहीं है। यहाँ तो अधिक से अधिक मात्रा में सब लोगों की सामूहिक इच्छा से कार्य होता है। इसे तानाशाही समझकर लोग आरोप करते हों, तो उन्हें वैसा करने दो। उसकी कोई चिंता न करते हुए राष्ट्र-सगठन का सूत्र अपने भिन्न-भिन्न कार्यक्षेत्रों में प्रत्यक्ष लाने के लिये सभी को प्रयत्नशील रहना चाहिए। जो भिन्न-भिन्न कार्य चलते हैं, उनकी कुछ मर्यादाएँ रहती हैं, विवशताएँ रहती हैं। उन्हें मान भी लिया जाए, तब भी हमें अपना ध्येय छोडने का कोई कारण नहीं है।

हमारा उद्देश्य एक है

राष्ट्र की चिरतन शक्ति निर्माण करने का अपना ध्येय लोगों को समझाने से भले ही एकदम समझ में न आए, परतु काम करते-करते अपना जैसे-जैसे एक-एक आदमी से सबध आता जाएगा, वैसे-वैसे उनको समझाते रहना चाहिए। ये जो भिन्न-भिन्न काम हैं, उन सबका उद्दिष्ट एक ही है कि यह देश, समाज व राष्ट्र अपना है तथा इसका श्रेष्ठ जीवन निर्माण करने के लिए विभिन्न क्षेत्रों के ये सब व्यवहार हो रहे हैं। राष्ट्र ही हमारा उपास्य है। उसी की सेवा में सब कार्य हैं। अपने सामने यह राष्ट्र न हो, तो बाकी के व्यवहारों से भला हमें क्या करना हैं?

हिंदूराष्ट्र सकल्पना स्वीकार होगी

कुछ लोग कहेंगे कि यदि हमने अपना हिंदूराष्ट्र का विचार कहा, तो सभी लोग उसे नहीं मानेंगे। परतु इस सत्य की उद्घोषणा को कुछ लोग आज मानें न मानें, उससे कुछ बिगडता नहीं है। हमारा दृष्टिकोण स्पष्ट हो और उसके सबध में अपने मन का पूर्ण विश्वास हो, तो आग्रहपूर्वक प्रतिपादन करने पर सच बात को लोग मानने लग जाएँगे। हम सभी का अनुभव है और मुझे भी ऐसा विश्वास है कि लोग मानते हैं।

यदि कोई कहे कि मैं इस विश्वास को मानने के लिये तैयार नहीं हूँ, तो यह उसकी दुर्बलता है। अपने-अपने क्षेत्र में विशेषत अपना सुस्पष्ट भाव अधिकाधिक मात्रा में लोगों को समझाएँ, तो नए-नए लोग अपने साथ आकर खडे होंगे। परतु यदि हमने अपने में दुर्बलता रखकर अपने ध्येय के सबध में लचर भाषा में बोलना प्रारभ कर दिया तो सब समाप्त हो जाएगा तथा यह ध्येय को पोषक बनने के स्थान पर एक और सकट उत्पन्न करनेवाली बात सिद्ध होगी।

चारित्र्य का आदर्श

अपने यहाँ चारित्र्य का आदर्श रखा गया है। हम लोगों ने सार्वजनिक रूप से एक राष्ट्रीय चारित्र्य खडा करने का प्रयत्न किया है। उसमें कुछ मात्रा में यश भी मिला है। डा मुजे स्मारक समिति द्वारा निधि-सग्रहार्थ जनता को आह्वान करने का निर्णय किया गया। उस आवेदन पर किसके हस्ताक्षर हों, इस पर विचार हुआ। मुझ जैसे व्यक्ति, जिसके पास अपना कोई पैसा नहीं है, के हस्ताक्षर रहने से कौन पैसा

सभी चीजों का सरकारीकरण करना चाहिए। लोगों को लगता है कि सरकारीकरण सब रोगों की रामबाण दवा है। साथ ही, वे यह भी कहते हैं कि अपनी सरकार ऐसी है कि वह सोना उठाएगी तो वह भी मिट्टी बन जाएगा। नवबर के अत में मैं इदौर में था। वहाँ के समाचार-पत्रों में यह समाचार पढने को मिला कि सरकारी गोदाम के गेहूँ में मिट्टी के बडे-बडे ढेले मिले, जिनमें गेंहू के कुछ कण चिपके हुए थे। सरकारीकरण की यह स्थिति है, फिर भी इस प्रकार की हवा है, लोगों का उसकी ओर झुकाव है। आज देश में ऐसी स्थिति निर्माण की जा रही है, जिसके अतर्गत कुछ मुट्ठीभर सत्ताधारी रहें और शेष सपूर्ण समाज उनका गुलाम बनकर रहे। मानव की प्रतिष्ठा का जो भाव रहना चाहिए था, वह अब कहाँ रहा है? वह तो गुलाम, याने पालतू कुत्ता हुआ जा रहा है। उसके अदर कोई तेजस्विता नहीं रही। मार पडी तो भी रोटी के लिए लार टपकाएगा।

इस स्थिति में मनुष्य तथा राष्ट्र की अस्मिता और चारित्र्य जागृत करने तथा राष्ट्र की प्रतिष्ठा को सब प्रकार से अक्षुण्ण रखने में समर्थ समाज की सगठित शक्ति खडी करने का बहुत बडा दायित्व हमारी ओर आया है। यह अपने कार्य के विस्तार और उसके दृढीकरण से ही सभव है। इसके लिए एक-एक व्यक्ति को अपने सपर्क में लाकर कार्य के साथ जोडना होगा।

मनुष्य कितना लाचार होता है, यह मैंने अनुभव किया है। सन् १६८७ के बाद सिध से आए हुए निर्वासितों की बस्ती में मैं गया था। वे लोग मुझसे मिलने आए और कहने लगे— 'हमारे निवास पर छत डलवाने के लिए कहने लगे— 'हमें बताया गया था कि काग्रेस अधिवेशन के लिए मगवाइ गई टीन की चद्दरें हमारे निवास पर छत डालने के लिए हमे दी जाएँगी, परतु बाद में कोई ध्यान नहीं दिया गया। हमें न देते हुए उन्हें बाजार में बेच कर मुनाफा कमाया गया। मेरे द्वारा यह पूछे जाने पर कि मेरे पास आने से क्या होगा? उन्होंने कहा कि उनकी इच्छा है कि विरोधी दलों द्वारा यह प्रश्न उठाया जाए। मेरे द्वारा यह पूछे जाने पर कि चुनाव में उन लोगों ने किस पक्ष को मत दिया था, वे कुछ नहीं बोले। मैं समझ गया। उनसे कहा— 'मत दूसरों को दो और आवाज विरोधी दल उठाए, यह कैसे चलेगा? वे आपकी आवाज उठाएँ इसके लिए आप लोगों को उन्हें समर्थन देना होगा।' मनुष्य की आज ऐसी स्थिति हो गई हे। स्वार्थ के लिए वे लागुलचालन करते हैं। समाज की इस स्थिति को बदलने के लिए समाज

देनेवाला है। तव विभिन्न प्रातों में सात नाम चुने गए, जिनमें चक्रवर्ती राजगोपालाचारी जी (राजाजी) का नाम भी था। उनसे मिलकर उनकी अनुमति प्राप्त करने के लिए मैंने चेन्नै शाखा के सघचालक जी को पत्र भेजकर सूचित किया। वे जव राजाजी से मिले तो उन्होंने कहा, 'निधि-सग्रहार्थ निकाले जानेवाले किसी भी आवेदन पर अपने हस्ताक्षर न देने का मेरा नियम है, क्योंकि इसका वहुत कटु अनुभव है।' तव सघचालक जी ने उन्हें मेरा पत्र दिया। उसे पढकर उन्होंने कहा, 'उन पर मेरा भरोसा है कि वे जिस काम के लिये पैसा इकट्ठा करेंगे उसी पर खर्च करेंगे', और उन्होंने उस अपील पर हस्ताक्षर कर दिए। यह एक उदाहरण है कि लोग किस प्रकार हम पर विश्वास करते हैं। अत हमें भिन्न-भिन्न प्रकार के जो कार्य करने हैं, उनमें अपना व्यवहार शुद्ध रखना चाहिए।

विजय ही विजय

साथ ही हमें ध्यान रखना चाहिए कि शाखा के बिना हम भिन्न-भिन्न कार्य नहीं कर पाएँगे। जहाँ अपनी शाखा अच्छी प्रकार से चलती है, वहाँ पर कोई भी कार्य हाथ में लिया, तो उसे निश्चयपूर्वक सफल कर सकते हैं। अत सघशाखा के कार्यक्रम, उसकी आचार-पद्धति, स्वयसेवकों का व्यवहार, स्वयसेवकों का स्वभाव तथा उनका गुणोत्कर्ष आदि बातों की ओर हम ध्यान दें ओर उनका प्रसार तथा दृढीकरण करने का एकाग्रचित्त से प्रयत्न करें। इतना करेंगे तो सब क्षेत्रों में विजय प्राप्त करेंगे। यह कार्य जितने अत करणपूर्वक और सुदृढता से चलेगा, उतनी अपने लिए सर्वदूर विजय ही विजय है, ऐसा मैं पूर्ण विश्वास से कहता हूँ।

मानव-प्रतिष्ठा सकट मे

जहाँ तक देश की परिस्थिति का प्रश्न है, हम देखते हैं कि दिन-प्रतिदिन तानाशाही की ओर वढ रही है। लोग वोलते हैं कि रूसवादी तानाशाही आ रही हे। कोई भी तानाशाही हो, वह अनिष्टकारी है। प्रचार करने से मनुष्य प्रचार का गुलाम कैसे बन जाता है, यह प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। आजकल सरकारीकरण का प्रचार हो रहा है। उसी की हवा चल रही है और सभी आवश्यक चीजों के सरकारीकरण की माँग की जा रही है। नागपुर के मिर्च-व्यापारियों ने भी प्रस्ताव पारित कर मिर्च का सपूर्ण व्यापार सरकारी हाथों में लेने की माँग की है। अभी एक वडे काग्रेसी नेता ने कहा कि केवल अनाज का सरकारीकरण करने से काम नहीं होगा,

सभी चीजों का सरकारीकरण करना चाहिए। लोगों को लगता है कि सरकारीकरण सब रोगों की रामबाण दवा है। साथ ही, वे यह भी कहते हैं कि अपनी सरकार ऐसी है कि वह सोना उठाएगी तो वह भी मिट्टी बन जाएगा। नवबर के अत में मैं इंदौर में था। वहाँ के समाचार-पत्रों में यह समाचार पढने को मिला कि सरकारी गोदाम के गेहूँ में मिट्टी के बडे-बडे ढेले मिले, जिनमें गेंहू के कुछ कण चिपके हुए थे। सरकारीकरण की यह स्थिति है, फिर भी इस प्रकार की हवा है, लोगों का उसकी ओर झुकाव है। आज देश में ऐसी स्थिति निर्माण की जा रही है, जिसके अतर्गत कुछ मुट्ठीभर सत्ताधारी हों और शेष सपूर्ण समाज उनका गुलाम बनकर रहे। मानव की प्रतिष्ठा का जो भाव रहना चाहिए था, वह अब कहाँ रहा है? वह तो गुलाम, यानें पालतू कुत्ता हुआ जा रहा है। उसके अदर कोई तेजस्विता नहीं रही। मार पडी तो भी रोटी के लिए लार टपकाएगा।

इस स्थिति में मनुष्य तथा राष्ट्र की अस्मिता और चारित्र्य जागृत करने तथा राष्ट्र की प्रतिष्ठा को सब प्रकार से अक्षुण्ण रखने में समर्थ समाज की सगठित शक्ति खडी करने का बहुत बडा दायित्व हमारी ओर आया है। यह अपने कार्य के विस्तार और उसके दृढीकरण से ही सभव है। इसके लिए एक-एक व्यक्ति को अपने सपर्क में लाकर कार्य के साथ जोडना होगा।

मनुष्य कितना लाचार होता है, यह मैंने अनुभव किया है। सन् १९४७ के बाद सिंध से आए हुए निर्वासितों की बस्ती में मैं गया था। वे लोग मुझसे मिलने आए और कहने लगे– 'हमारे निवास पर छत डलवाने के लिए कहने लगे– 'हमें बताया गया था कि कांग्रेस अधिवेशन के लिए मगवाई गई टीन की चद्दरें हमारे निवास पर छत डालने के लिए हमे दी जाएँगी, परतु बाद में कोई ध्यान नहीं दिया गया। हमें न देते हुए उन्हें बाजार में बेच कर मुनाफा कमाया गया। मेरे द्वारा यह पूछे जाने पर कि मेरे पास आने से क्या होगा? उन्होंने कहा कि उनकी इच्छा है कि विरोधी दलों द्वारा यह प्रश्न उठाया जाए। मेरे द्वारा यह पूछे जाने पर कि चुनाव में उन लोगों ने किस पक्ष को मत दिया था, वे कुछ नहीं बोले। मैं समझ गया। उनसे कहा– 'मत दूसरों को दो और आवाज विरोधी दल उठाए, यह कैसे चलेगा? वे आपकी आवाज उठाएँ इसके लिए आप लोगों को उन्हें समर्थन देना होगा।' मनुष्य की आज ऐसी स्थिति हो गई है। स्वार्थ के लिए वे लागुलचालन करते हैं। समाज की इस स्थिति को बदलने के लिए समाज

को आत्मविश्वासपूर्ण बनाना होगा। समाज, सगठित सामर्थ्य के बल पर ही प्रभुसत्ताधारी हो सकता है। यह दायित्व पूर्ण करने के लिए अपनी शाखाओं के विस्तार और दृढीकरण तथा व्यक्ति-व्यक्ति के गुणसवर्धन की ओर ध्यान देना होगा।

विघटनकारी शक्तियाँ

आज देश में विघटनकारी शक्तियाँ कार्य कर रही हैं और विदेशी शक्तियाँ उनसे लाभ उठाने के लिए सिद्ध हैं। असम में हुए भाषाई झगडों के पीछे विदेशी शक्तियों का हाथ रहा है। हरिजनों पर होनेवाले अत्याचारों के सबध में जो भडकाऊ समाचार छपते हैं, उनके पीछे भी विदेशी समाचार-वितरण-सस्थाओं का हाथ दिखाई देता है। विदेशी शक्तियाँ अच्छी तरह से जानती हैं कि हिंदू समाज को तोडने से ही यहाँ पर उनका प्रभुत्व रह सकता है। हिंदू-मुसलमान के झगडों का वृत्त देते समय जाति के नामों का उल्लेख करने पर रोक है, परतु सवर्ण हिंदू विरुद्ध हरिजन, ब्राह्मण विरुद्ध अब्राह्मण विवाद के भडकीले समाचार दिए जाते हैं। मुझे सदेह है कि इस प्रकार समाज की एकता को आघात पहुँचानेवाले विक्षोभक समाचारों के प्रचार के पीछे विदेशी शक्तियों की चाल काम कर रही है और भारत में उन विदेशी ताकतों के प्रभाव के कारण ही अभी तक इस दिशा में कोई रोकथाम नहीं की गई है।

हमारा दायित्व

ऐसी सकटपूर्ण स्थिति में समाज के एकीकरण तथा राष्ट्रीयत्व के जागरण का काय पूर्णतया करने में हम सफल नहीं हुए हैं। हम जितनी मात्रा में उसे पूर्ण करेंगे और सबके सामने अपने कार्य का एक घनीभूत आदर्श रूप खडा करेंगे, उतनी ही मात्रा में यह विदेशी हस्तक्षेप दूर होकर देश में एकात्मता तथा परस्पर स्नेह का वायुमडल देखने को मिलेगा। अपने इस दायित्व को पहचानकर हमें कार्य का सब प्रकार से विचार करना चाहिए और विस्तार के लिए अपने सब कार्यकर्ताओं को चारों ओर के कार्यों में जुट जाना चाहिए। यहाँ देशभर के प्रतिनिधि आए हुए हैं, वे अपने-अपने क्षेत्र में इस दृष्टि से पूर्ण चेष्टा करेंगे। मैं इस समय इतना ही कहता हूँ। अगली बार बोलने के लिए भगवान समय देते हैं या नहीं, कौन जाने?

कार्यकर्ता-बैठकें

संघकार्य में बैठकों का विशेष महत्त्व है। श्रीगुरुजी जहाँ भी जाते कार्यकर्ताओं की बैठकें अवश्य लेते थे। इन बैठकों के माध्यम से कार्यकर्ताओं से विभिन्न विषयों पर प्रश्न पूछकर कार्य की स्थिति तथा उनकी क्षमता का अंतरंग परिचय प्राप्त कर लेते थे। फिर प्रश्न-प्रतिप्रश्नों के द्वारा कार्यकर्ताओं का मार्गदर्शन किया करते थे।

बैठकें लेने का उनका अपना एक वैशिष्ट्यपूर्ण ढंग था। उनके द्वारा पूछे गए प्रश्न, उनकी सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति का परिचय देते थे। बीच-बीच में वे चुटकुले तथा कथाएँ सुनाकर अपनी बात को बड़ी सहजता व सरलता से कार्यकर्ताओं के सम्मुख रखते थे। शब्दों के श्लेषात्मक अर्थ निकालते हुए हास्य उत्पन्न करना तो उनकी कल्पनाशक्ति और भाषाप्रभुत्व का सहज चमत्कार था। इस कारण उनकी बैठकों में हास्य की धारा अखंड बहती थी जो संपूर्ण वातावरण को प्रफुल्ल बनाए रखती थी। बातचीत के मध्य वे अनेक मार्मिक उदाहरण देकर विषय प्रतिपादन को रोचक तथा परिणामकारक बनाते थे। ज्ञान-विज्ञान की विविध शाखाओं में उनकी जो अबाध गति थी उसका इन बैठकों में यत्र-तत्र दर्शन होता था।

१ केरल प्रातीय बैठक

(२१ से २३ जनवरी १९६५, कोचीन)

श्री गुरुजी द्वारा बैठक में पूछे हुए प्रश्नों की यह परिपूर्ण सूची है। वास्तव में ये प्रश्न स्वय ही मार्गदर्शक हैं। उन प्रश्नों को विभिन्न शीर्षकों में विभाजित किया गया है।

(क) दैनंदिन शाखा

१ आपकी शाखा कैसी चल रही है?
२ क्या वह प्रगति के लिए सक्षम है?
३ इसी स्थिति में यह शाखा कब से है? या प्रारभ से ऐसी ही है?
४ सख्या में कमी होते हुए भी शाखा का विकास हुआ है?
५ सख्या में अचानक गिरावट आती है या धीरे-धीरे?
६ गिरावट की अवस्था के लिए कुछ विशेष कारण है?
७ अधिक गिरावट अपेक्षित हे क्या?
८ प्रगति की अपेक्षा है? कैसी प्रगति? कोन सी प्रगति?
९ कभी शाखा बद भी हो जाती है क्या?
१० कुछ शाखाएँ पूर्णतया बद होने की सभावना है क्या?
११ प्रात में सबसे अच्छी शाखा कौन सी है?
१२ दूसरे क्रमाक की कोन सी है?
१३ शाखा नई है, क्या इसलिए अच्छी है?
१४ धीरे-धीरे वह पुरानी होकर स्थिर होगी, है ना?
१५ सामान्य स्तर पर आएगी ना?
१६ सबसे कार्यक्षम शाखा कौन सी है?
१७ शाखा में ध्वज लगाते हैं? प्रार्थना होती है?
१८ चार-पाँच शाखाओं का साप्ताहिक एकत्रीकरण अथवा साघिक होता है?
१९ अधिकारी की उपस्थिति से कुछ अतर पडता है क्या? उनका शाखा के एक-दो व्यक्तियों से परिचय है? केवल यही बात पर्याप्त है कि दूसरा और भी लाभ होता है?
२० इस माह शाखा के कार्य में कुछ बदलाव दिखाई दिया?
२१ आपकी शाखा कितनी पुरानी है?

२२ बैठक में कितनी शाखाओं का प्रतिनिधित्व नहीं होता? वे बहुत दूर हैं क्या?

२३ विशेष कार्यक्रम के बाद कितनी शाखाएँ बंद हो जाती हैं?

२४ पुरानी बंद हुई, नई खुल गई। क्या पुरानी शाखाओं को छोड़ दिया गया है?

(ख) उपस्थिति

१ शाखा में दैनिक उपस्थिति कितनी रहती है?

२ कितने महीनों से यह उपस्थिति रह रही है?

३ प्रत्येक शाखा में उपस्थिति बढ़ाने की कोई योजना है?

४ बाल-संख्या कम क्यों रहती है? (उत्तर - खराब संघस्थान)

५ जमीन खराब है तो लड़के खेलते नहीं हैं क्या?

६ इन विभागों में तरुणों की अपेक्षा बाल स्वयंसेवक कम क्यों रहते है?

७ आपकी सर्वाधिक उपस्थिति कितनी है?

८ शाखा में स्वयंसेवकों की कुल संख्या कितनी है?

९ जो स्वयंसेवक बाहर गए हैं, उनसे किसी ने संपर्क प्रस्थापित किया है?

१० विजयादशमी उत्सव में उपस्थिति कितनी थी?

११ श्री गुरुदक्षिणा उत्सव में उपस्थिति कितनी थी?

१२ एक पूर्ण तरुण गण किसी उपशाखा पर प्रतिदिन उपस्थित रहता है?

१३ एक पूर्ण बाल गण प्रतिदिन उपस्थित रहता है?

१४ दोनों पूर्ण गण किसी उपशाखा में उपस्थित रहते हैं?

(ग) कार्यक्रम, उत्सव एवं उनके उद्देश्य

१ आपके दैनंदिन कार्यक्रम क्या हैं? प्रभात शाखा में? रात्रि शाखा में?

२ कोई शारीरिक व्यायामयोग आप करते हैं?

३ और खेल? कौन से खेल? सबसे पसंद का खेल कौन सा है?

४ रोज दंडयोग करते हैं क्या?

५ रोज कितने सूर्यनमस्कार साधिक पद्धति से करते हैं?

६ शारीरिक व्यायाम के बाद स्वयंसेवक थक जाते हैं क्या?

७ तेरह सूर्यनमस्कार करने के बाद उन्हें एक सप्ताह का विश्राम आवश्यक होता है क्या?

८ यदि सूर्यनमस्कार की संख्या बढ़ाई, तो क्या वे शाखा में आना ही बंद कर देंगे?

९ तेरह सूर्यनमस्कारों से उन्हें लाभ होगा?

१० इससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ने की संभावना है? तेरह सूर्यनमस्कार उनकी सहनशक्ति से अधिक हैं क्या?

११ उनका प्रत्येक स्वयंसेवक पर क्या परिणाम होगा?

१२ शारीरिक सहनशक्ति बढ़ाना अपने दैनंदिन कार्यक्रम का अंग नहीं है क्या?

१३ क्या शारीरिक व्यायाम-योग केवल सार्वजनिक उत्सवों के लिए ही हैं?

१४ स्वयंसेवकों के लिए लाभदायक हो, ऐसा कार्यक्रम आप क्यों नहीं करते?

१५ यह संघ का कार्य नहीं है क्या? यदि है तो यह कार्य दुर्लक्षित क्यों है?

१६ सार्वजनिक या वैयक्तिक रूप से दूसरा कौन सा उत्सव आप करते है?

१७ उत्सव का अध्यक्ष कौन था? भाषण किसने दिया? उस व्यक्ति ने क्या भाषण दिया?

१८ कोई प्रात्यक्षिक किए गए क्या?

१९ दंड और शारीरिक व्यायाम आप प्रतिदिन करते हैं, इसलिए वे विविधता से प्रात्यक्षिक करते हैं क्या?

२० व्यक्तिशः वे ठीक तरह से प्रात्यक्षिक करते हैं क्या?

२१ आप कहते हैं कि वे उत्सव से संतुष्ट हैं। इसका अर्थ दैनंदिन शाखा के प्रति उनका आकर्षण नहीं है, यही है ना?

२२ अतः, ऐसे प्रत्येक उत्सव के बाद कितनी शाखाएँ बंद होंगी?

२३ आपका यह अनुभव है क्या कि प्रत्येक उत्सव के बाद शाखा की उपस्थिति घटती जाती है और अंत में वे पूर्णतया बंद हो जाएँगी?

२४ ऐसा हम कह सकते हैं क्या, कि ये विशेष उत्सव हमारी दैनंदिन शाखा के नियमित कार्य में बाधक हैं?

२५ यदि हम ये विशेष उत्सव बंद कर देते हैं, तो क्या हमारी शाखाएँ व्यवस्थित रूप से चलेंगी?

२६ क्या हमें ये सब उत्सव बंद कर देने चाहिए?

(घ) विस्तार तथा प्रयत्नशाखा

१ प्रयत्नशाखा में आप क्या करते हैं?

२ क्या पुरानी शाखाओं की जगह नई शाखाएँ प्रारंभ करेंगे?

३ कितने व्यक्तियों से आपने संपर्क किया? उनसे क्या कहा?

४ क्या आप उनसे वाद-विवाद करते हैं?

(ङ) मुख्यशिक्षक, शिक्षक एवं अन्य कार्यकर्ता

१ आपकी शाखा में सच्चे, विश्वसनीय स्वयंसेवक कितने हैं?

२ वे जो कार्य करते हैं, वह दृढ एवं स्थिर है? इस विषय में उन्हें समाधान है क्या?

३ वे क्या चाहते हैं?— कार्य बंद कर देना या वर्तमान स्थिर परिस्थिति कायम रखना?

४ मुख्यशिक्षक कौन हैं? क्या वे शाखा में नियमित आते हैं?

५ कितने शिक्षक शाखा की तरफ समुचित ध्यान देते हैं? क्या वे स्वयं उपस्थित रहते हैं?

६ वे अपना कार्य ठीक तरह से करते हैं? कार्यक्रम लेते हैं?

७ शाखा के विषय में आप पत्रव्यवहार करते हैं?

८ मुख्यशिक्षक अपना प्रतिनिधि शाखा में भेजता है क्या?

९ आपका शारीरिक शिक्षा प्रमुख कोई विशेषज्ञ व्यक्ति है?

१० शारीरिक शिक्षा प्रमुख और मुख्यशिक्षक— इन दोनों में क्या अंतर है?

११ शाखा-नियोजन में मुख्यशिक्षक अनावश्यक लगता है क्या?

१२ वे अन्य समय में स्वयंसेवकों से मिलते हैं क्या?

१३ सब गटनायकों की बैठक बुलाते हैं क्या?

१४ पूरे जिले की शाखाओं की देख-भाल करनेवाले कार्यकर्ता कितने हैं?

(च) स्वयंसेवक

१ क्या प्रत्येक स्वयंसेवक को प्रार्थना कंठस्थ है?

२ वे प्रार्थना का अर्थ जानते हैं या नहीं?

३ व्यक्तिश प्रार्थना बोलने में होनेवाली गलतियाँ सुधारने का कोई प्रयत्न होता है क्या?

४ किसी शाखा में प्रार्थना के अर्थ का स्पष्टीकरण करने का कार्यक्रम है क्या?

५ शाखाएँ कैसी चल रही हैं? यह देखने हेतु कोई स्वयसेवक गया या नहीं?

६ इसमें कोई कठिनाई थी? दूरी के कारण? सपर्क का अभाव था?

७ शारीरिक व्यायामयोग के बाद स्वयसेवक न थके, उन्होंने इसका कौशल्य आत्मसात किया है क्या?

८ आपका कोई गणवेश है? पूर्ण गणवेश?

९ क्या, उसको प्रदर्शित करते हैं?

१० पुराने स्वयसेवक के विषय में आप क्या कहेंगे?

११ उनकी उपस्थिति उत्सव का सम्मान बढाती है क्या?

छ) गटनायक और गटव्यवस्था

१ सारे स्वयसेवकों को एकत्रित रखने की कोई योजना है?

२ आपने गटनायक निश्चित किए हैं क्या?

३ अपने गट में स्वयसेवक सख्या बढाने में कोई गटनायक सफल हुआ है?

४ सारे गटनायकों की बैठक बुलाने का कोई कार्यक्रम है?

५ किन जिलों में कौन सी जगह गटनायक व्यवस्था है?

६ गटनायक अपने स्वयसेवकों को अच्छी तरह जानते हैं?

७ गटनायक स्वयसेवकों के घर के व्यक्तियों से भी परिचित हैं?

८ स्वयसेवकों के घरों में गटनायक 'बिन बुलाए मेहमान' समझे जाते हैं क्या?

९ शाखा के समय के बाद भी गटनायक स्वयसेवकों से मिलते हैं? व्यक्तिश ? एकत्रित?

१० गटनायक और स्वयसेवकों में मित्रतापूर्ण सबध हैं, ऐसा आपको लगता है क्या?

११ शिक्षक, गटनायकों को ठीक तरह से मार्गदर्शन करते हैं?

१२ शिक्षकों का मार्गदर्शन कौन करेगा? कार्यवाह? क्या वे इस कार्य के लिये तैयार हैं?

(ज) सर्वसाधारण दृष्टिकोण

१ जिले की लोकसख्या कितनी है?
२ उसमें कितनी तहसीलें हैं?
३ पहाडी प्रदेशों में मनुष्य वस्ती नहीं है क्या?
४ कारण क्या है? ऊँचाई या दूरी?
५ इसका अर्थ हुआ कि आधे प्रांतों में सघकार्य ही नहीं है?
६ प्रत्येक महत्त्वपूर्ण स्थान से सपर्क प्रस्थापित हुआ है?
७ हमारे कार्य की दृष्टि से वातावरण कैसा है?
८ वहाँ के लोग ऐसा सोचते हैं क्या, कि किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा कार्य अच्छा हो सकता है?
९ इस कार्य को योग्य तरीके से कर सके, ऐसे जिम्मेदार कार्यकर्ता को आप जानते हैं क्या?
१० किसी बैठक में ऐसे व्यक्ति से भेंट कर कार्य की योजना आपने बनाई है क्या?
११ जिला प्रचारक की अनुपस्थिति में उनका कार्यभार सँभालनेवाला दूसरा कोई व्यक्ति है क्या?
१२ इसके लिए किसी ज्येष्ठ व्यक्ति से आपने सपर्क प्रस्थापित किया है?

२ कार्यकर्ता का दायित्व

सपूर्ण प्रात के विषय में हमें ज्ञात हुआ है कि अभी अनेक शाखाओं में गटव्यवस्था का कार्य सुनियोजित रीति से नहीं चल रहा है। सर्व स्वयसेवकों को एकत्रित रखना तथा उनके द्वारा नए स्वयसेवकों को शाखा में लाने के लिए कार्यक्षम गटव्यवस्था आवश्यक है और यही बात दुर्लक्षित है। इस ओर ध्यान देना चाहिए।

गटनायकों से मैंने पूछा था कि स्वयसेवकों को आवश्यकता होती है, तब आप उनकी सहायता करते हैं क्या? पैसा मिले या न मिले, जिन्हें आवश्यक है उन्हें आप पढाई में मदद करें। यह सहायता का एक प्रकार है। यदि गटनायक यह कार्य नहीं कर सकते हैं, तो उच्च अधिकारियों को उनका मार्गदर्शन करना चाहिए।

पूर्वकाल में घटित एक प्रसग मुझे याद है। हमारा एक अच्छा

कार्यकर्ता मुझसे मिलने आया। वह अभ्यास बिलकुल नहीं करता था। यहाँ तक कि उसे तो अभ्यास के विषय भी मालूम नहीं थे। विद्यापीठ जाकर मैंने अभ्यासक्रम पुस्तिका प्राप्त की। उसके पास पुस्तकें भी नहीं थीं। उसकी पुस्तकें अन्य अध्ययनशील छात्र ले गए थे। मैंने यह सोचा कि यह छात्र उत्तीर्ण होना ही चाहिए, क्योंकि संघ कार्यकर्ता अनुत्तीर्ण होना उचित नहीं। उसका अपयश बुरा उदाहरण प्रस्तुत करेगा। यदि वह अनुत्तीर्ण होता है, तो अनेक पालक अपने पालितों को उसके साथ नहीं रहने देंगे। मैं कुछ शिक्षकों से मिला और उन्हें पढाई में उसकी सहायता करने के लिए तैयार किया। उसे पढाने के लिये मुझे भी अनेक विषयों का अभ्यास करना पडा, क्योंकि उसने जो विषय लिए थे, वे मेरे नहीं थे। मैं सुबह ५-३० बजे उसे पढाता था। आखिर वह परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ। उन दिनों यह अपवादात्मक अवस्था नहीं थी। सभी शाखाओं में यह प्रथा थी। ज्येष्ठ विद्यार्थी नए विद्यार्थियों की सहायता करते थे, कई बार अपने पडोसियों से भी मदद लेते थे।

यदि हम अपने स्वयंसेवकों का ध्यान नहीं रखेंगे और अपने आचरण से उन्हें यह विश्वास नहीं दिलाएँगे कि उनका स्वयंसेवकत्व उनके कल्याण के लिए ही है, तो हम उन्हें एकत्र नहीं रख सकेंगे। गटनायक, स्वयंसेवक तथा शिक्षकों का इस तरह का व्यवहार एक आदत सी बन जानी चाहिए, वह भी अकृत्रिम रूप से।

३ कार्यकर्ता का व्यवहार

१) प्रतिदिन शाखा में प्रारंभ से अंत तक उपस्थित रहना चाहिए। शिक्षकों का समय पर रहना तो अनिवार्य ही है।

२) स्वयंसेवकों से मिलने तथा गटनायकों की सहायता के लिए, शाखा समय से कम से कम एक घंटा पूर्व दैनंदिन शाखा की तैयारी करनी चाहिए।

३) शाखा में अनुपस्थित रहे स्वयंसेवकों से मिलने तथा जो आए हैं, उनके साथ विभिन्न विषयों पर वार्तालाप करने के लिए जो स्वयंसेवक शाखा के बाद कम से कम एक घंटे का समय दे सकते हैं, उन स्वयंसेवकों से बात करनी चाहिए।

४) दोनों समय (शाखा के पूर्व व पश्चात्) कौन कार्य करता है?

शाखा का उत्तरदायित्व मुख्यशिक्षक एव अन्य शिक्षकों पर होते हुए भी यदि वे ही अनियमित हैं, तो अन्य स्वयसेवक शाखा में नियमित आएँ, इसकी अपेक्षा वे कैसे कर सकते हैं? स्वय सघकार्य के लिये वे पर्याप्त समय नहीं देते हों, तब अन्य स्वयसेवकों को वे प्रोत्साहित कर सकेंगे, यह आशा कैसे करें? जब शाखा आलस्यपूर्ण होकर चलाई जाती है, कार्य की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, कार्य के महत्त्व को जानते न हों, व्यवस्थित रीति से नहीं चलाई जाती और शाखा लगानेवाला स्वय अनियमित रहता है, इस कारण यह शाखा प्रगत नहीं हो पाती।

शिक्षक, मुख्यशिक्षक तथा अन्य कार्यकर्ताओं को सुधारने का कर्तव्य उच्च अधिकारियों का है। यह सुधार वे ही कर सकते हैं। अत उनके कधों पर अधिक दायित्व है। प्रत्येक उपशाखा पर हर दिन जाना उनके लिए कदाचित सभव नहीं होगा। अत शिक्षक ही विशेष रूप से यदि अपना कर्तव्य नहीं निभाते, तो शाखा की यथास्थिति ही रहेगी, अधिक सुधार की अपेक्षा कभी नहीं कर सकते।

जब शिक्षक अपने कर्तव्य ठीक तरह से करेंगे, तभी स्वयसेवकों का व्यवहार भी ठीक रहेगा।

मेरा यह अनुभव है कि प्रत्येक स्वयसेवक शिक्षकों तथा अन्य कार्यकर्ताओं के आचरण पर ध्यान रखता है। हमारा आचरण अपेक्षा के विपरीत हो तो स्वयसेवक हमारा आदर नहीं करेंगे। यदि हम उनके आदर के पात्र नहीं होंगे, तब हम अपने कर्तव्य ठीक तरह से नहीं कर सकेंगे। स्वयसेवकों के अनादर के पात्र शिक्षक कार्य कर ही नहीं सकते। हमारा आचरण प्रत्येक दृष्टि से सही होना चाहिए, ताकि हमारे प्रयासों को स्वयसेवक अच्छी तरह से समझ सकें, अनुभव कर सकें और हमारे प्रयासों की प्रशसा कर सकें। यदि हम ऐसा करते हैं, तब शाखा सुयोग्य रीति से चलेगी ही।

मुबई शाखा का उत्सव था। मैं भी उसमें था। अच्छी सख्या थी। लबे समय तक शाखा में न आनेवाले स्वयसेवक भी काफी सख्या में थे। कार्यक्रम व्यवस्थित हुआ। बाद में एक स्वयसेवक ने नागपुर के पते पर मेरे पास पत्र भेजा। उसमें लिखा था 'मुबई के सार्वजनिक उत्सव में मैंने देखा कि आपने ध्वजप्रणाम 'दो' में अपना माथा नहीं झुकाया था। क्या आप स्वय को इतना बडा समझते हैं कि ध्वज के सामने माथा न झुकाएँ ?' मैंने

त्वरित उत्तर दिया कि 'साधारणत मैं इस प्रकार की गलतियाँ नहीं करता। किंतु वास्तव में यदि ऐसी गलती मैंने की हो, तो यह मुझे संघ के इस पद पर रहने के लिये अयोग्य ठहरानेवाला अपराध है।' लेकिन मेरा पत्र-व्यवहार सँभालनेवाला एक स्वयसेवक इस बात से विचलित हो गया। उसने उचित उत्तर देते हुए पूछा– 'मच की ऊँचाई १६ फीट थी और जब ध्वजप्रणाम दो की अवस्था में सब स्वयसेवकों के शीश झुके होने चाहिए थे, उस वक्त मच की तरफ बिना देखे इस स्वयसेवक को गलती कैसे दिखाई दी?'

उस स्वयसेवक की यह गलती हो सकती है, परतु हमें यह निश्चित ज्ञात होना चाहिए कि स्वयसेवक हमारी छोटी-सी गलती को भी सूक्ष्म दृष्टि से देखता है।

दूसरे एक पत्र के विषय में मैं आपको बताना चाहूँगा। पत्रलेखक स्वयसेवक का मानसिक सतुलन बिगडा हो सकता है। तृतीय वर्ष सघ शिक्षा प्राप्त, कुछ समय के लिए प्रचारक का कार्य करनेवाला वह एक बहुत पुराना कार्यकर्ता था। उसने लिखा था– 'एक पुराने सघ कार्यकर्ता से मेरी भेंट हुई और वर्तमान काल में शाखाओं का कार्य ठीक तरह से नहीं चलने के विषय में उससे चर्चा की। उसने मुझे कहा कि आज के स्वयसेवकों में वह निश्चय एव उत्साह नहीं है, जो तरुण आयु में हम लोगों में होता था। उस पर सम्यक् विचार करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आपकी (श्री गुरुजी की) शाखा में अनियमित उपस्थिति के कारण स्वयसेवकों में निश्चय तथा उत्साह का अभाव है। प पू डा हेडगेवार शाखा में ठीक समय पर नियमित रूप से उपस्थित रहते थे। उस समय शिक्षक एव कार्यकर्ताओं में शक्ति भी थी। अब आप मुझे बताइए कि इन वर्षों में आप दैनदिन शाखा में प्रारभ से अत तक कभी उपस्थित रहते हैं क्या?'

मैंने उत्तर दिया– 'मैं मेरी मोहिते शाखा में नियमित उपस्थित नहीं रहता। मैं एक प्रवासी हूँ। आज यहाँ प्रवास पर हूँ। भौतिक दृष्टि से नागपुर की शाखा में उपस्थित होना मेरे लिये असभव है।

सभव है कि एक विशिष्ट मानसिक अवस्था में उसने वह पत्र लिखा हो। परतु इसका भी अर्थ यही है कि अल्पविक्षिप्त व्यक्ति भी हमारे व्यवहार को पैनी दृष्टि से देखते हैं। अत हमारा कार्य अचूक व प्रेरक चाहिए।

इसलिए शब्दों को उचित कृति का आधार आवश्यक है, नहीं तो

वे शब्द निरर्थक हो जाते हैं। परोपदेश की कोई कीमत नहीं होती। शाखाओं की वर्तमान अवस्था का यही एक कारण है।

ಔ ಔ ಔ

४ ध्येयात्मक बोध

इन विविध जिलों में स्वयसेवकों की कार्य के प्रति समझ, श्रद्धा एव निश्चय विकसित करने हेतु व्यवस्थित योजना, जेसे-बौद्धिक योजना आदि बनाई जानी चाहिए। अन्यथा अपना काम शारीरिक व्यायाम मडल की तरह होगा, राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ की तरह नहीं। दड, व्यायामयोग और कबड्डी खेलना— यही सघकार्य नहीं है। स्वयसेवकों के प्रबोधन की व्यवस्था भी होनी चाहिए। यह ठीक है कि सघ के खेल तथा कार्यक्रम से आकर्षित होकर स्वयसेवक सघशाखा में आना प्रारभ करते हैं। कुछ मित्रों द्वारा भी लाए जा सकते हैं। किंतु बाद में यदि यह नहीं समझते कि सघकार्य उनका अपना कार्य है, तब सघ में कैसे रहेंगे।

अन्यथा सर्वसामान्य राय ऐसी बनेगी कि सघ केवल व्यायामशाला है, जिसकी शाखाएँ देशभर में फैली हुई हैं। साराश यह है कि इस विषय में उचित योजना हो। यह समझना सर्वथा कठिन है कि इतने वर्षो तक सघकार्य करने के बाद हम इस महत्त्वपूर्ण पहलू के विषय में असावधान रहे।

कल के बौद्धिक में मैंने यही समझाने का प्रयत्न किया कि हम हिंदू लोगों में एकात्म भाव कैसे जगाएँ। मैंने बताया था कि हमारे हृदयों में मातृभूमि के प्रति समान श्रद्धा है। कुछ लोग स्पष्ट रूप से कहेंगे, कुछ लोग कुछ भी नहीं बोलेंगे, किंतु श्रद्धा-भक्ति निश्चित ही है। हम इसी श्रद्धा को जगाते हुए, हिंदू समाज का सगठन कर सकेंगे। मैंने एक पद्धति बताई, जिसके बल पर अज्ञानी व्यक्ति भी अपनी मातृभूमि की विशालता को समझते हुए अपने हृदय में मातृभूमि के प्रति भक्ति जगा सकता है।

हमारी मातृभूमि की विशालता, पवित्र स्थल, ऐतिहासिक स्थानों का स्वयसेवकों को ज्ञान कराते हुए उनके हृदयों को इस तरह सस्कारित करें कि यह भूमि दिव्यभूमि है और इसमें अर्चना करने योग्य देवत्व है। हमारी विचारधारा की यही मूलभूत बात प्रत्येक स्वयसेवक को जान लेनी चाहिए, इस श्रद्धा के बिना वह कैसे समझेगा कि सपूर्ण हिंदू समाज में एकात्मता है। मातृभूमि के प्रति यह श्रद्धाभाव उसके हृदय में दृढता से मुद्राकित नहीं हुआ तो वह कैसे समझेगा कि वह भी इसी माता की सतान है। यह

भ्रातृभाव उसके हृदय में यदि नहीं जागता है तो सुदृढ सगठना का निर्माण, सर्व प्रकार की कठिन परिस्थिति में सहायता करने की भावना, सच्ची सहानुभूति तथा बधु-प्रेम की निर्मिति करने में हम कैसे सफल होंगे? इसलिए ये सब बातें अत्यावश्यक हैं।

हमारे एक शिक्षक ने सोचा कि अपने स्वयसेवकों को तानाजी की तरह ही शिक्षा देनी चाहिए। अत वह शिक्षक अपने स्वयसेवकों को एक पहाडी पर ले गया और उन्हें तानाजी की तरह उस पर चढने को कहा। उन्हें सुदृढ बनाने के लिए बाद में खुले बदन पीठ के बल लेटने को कहा। परिणाम यह हुआ कि उनकी पीठ गर्मी से झुलस गई। अन्य भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पडा। इस सबका परिणाम यह हुआ कि दूसरे दिन से शाखा बद हो गई। शाखा की पुन स्थापना करने में बहुत समय लगा। अत बिना सोचे-समझे इस तरह करना घातक होता है।

कहानी के विशिष्ट विभाग पर बल देकर, स्वयसेवकों में मूर्खतापूर्ण बहादुरी का भाव नहीं जगाना चाहिए। मुझे एक घटना का स्मरण हो रहा है। शत्रु सेना पर अचानक हमला करना शिवाजी का रणतत्र था। इसका अनुकरण करते हुए कुछ स्वयसेवकों ने मुस्लिम वेश धारण कर अचानक एक शाखा पर हमला कर दिया। वे सचमुच ही लडने लगे। शाखा के स्वयसेवकों को वे मुस्लिम लोग ही लगे। पडोसियों को भी वह वास्तविक लडाई लगी। एक पडोसी ने पुलिस को फोन कर दिया। पुलिस आई और उनमें से कुछ स्वयसेवकों को पकडकर ले गई। उनमें से एक स्वयसेवक भागकर सघचालक के पास गया और सारी घटना सुनाई। बडी कठिनाई से सघचालक ने पुलिस अधिकारी को विश्वास दिलाया कि यह उनका आपसी खेल था और स्वयसेवकों को मुक्त करवाया, अन्यथा वह फौजदारी अपराध हो जाता।

ऐसे सस्कारों से स्वयसेवकों के मन में गलत धारणाएँ प्रतिबिंबित हो सकती हैं। इसलिए हमें बहुत सावधान रहना चाहिए। हमें मातृभूमि के प्रति श्रद्धाभाव जगाना है। क्या लाभदायक एव हितकर है—यह हमें ज्ञात होना चाहिए। केवल कुछ बडी घटनाओं का वर्णन करने से कुछ भी साध्य नहीं होगा। प्रत्येक व्यक्ति को सत्यदर्शन एव सघकार्य की आवश्यकता प्रतीत हो तथा वह नि स्वार्थ बुद्धि से कार्य कर सके ऐसा प्रत्येक कहानी का निर्देश होना चाहिए।

बौद्धिक योजना के सारे विषय एक के बाद एक समुचित रूप से कार्यान्वित करने चाहिए। स्वयसेवकों को विषयों का सम्यक् आकलन कराते हुए उन्हें बौद्धिक, मानसिक एव भावनायुक्त दृष्टि से कार्य के लिए सिद्ध करना चाहिए।

५ स्वयसेवको का विकास

अनेक बार ऐसा होता है कि घर में अथवा बाहर अनौपचारिक रूप से अच्छे-बुरे विषयों पर चर्चा करते हैं। एकात में बैठने पर हमारा मन भटककर एक के बाद एक अनेक विषयों पर जाता है। इन सब बातों का अध्ययन करके प्रत्येक स्वयसेवक को अधिक अच्छा स्वयसेवक बनने हेतु मार्गदर्शन करना चाहिए। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन सब बातों से हमें स्वय को अलग नहीं मानना चाहिए। हमें मार्गदर्शन की आवश्यकता ही नहीं– ऐसा हममें से कोई भी नहीं मान सकता। मुख्यशिक्षक को यह भी नहीं समझना चाहिए वह सद्गुणों का आदर्श है। हमें आत्मपरीक्षण कर यह देखना चाहिए कि अपने विचार तथा आचरण अधिक अच्छे जीवन के लिए लाभदायक हैं या नहीं। यदि कोई बात गलत है तो उसे सुधारना चाहिए।

सघकार्य की प्रारभिक अवस्था में लोगों को केवल शारीरिक कार्यक्रम दिखाई दिए। उन्हें लगा कि लाठी की शिक्षा के लिए यह व्यायामशाला है। बैठक-भाषण कुछ नहीं होता था। ऐसा ही कार्यक्रम चलता रहा। कुछ समय के पश्चात् यह स्थिति बदली। प्रतिदिन शाखा के पश्चात् एक कोने में दरी बिछाकर डाक्टर जी बैठ जाते, स्वाभाविक कुतूहल से स्वयसेवक भी बैठ जाते थे। बातचीत का कोई निश्चित विषय नहीं होता था, केवल मुक्त सभाषण होता था। स्वयसेवकों में रुचि उत्पन्न हुई। धीरे-धीरे बैठक की आदत हो गई और यह बात सघकार्य का नियमित वैशिष्ट्य हो गया, जो स्वयसेवकों को योग्य सस्कार तथा घनिष्ठ सबध बनाने का आधार बन गया।

बैठक अनेक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसके माध्यम से हमें ज्ञात होता है–

१) शाखा में कौन आया, कौन नहीं आया यह ज्ञात होता है।

२) गटनायक स्वयसेवकों से मिले या नहीं यह पता चलता है।

३) शाखा में उपस्थित होने में आनेवाली कठिनाइयों का ज्ञान होता है। तब स्वयसेवक तथा उनके पालकों से मिलकर उन्हें विश्वास दिलाकर शाखा में आने की अनुमति प्राप्त कर सकते हैं। यदि स्वयसेवक कुसगति में हो तो उसे सन्मार्ग पर ला सकते हैं।

४) चर्चा से स्वयसेवकों को देश-विदेश की घटनाओं का ज्ञान होता है। समाज और देश के हित का विचारकर देश की परिस्थिति से अनभिज्ञ रहना ठीक नहीं। प्रतिदिन नए विषयों पर मुक्त चर्चा एव सभाषणों से जिम्मेदार कार्यकर्ताओं द्वारा इस तरह से मार्गदर्शन होना चाहिए कि सघ की आवश्यकता स्वयसेवक के हृदय में सुदृढ रीति से अकित हो और वे परिस्थिति का समुचित आकलन कर सकें।

विभिन्न व्यक्तियों को सभाषण के लिए लाइए। भिन्न पक्ष के लोगों को भी लाना चाहिए। परतु एक बात अवश्य ध्यान में रखिए कि उनका आकलन, परीक्षण करते समय किसी ने भी उनका क्षुद्रतापूर्वक उपहास नहीं करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति में अच्छे-बुरे गुण होते हैं। तब व्यग करने से क्या लाभ? दूसरों के दुर्गुणों का विचार करते रहने से उन दुर्गुणों का कुछ अश हमारे अत करण को भी कलुषित करेगा। अत उन व्यक्तियों की नैतिकता एव भ्रष्टाचार के विषय में आवेशपूर्ण भाषण न करते हुए केवल सूचित करें और छोड दें। अतिरुचि न दिखाएँ।

~ ~ ~

६ कुछ नियम

इन अनौपचारिक सभाषणों के समय अनावश्यक गभीर न रहें, न ही वह क्षुद्रतापूर्ण हो। मन को स्वस्थ, शात रखिए। किस्से, चुटकुले सुनाएँ, स्वय पर भी व्यग करके सुखद सभाषण करें। अधिकारी की तरह नहीं, मित्र की तरह बात करें। इससे मन को कार्य करने की अधिक शक्ति मिलेगी।

स्थलदर्शन करने मित्रों सहित जाएँ, दोनों एक दूसरे की सगति में सुख पाएँगे। पालकों को भी सुख मिलेगा। यह सब अपनी सगठनात्मक रचना को दृढ बनाकर एकात्म-भाव जगाने के लिए आवश्यक है। हम सगठन के केवल सदस्य के रूप में उससे सबधित नहीं हैं। अपने सारे व्यवहार स्वयसेवकों में सहयोग व सगठन के प्रति श्रद्धा जगाने के लिए होने चाहिए। जब चिरतन मित्रता का भाव निर्माण होगा, तभी सर्वदा कधे से

कधे मिलाकर कार्य कर सकेंगे। शाखा का प्रत्येक स्वयसेवक एकात में या सहयोगी की अनुपस्थिति में क्या सोचता है, क्या बोलता है, क्या व्यवहार करता है, यह जानने का प्रयत्न किसी शिक्षक, मुख्यशिक्षक या अन्य जिम्मेवार पदाधिकारी ने किया है क्या?

जैसे एकात में प्रत्येक व्यक्ति गाना गुनगुनाता है। एकात में मनुष्य क्या सोचता है, क्या बोलता है, ये बातें उसकी मानसिक अवस्था का सकेत करती है। इसीलिए मैंने यह विशेष प्रश्न पूछा है। प्रत्येक जिम्मेदार कार्यकर्ता को शाखा के प्रत्येक स्वयसेवक का अध्ययन करके पता लगाना चाहिए कि उसके विचार कहाँ-कहाँ भटकते हैं, उसे क्या पसद है, क्या नापसद है। उसके मन चक्षु में कौन सा चित्र आता है, उसकी महत्त्वाकाक्षा क्या है और वह किस दिशा में सोचता है– यह जानना चाहिए। इस निरीक्षण के पश्चात् उसके व्यक्तित्व का आकलन कर, उसे किस तरह का मार्गदर्शन चाहिए, यह हम समझ सकते हैं। इस तरह से प्रत्येक व्यक्ति को आगे लाना चाहिए। अत प्रत्येक स्वयसेवक से घनिष्ठ सबध प्रस्थापित कर उसकी भावनाओं को को न दुखाते हुए, उसे सुधारना चाहिए।

हमारे देश में कहीं-कहीं ऐसी प्रथा है कि लडकी की शादी के पूर्व भावी दूल्हे को, घर पर स्वागत कर, कमरे में एकात में रहने दिया जाता है। कमरे की छत में एक छिद्र रखकर वहाँ से परिवार के सारे लोग उसका निरीक्षण करते हैं। उसके व्यवहार से वे यह निर्णय लेते हैं कि लडकी की शादी उससे करनी चाहिए अथवा नहीं। व्यक्ति को जानने की यह अच्छी प्रथा है।

एक बार अपने प्रवास में एक गाँव में मैं अपने परिचित वकील के घर में ठहरनेवाला था। मुझे वहाँ ४ ३० बजे पहुँचना था, पर मैं एक घटा पहले ही पहुँच गया। तब वह मेरे लिए कमरा व्यवस्थित कर रहा था। उस घर में पहले से परिचित होने के कारण मैं सीधा अदर चला गया। मैंने देखा कि वह कमरे में लगे सारे चित्र निकाल रहा था। वे ज्ञात-अज्ञात चित्रपट सितारों के चित्र थे। मैंने कहा– लगे हैं, तो रहने दो। लेकिन वह उन्हें निकालने के लिए आग्रही था। मुझे ज्ञात हुआ कि उसने उन चित्रों को पुन नहीं लगाया। फिर भी उन चित्रों ने उसके व्यक्तित्व का परिचय तो करा ही दिया। वेशभूषा, चलना-फिरना, केशरचना आदि बातों से मनुष्य के स्वभाव का ज्ञान हो सकता है। अत अनौपचारिक व्यवहार से हम स्वयसेवकों को जान कर उसके व्यक्तित्व विकास में सहायता कर सकते हैं।

सर्वसामान्य अनुशासन, नियमितता, निष्ठा, कार्य का ज्ञान, कार्य का आकलन एव उसके प्रति पर्याप्त ध्यान, आदर्श और श्रद्धा इत्यादि सरल, किंतु महत्त्वपूर्ण बातों पर हमारे सगठन का प्रासाद खडा है। प्रत्येक छोटी-छोटी बात पर विशेष ध्यान देकर हम कार्य नहीं करेंगे, तो राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ निर्वीय बलहीन भीड बन जाएगा। वैसा न हो, इसलिए अपने कार्य को ठीक ढग से करें।

卐卐卐

७ शका समाधान

(कार्यवाह-मुख्यशिक्षक बैठक, नागपुर ६ सितबर १९५३)

एक कार्यकर्ता— अनियमित स्वयसेवकों से मिलता रहता हूँ। पूर्वकाल में इन स्वयसेवकों ने दायित्व स्वीकार कर काम भी किया था, परतु आजकल 'इच्छा है, परतु काम करना सभव नहीं होता,' ऐसा उत्तर देते हैं?

उत्तर— अनेक सत्प्रवृत्त लोगों के जीवन में भिन्न-भिन्न प्रकार की निष्प्राण सदिच्छाएँ दृष्टिगोचर होती हैं, परतु इच्छा के अनुरूप अपने शरीर, मन, बुद्धि के द्वारा काम करवाने की क्षमता, दृढता को वे अपने बलबूते निर्माण नहीं कर सकते। किसी अच्छे, निरपेक्ष मित्र के द्वारा यह सहायता उसे की जा सकती है। उसे प्रोत्साहित किया जा सकता है। इस प्रकार का मित्र उनके जीवन में भी सही दिशा में परिवर्तन ला सकता है। उनके सद्गुणों के विकास में सघ उनका उत्तम मित्र बने, यही अपनी अपेक्षा है।

प्रश्न— हमें काम करने के लिए समय नहीं मिलता। क्या किया जाए?

उत्तर— समय नहीं मिलता, यह बात ठीक नहीं है। We exist in time हमारा अस्तित्व ही कालावृत है। मछली जल में ही रहती है। यदि वह शिकायत करे कि पानी नहीं है, तो उसका कहना हास्यापद है। समय मिलता नहीं— ऐसा कहना भी उसके समान ही है। मनुष्य प्रत्येक क्षण का उपयोग करने का विचार नहीं करता। यदि हम अपने ऐसे स्वयसेवकों से स्नेहपूर्ण बातचीत कर यह समझा सकें कि उनके जीवन का प्रत्येक क्षण उपयोगी सघकार्य में व्यतीत करने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है, तो वह निश्चय ही अधिक समय देगा।

प्रश्न— पुराने स्वयसेवक काम नहीं करते। उनसे बातचीत करने में

समय भी व्यतीत होता है और काम भी नहीं होता। क्या करना चाहिए?

उत्तर– पुराने स्वयसेवकों को मिलने में समय मत गँवाओ। उत्सव में या विशेष कार्यक्रमों में उन्हें अधिक कार्यक्षम करने के प्रयास में समय नष्ट न करो। अपने मुहल्ले में नए-नए लोगों से सबध प्रस्थापित करो। उन्हें सघशाखा में लाने का प्रयास करो। नए स्वयसेवकों के कारण नवचैतन्य अनुभव करोगे। नए स्वयसेवकों के जोश के कारण पुराने भी आ जाएँगे। उनमें कुछ उत्साह आ जाने पर उनका भी उपयोग अपने काम में होगा। तब तक उनके पीछे मत पडो।

प्रश्न– शाखा स्थान पर तो स्वयसेवक नियमित रूप से आते हैं, परतु किसी और सघ-स्थान पर एकत्रीकरण का कार्यक्रम रहा, तो सख्या कम रहती है?

उत्तर– ऐसे एकत्रीकरण में न आनेवाले स्वयसेवक अपने-अपने सघस्थान के स्वयसेवक होते हैं। वे सघ के स्वयसेवक बनें, न कि किसी सघस्थान के, यह चिता हमें करनी होगी। कुछ स्वयसेवक दैनदिन शाखा में आते नहीं, परतु उत्सव त्यौहारों पर या शिविर में अवश्य ही आते हैं। ये स्वयसेवक कार्यक्रमों के स्वयसेवक रहते हैं। कार्यक्रम के उत्साह से ये भी उत्साहित होकर सम्मिलित होते हैं। ऐसे स्वयसेवक भी सघ के स्वयसेवक बनें, केवल कार्यक्रमों के नहीं, यह भी अपना ही काम है।

केवल सघस्थान या कार्यक्रम का प्रेम लेकर ही हमें नहीं चलना है। कार्य का भाव, अर्थात् सघकार्य पर निष्ठा निर्माण करने का प्रयत्न करना चाहिए।

एक गाँव में सघशाखा में जानेवाला स्वयसेवक अन्य किसी गाँव में जाने के पश्चात् सघशाखा में इसी कारण से नहीं जाता है। हर गाँव की सघशाखा मेरी है और जहाँ सघशाखा नहीं है, वहाँ प्रयास कर मैं सघशाखा प्रारभ करूँगा, यही भाव चाहिए। यह सोचना कि अपनी शाखा के १०-२० स्वयसेवकों में से एक मैं हूँ, सकुचित भावना है। देशभर के हजारों स्वयसेवकों में से मैं एक हूँ, ऐसा भाव जगाना चाहिए।

प्रश्न– विशेषत राजनीतिक क्षेत्र में कार्य करनेवाले कार्यकर्ता अपेक्षा के अनुरूप व्यवहार नहीं करते। इसलिए सघ स्वयसेवक के बारे में हम जो कहते हैं, वह लोगों के गले नहीं उतरता?

उत्तर– अपना सघकार्य इस विचार से प्रारभ नहीं हुआ कि लोग

हमसे क्या चाहते हैं, अपितु जो समाज-जीवन में न्यून है उसे लोगों को समझाने के लिए प्रारभ हुआ है। स्वय अपने जीवन में निर्भय हिंदू जीवन अभिव्यक्त कर, लोगों में भी वह सक्रमित करने के लिए प्रारभ हुआ है। जो हम चाहते हैं, वह लोगों को देने हेतु प्रारभ हुआ है। लोगों की इच्छा के अनुसार चलने की अपेक्षा, लोगों का जीवन सघ के विचारों से प्रभावित करने का अपना कार्य है। सचमुच यही विधायक कार्य है। इसमें समय अधिक लगता है, लग रहा है। मनुष्य-जीवन में सही दिशा में परिवर्तन के लिए समय तो लगेगा ही। यदि हमारी ऐसी अपेक्षा है कि काम जल्दी हो, तो कार्यकर्ता अधिक सख्या में और प्रत्येक कार्यकर्ता अधिक समय सघकार्य करे, यही उसका उत्तर होगा।

प्रश्न— आपस में बातचीत करते समय कभी-कभी दोषों की ही चर्चा होती है। हँसी-मजाक भी होता है। दोषों से निर्मित विनोद करना सुलभ है। ऐसी चर्चा दोषों को फैलाती है। स्वयसेवक के ध्यान में दोष ही रह जाते हैं?

उत्तर— सघ की कुछ प्राथमिक बातों के विस्मरण से ऐसा होता है। प्रत्येक में दोष तो रहते ही हैं। हम उसे क्रमश निर्दोष बनाने का प्रयास करते हैं। इसलिए आपसी बातचीत में केवल गुणों की ही चर्चा हो। बातचीत में अनुपस्थित लोगों का विचार करते समय भी उनके सद्गुणों की ही चर्चा करना उपयुक्त होता है। अपनी बातचीत से किसी के प्रति अनादर निर्माण न हो, इसकी सावधानी रखनी होगी।

वैसे भी दोष देखने की प्रवृत्ति ठीक नहीं है। लोगों में जो हम देखते हैं, देखने का प्रयास करते हैं उसमें हमारा स्वय का प्रतिबिब रहता है। जिसे लोगों के दुर्गुण ही नजर आते हैं, उन दुर्गुणों के बीज उसके जीवन में विद्यमान रहते हैं। दोषों की चर्चा से ये बीज पनपते हैं और औरों के सद्गुणों की चर्चा से आत्मनिर्देश (Auto suggestion) वृत्ति के कारण हमारे गुण बढते हैं। किसी के अवगुण ध्यान में आने पर उसे ठीक करने की अपने सघकार्य में एक विशेष पद्धति है। उनको हम अपने से बडे कार्यकर्ता को बता देते हैं। अवगुणों के निर्मूलन का यथोचित उपाय वह ज्येष्ठ कार्यकर्ता करेगा, इस विश्वास से हम उसको कहकर उस अवगुण-विचार से स्वय को मुक्त कर लेते हैं।

प्रश्न— हम अपने कार्य के माध्यम से भारत के जनजीवन पर प्रभाव चाहते है, तब हम सत्ताभिलाषा नहीं रखते, यह कहना उचित होगा क्या?

उत्तर— शासन करनेवालों की भ्रष्टता रोकनेवाली शक्ति केवल सुसगठित, शुद्ध राष्ट्रभक्ति से ओतप्रोत लोकशक्ति ही रह सकती है। वही नियामक है। पुराने समय जो धर्म में था, उसका ही प्रकट रूप सघ है। हमें सत्ताभिलाषा नहीं है। सपूर्ण राष्ट्रजीवन सुखी, समृद्ध करने की हमारी इच्छा है। राजनैतिक स्पर्धा में एक गुट बनाकर झगडे करने के लिए हमारा कार्य नहीं है। निग्रह–अनुग्रहक्षम प्रबल लोकशक्ति की निर्मिति हमारा कार्य है।

रोज बदलते अधिष्ठान पर सघ की नींव नहीं है। हिंदू जीवन को परिपूर्ण करने हेतु जो भी कष्ट सहन करने पड़ेंगे, सहेंगे। निर्भयता से कार्य करते रहेंगे। मुझे विश्वास है कि सघकार्य हर घर तक पहुँचेगा। भगवान से मेरी प्रार्थना है कि हमारे सभी विरोधियों को दीर्घ आयुरारोग्य प्रदान करे। वे भी एक दिन हमारे सहकारी बनेंगे। रावण की मृत्यु के पश्चात् उसके शरीर से निकली आत्मज्योति रामचैतन्य से एकरूप हो गई थी। राम के हाथों मुक्ति का भाग्य रावण को मिला। हमारा भी वैसा ही निश्चय है। सपूर्ण हिंदू–समाज को हम इस सगठन में समा लेंगे। आत्मविस्मृति के परिणाम भारतीय जीवन पर से स्वप्रयत्न से हटा देंगे।

सघ और समाज एकरूप होंगे, जैसे दूध में शक्कर। दूध में घुल जाने का बाद शक्कर का अस्तित्व नहीं रहता, पर दूध का हर बिंदु शक्कर सा मधुर हो जाता है। सृष्टि के हर कण में चैतन्य भरा है पर उसे अलग–अलग नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनमें भेद रहता ही नहीं। हमें न किसी से स्पर्धा करनी है, न किसी से द्वेष है। हमारा आदर्श तो विष्णुगुप्त चाणक्य का है जिसने सिकदर को परास्त कर, चद्रगुप्त का साम्राज्य प्रस्थापित कर एक कपर्दिक (पैसे) की भी अभिलाषा न रखते हुए हिमालय में प्रयाण किया था। हमारा आदर्श तो शृंगेरी मठ के विद्यारण्य स्वामी है, जिन्होंने विजयनगर की स्थापना के पश्चात् एक पर्णकुटि में जीवनयापन किया। लोभ–लालसा हमें स्पर्श तक नहीं कर सकती। स्वयसेवकों को आत्मीयता की, प्रेम की उपासना करनी चाहिए। भगवाध्वज की अदृश्य यज्ञशिखा में स्वय आहुति बनकर यह कार्य करना है। मान–सम्मान की अपेक्षा नहीं, शिखर पर विराजमान होने की आकाक्षा नहीं, हृदयसिंहासन पर भारतमाता को स्थापित कर इस राष्ट्रमंदिर की नींव का पत्थर बनने की आकाक्षा मात्र हम रखते हैं। मन की क्षुद्र भावनाओं को त्यागकर, ईश्वर पर सपूर्ण निष्ठा रखकर इस महान कार्य में सभी अविलब जुटें— यही अपेक्षा है।

ऌ ऌ ऌ

८ प्रार्थना-प्रशिक्षण

क्या हम एक नियमित कार्यक्रम के रूप मे प्रार्थना की चर्चा करते हैं? यह आवश्यक है। केवल शिविरों या शिक्षा-वर्गों में किसी समय उसकी चर्चा कर लेने मात्र से काम नहीं चलेगा। वह नित्य का विषय बनना चाहिए। प्रत्येक के अत करण में यह बात दृढतापूर्वक स्थापित करनी होगी कि अपने कार्य का आधार मातृभूमि के प्रति समर्पण भाव ही है। इन सब बातों का हम योग्य विचार करें, और तदनुसार व्यवहार भी करे।

प्रत्येक सप्ताह में एक बार शाखा का काय होने के पश्चात् कुछ समय के लिए एक साथ बैठकर अथवा शाखा बडी हो तो गणश बैठकर एक-एक स्वयसेवक के द्वारा प्रार्थना का उच्चारण कराते हुए, प्रत्येक को शुद्ध प्रार्थना याद कराने का प्रयत्न हम कर सकते हैं।

अपनी प्रार्थना, सघ के कार्य का सपूर्ण विचार थोडे शब्दों में सबके सामने रखनेवाली है। उसमें निहित पूर्ण भाव यहाँ बैठे हुए स्वयसेवक प्रकट कर सकेंगे क्या? मे किसी की परीक्षा नहीं लेता, क्योकि परीक्षा तो प्रत्यक्ष कार्यक्षेत्र मे होती है। परतु यदि हम सब कार्यकर्ता प्रार्थना का विवरण करना नहीं जानते, तो स्वयसेवकों को उसका बोध कैसे होगा? इसलिए प्रार्थना का शब्दार्थ और भावार्थ सबको विदित होना चाहिए।

प्रार्थना माने सामूहिक

हमे अपने क्षेत्र की किसी न किसी शाखा पर जाकर दैनदिन प्राथना करनी चाहिए। कई लोग शाखा के समय ताश खेलते हैं या बच्चों के साथ खेलते बैठते हैं। लोगो के मन में राजनीति की गरमागरम चचा के बारे में भी बहुत रुचि रहती हे। कार्य कितना करते है पता नहीं, परतु चचा लबी करते है। इस कारण अपने कार्य की ओर बहुत दुर्लक्ष्य होता है।

एक बार विश्व हिंदू परिषद् के कार्यक्रम में मैं गया था। कार्यक्रम इतना लबा होता चला जाता था कि समाप्त होने का नाम ही नहीं। तब साय-शाखा का समय होते ही शाखा के लिये निकल पडता था। मैंने उन्हें बता दिया था कि प्रार्थना के समय मैं कार्यक्रम में नहीं रह सकता।

९ प्रार्थना का अन्वयार्थ

(यह अन्वयार्थ अंग्रेजी में श्रीगुरुजी द्वारा लिखा गया था)

हे प्यार करनेवाली मातृभूमि! मैं तुझे सदा नमस्कार करता हूँ। हे हिंदूभूमि! तूने मेरा सुख से पालन-पोषण किया है। हे महामंगलमयी पुण्यभूमि! तेरे ही कार्य में मेरा यह शरीर अर्पण हो। मैं तुझे बारबार नमस्कार करता हूँ।

हे सर्वशक्तिशाली परमेश्वर! हम हिंदूराष्ट्र के सुपुत्र तुझे आदरसहित प्रणाम करते हैं। तेरे ही कार्य के लिए हमने अपनी कमर कसी है। उसकी पूर्ति के लिए हमें अपना शुभाशीर्वाद दे। हे प्रभु! हमें ऐसी शक्ति दे, जिसे विश्व में कभी कोई चुनौती न दे सके, ऐसा शुद्ध चारित्र्य दे, जिसके समक्ष संपूर्ण विश्व नतमस्तक हो जाए और ऐसा ज्ञान दे कि स्वयं के द्वारा स्वीकृत किया गया यह कंटकाकीर्ण मार्ग सुगम हो जाए।

उग्र वीरव्रती की भावना हममें उत्स्फूर्त होती रहे जो उच्चतम आध्यात्मिक सुख एवं महानतम ऐहिक समृद्धि प्राप्त करने का एकमेव एवं श्रेष्ठतम साधन है। तीव्र एवं अखंड ध्येयनिष्ठा हमारे अंतःकरणों में सदैव जागती रहे। तेरी कृपा से हमारी विजयशालिनी संगठित कार्यशक्ति हमारे धर्म का संरक्षण कर इस राष्ट्र को वैभव के उच्चतम शिखर पर पहुँचाने में समर्थ हो।

।। भारत माता की जय।।

हमारे शास्त्रों का सार यही रहा है कि 'शक्ति ही जीवन है, दुर्बलता मृत्यु है।'

— श्री गुरुजी

८ प्रार्थना-प्रशिक्षण

क्या हम एक नियमित कार्यक्रम के रूप मे प्रार्थना की चर्चा करते हैं? यह आवश्यक है। केवल शिविरों या शिक्षा-वर्गों में किसी समय उसकी चर्चा कर लेने मात्र से काम नहीं चलेगा। वह नित्य का विषय बनना चाहिए। प्रत्येक के अत करण में यह बात दृढतापूर्वक स्थापित करनी होगी कि अपने कार्य का आधार मातृभूमि के प्रति समर्पण भाव ही है। इन सब बातों का हम योग्य विचार करें, और तदनुसार व्यवहार भी करें।

प्रत्येक सप्ताह में एक बार शाखा का कार्य होने के पश्चात् कुछ समय के लिए एक साथ बैठकर अथवा शाखा बडी हो तो गणश बैठकर एक-एक स्वयसेवक के द्वारा प्रार्थना का उच्चारण कराते हुए, प्रत्येक को शुद्ध प्रार्थना याद कराने का प्रयत्न हम कर सकते हैं।

अपनी प्रार्थना, सघ के कार्य का सपूर्ण विचार थोडे शब्दों में सबके सामने रखनेवाली है। उसमें निहित पूर्ण भाव यहाँ बैठे हुए स्वयसेवक प्रकट कर सकेंगे क्या? मै किसी की परीक्षा नहीं लेता, क्योकि परीक्षा तो प्रत्यक्ष कायक्षेत्र में होती है। परतु यदि हम सब कार्यकर्ता प्रार्थना का विवरण करना नहीं जानते, तो स्वयसेवकों को उसका बोध कैसे होगा? इसलिए प्रार्थना का शब्दार्थ और भावार्थ सबको विदित होना चाहिए।

प्रार्थना माने सामूहिक

हमें अपने क्षेत्र की किसी न किसी शाखा पर जाकर दैनदिन प्रार्थना करनी चाहिए। कई लोग शाखा के समय ताश खेलते है या बच्चो के साथ खेलते बैठते है। लोगों के मन में राजनीति की गरमागरम चर्चा के बारे में भी बहुत रुचि रहती है। कार्य कितना करते हैं पता नहीं, परतु चर्चा लबी करते हैं। इस कारण अपने कार्य की ओर बहुत दुर्लक्ष्य होता है।

एक बार विश्व हिंदू परिषद् के कार्यक्रम मे मै गया था। कार्यक्रम इतना लबा होता चला जाता था कि समाप्त होने का नाम ही नहीं। तब साय-शाखा का समय होते ही शाखा के लिये निकल पडता था। मैंने उन्हें बता दिया था कि प्रार्थना के समय मैं कार्यक्रम में नहीं रह सकता।

६ प्रार्थना का अन्वयार्थ

(यह अन्वयार्थ अंग्रेजी में श्रीगुरुजी द्वारा लिखा गया था)

हे प्यार करनेवाली मातृभूमि! मैं तुझे सदा नमस्कार करता हूँ। हे हिंदूभूमि! तूने मेरा सुख से पालन-पोषण किया है। हे महामंगलमयी पुण्यभूमि! तेरे ही कार्य में मेरा यह शरीर अर्पण हो। मैं तुझे बारबार नमस्कार करता हूँ।

हे सर्वशक्तिशाली परमेश्वर! हम हिंदूराष्ट्र के सुपुत्र तुझे आदरसहित प्रणाम करते हैं। तेरे ही कार्य के लिए हमने अपनी कमर कसी है। उसकी पूर्ति के लिए हमें अपना शुभाशीर्वाद दे। हे प्रभु! हमें ऐसी शक्ति दे, जिसे विश्व में कभी कोई चुनौती न दे सके, ऐसा शुद्ध चारित्र्य दे, जिसके समक्ष संपूर्ण विश्व नतमस्तक हो जाए और ऐसा ज्ञान दे कि स्वयं के द्वारा स्वीकृत किया गया यह कंटकाकीर्ण मार्ग सुगम हो जाए।

उग्र वीरव्रती की भावना हममें उत्स्फूर्त होती रहे, जो उच्चतम आध्यात्मिक सुख एवं महानतम ऐहिक समृद्धि प्राप्त करने का एकमेव एवं श्रेष्ठतम साधन है। तीव्र एवं अखंड ध्येयनिष्ठा हमारे अंतःकरणों में सदैव जागती रहे। तेरी कृपा से हमारी विजयशालिनी संगठित कार्यशक्ति हमारे धर्म का संरक्षण कर इस राष्ट्र को वैभव के उच्चतम शिखर पर पहुँचाने में समर्थ हो।

।। भारत माता की जय।।

ॐ ॐ ॐ

हमारे शास्त्रों का सार यही रहा है कि शक्ति ही जीवन है दुर्बलता मृत्यु है।
— श्री गुरुजी

पाथेय

श्री गुरुजी बैठको मे किस सहजता व कुशलता से छोटे-छोटे प्रसगो से कार्यकर्ताओ के भ्रम का निरसन तथा निराकरण करने के लिए विषय को स्पष्ट किया करते थे व उचित दिशा देते थे, उसके कुछ नमूने यहाँ उद्धृत है।

---

(१) दोष दर्शाने की कुशलता

एर्नाकुलम सघ शाखा के सार्वजनिक कार्यक्रम में श्री गुरुजी उपस्थित थे। इस कार्यक्रम में शारीरिक कार्यक्रमों का प्रात्यक्षिक हुआ था। परन्तु प्रात्यक्षिक ठीक नहीं हो पाए थे। दूसरे दिन उपशाखाओं के शिक्षक एव मुख्य शिक्षकों की बैठक में प्रात्यक्षिकों के बारे में पूछताछ चल रही थी। जबकि वृत्तपत्रों में सघ के कार्यक्रम में हुए उत्कृष्ट शारीरिक कार्यक्रमों का वृत्त बडे शीर्षकों के साथ प्रकाशित हुआ था।

श्री गुरुजी कल के कार्यक्रम में मुख्यशिक्षक कौन था?

एक कार्यकर्ता जी, मैं था।

श्री गुरुजी कल के शारीरिक कार्यक्रम कैसे हुए?

कार्यकर्ता प्रेक्षकों को तो बहुत अच्छे लगे।

श्री गुरुजी क्या आपने उनसे पूछा?

कार्यकर्ता जी, हाँ।

श्री गुरुजी क्या कहा उन्होंने?

कार्यकर्ता सैनिक कार्यक्रमों से भी उत्कृष्ट हुए। (एक उत्साही स्वयसेवक ने कहा– आज के वृत्त-पत्र में ऐसा ही प्रकाशित हुआ है।)

श्री गुरुजी हाँ। तो बात ऐसी है कि आपका नैपुण्य दूसरों के अज्ञान पर ही अवलबित है, ऐसा ही कहना चाहते हो ना?

कार्यकर्ता (कुछ सभ्रमित होकर) जी हाँ।

यह उत्तर सुनकर हँसी के फव्वारे फूट पडे। साथ ही सोचने की सही दिशा भी प्राप्त हुई और भूल ध्यान में आ गई।

(२) परिस्थितिनिरपेक्ष देशभक्ति

प्रश्न– भारत स्वाधीन होने से पूर्व सबके मन में पारतत्र्य से मुक्त होने की भावना होने के कारण देशभक्ति की भावना जगाना सुलभ था। स्वातत्र्य-प्राप्ति के पश्चात् देशभक्ति की भावना तो स्वाभाविक रूप से बढेगी ही, तब क्या इसके लिए अलग से प्रयास करने की आवश्यकता है?

उत्तर– अपने सामाजिक जीवन में प्रत्येक के हृदय में शुद्ध देशभक्ति का पक्का आधार चाहिए। देशभक्ति की भावना स्वातत्र्यपूर्व काल में भी क्षीण थी और आज भी है। बडों-बडों के जीवन में यह क्षीण है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। कश्मीर पर शत्रु ने आक्रमण किया है और हम सकट का हल बातचीत करके निकालना चाहते हैं। अब आक्रमण करनेवालों के नेता और कश्मीर जिस राष्ट्र का अग है, उस भारत के नेता आपस में बैठकर तय कर रहे हैं, विचार-विमर्श कर रहे हैं। क्या शत्रु के साथ बैठकर कश्मीर सकट का हल निकालना सभव होगा? क्या बातचीत से आक्रमण वृत्ति नष्ट होगी ? चोर घर में घुस जाए और फिर मालिक से कहे कि हम धनदौलत के बारे में सार्वमत लेंगे।

यह बातचीत हम इसलिए करते हैं, क्योंकि कश्मीर और अमरनाथ हमारे हैं, यह भाव क्षीण है। जनमत का सवाल उत्पन्न ही क्यों होता है? इसमें कौन सी बुद्धिमानी अथवा ईमानदारी है, यह समझना कठिन है। आक्रामक को सभी प्रकार से परास्त करना ही एकमात्र उपाय होता है। फिर भी अपने नेता सौजन्यपूर्ण बातचीत से समस्या सुलझाने का प्रयास क्यों कर रहे हैं? इसका अर्थ यह हुआ मानो हम यह मानते हैं कि शत्रु को आक्रमण करने का अधिकार है। ऐसा लगता है कि कश्मीर का कुछ हिस्सा देने के बारे में सोचा जा रहा है। प्रधानमत्री के भाषण आपने पढे होंगे। उनका कहना है कि देश केवल जमीन का एक टुकडा है, राष्ट्रभक्ति आदि भावनाएँ निरुपयोगी हैं।

ऐसी स्थिति में अपने देश के लिए समर्पण करने की प्रेरणा देनेवाली राष्ट्रभक्ति की भावना हमें प्रत्येक के हृदय में जगानी होगी, प्रखर करनी होगी।

(३) संघ समाज से अलग नहीं

जोधपुर में २०-२५ परिवारों के एक गणेशोत्सव में मैं गया था। उनमें से कुछ स्वयंसेवक थे, उनके आग्रह के कारण ही गया था। सब लोगों से परिचय कराते समय एक व्यक्ति की तरफ इशारा करते हुए उस संस्था के प्रमुख ने कहा – 'ये श्रीमान् आपके आर एस एस के हैं।' मैंने कहा– 'आर एस एस मेरा नहीं है, मैं उसका हूँ। व्यापक का अंश छोटी चीज होती है। ईश्वर का मैं हूँ, मेरा ईश्वर नहीं। तरंग समुद्र की होती है। तरंग का समुद्र कहना ठीक नहीं होगा।'

संस्था के बारे में इसका या उसका कहने से वह पंथ बन जाती है। इतने सब पंथ इसी कारण हुए हैं। संघ इस भावना से दूर है। वह समाज से अलग नहीं है। 'आपका संघ' कहने का अर्थ यह हुआ कि यह मेरा है, आपका नहीं है। हम सभी संघ के हैं। बस इतना ही कि कोई पास है, कोई थोडी दूरी पर, परंतु हैं सभी संघ के।

(४) जीवन में चरितार्थ करें

बैठक में श्री गुरुजी ने एक कार्यकर्ता से पूछा– 'कल मैंने स्वयंसेवकों के सम्मुख संघकार्य के बारे में जो कुछ बताया, क्या आप समझ गए?'

उस कार्यकर्ता ने 'हाँ' कहा। तब उन्होंने उस कार्यकर्ता से कहा 'अपने यहाँ समझने का अर्थ, उन विचारों को जीवन में चरितार्थ करने से होता है। केवल शब्दार्थ मालूम होने से समझना पूरा नहीं होता। अपने जीवन के व्यवहार में उन विचारों का साक्षात्कार करने से उसे सच्चे अर्थ में समझते हैं। पाश्चात्य पंडितों की दृष्टि में शब्दज्ञान ही 'समझना' है। अपने यहाँ रोम-रोम में ज्ञान व्याप्त होने को 'समझना' कहा जाता है।

श्री रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि रुपए पैसे को छूना तक नहीं चाहिए। पैसे का स्पर्श होने पर मुझे असह्य वेदना होती है। उनके इस कथन की सत्यता देखने का विचार श्री विवेकानंद जी के मन में आया। उन्होंने श्री रामकृष्ण के आसन के नीचे चुपके से एक रुपए का सिक्का रख दिया। जैसे ही उसपर बैठने के लिए श्री रामकृष्ण ने पैर रखा, उनको बिजली जैसा झटका लगा। वे वहाँ से हट गए और अपने अन्य शिष्यों को बुलाकर वह आसन ठीक से देखने को कहा। आसन उठाते ही वह रुपया

दिखाई पडा। रुपए-पैसों के पूर्णतया त्याग का यह विचार श्री रामकृष्ण के रोम-रोम में व्याप्त था। ऐसे ही प्रत्येक विचार को जीवन में चरितार्थ करनेवाले अपने यहाँ के महापुरूष थे। इसीलिये उनके जीवन की तपस्या के वल से प्रकट हुए विचारों को दुनिया ने शिरोधार्य माना।

(५) श्रद्धा से अवगुण कम होते हैं

श्री गुरुजी द्वारा यह विचार रखने पर कि 'किसी श्रेष्ठ लक्ष्य प्राप्ति का प्रयास श्रद्धापूर्वक करने से व्यक्तिगत अवगुण भी धीरे-धीरे नि शेष होते हैं और सद्गुण बढते हैं,' एक कार्यकर्ता ने पूछा, 'क्या केवल श्रद्धा के कारण अवगुण क्रमश कम होते हैं?'

उन्होंने उत्तर देते हुए कहा, 'हॉ, ऐसा ही होता है। भगवान रामकृष्ण परमहस के जीवन का एक प्रसग है। गिरीशचद्र घोष बगाल के सुप्रसिद्ध नाटककार हुए हैं। वे जगज्जननी काली माता के भक्त थे। रामकृष्ण परमहस भी कालीभक्त थे, इसीलिये गिरीश बावू उनको बहुत मानते थे। वे दक्षिणेश्वर आकर रामकृष्ण परमहस के साथ वार्तालाप किया करते थे। गिरीश बाबू को शराब पीने का बुरा व्यसन था। रामकृष्ण परमहस को उनका यह दोप ज्ञात था। वे यह भी जानते थे कि उनकी काली माता पर असीम श्रद्धा है।

एक बार रामकृष्ण परमहस ने उनसे अकेले में कहा, 'गिरीश बाबू, माँ पर आपकी असाधारण श्रद्धा है, यह आपका पूर्व सुकृत है। खाते-पीते समय माँ को भोग चढाने के पूर्व स्वय खाना-पीना उचित नहीं है। भोग चढाकर ही खाना-पीना चाहिए। शराव पीते समय भी प्रथम भोग चढाया करो।' गिरीश बाबू ने उनकी बात मान ली।

दूसरे दिन अपनी आदत के अनुसार गिरीश बाबू शराब पीने को उद्यत हुए। शराब गिलास में ली और मुँह को लगानेवाले थे कि उनको रामकृष्ण परमहस के वचन की याद आई कि खाने-पीने के पूर्व माँ को भोग चढाना चाहिए। गिलास टेबल पर रखा और सोचने लगे– 'क्या जगज्जननी को मैं शराब का भोग चढाऊँगा? छि। यह मैं नहीं करूँगा।' ऐसा कहा जाता है कि उस रात वे वैसे ही टेबल पर बैठे रहे। गिलास उठाते थे, परतु माँ का स्मरण होते ही गिलास रख देते। बस, उनकी शराब पीने की आदत छूट गई।

हृदय में श्रद्धा रही तो लक्ष्यप्राप्ति में जो अवगुण बाधा स्वरूप खडे

होते हैं, उससे मनुष्य मुक्ति पा सकता है। श्रेष्ठ, उदात्त ध्येयप्राप्ति की लगन निर्माण करना यही आवश्यक है। यह कार्य सघ कर रहा है। हिंदू राष्ट्र के प्रति श्रद्धा जग जाने पर, यह हिंदू समाज मेरा आराध्य समाज-पुरुष है, परमेश्वर है, यह श्रद्धा स्थिर होगी। तब मैं इससे बेईमानी नहीं करूँगा, यह भाव भी प्रखर होगा और देशभक्ति में बाधा निर्माण करनेवाले दुर्गुण अवश्य नष्ट हो जाएँगे।

(६) कार्य करने मे ही आनद

प्रचारक के रूप में कार्य करने के लिए निकलने वाले कार्यकर्ताओं की बैठक चल रही थी। एक स्वयसेवक से श्री गुरुजी ने पूछा– 'क्या सघ के लिए आप अपना सर्वस्व दे सकते हैं? प्रश्न का उत्तर 'हाँ' में मिला। अगला प्रश्न किया – 'अपना आनद ओर सुख भी?' इसका उत्तर भी हाँ में मिला। इसपर उन्होंने पूछा – 'तब आप निरानद ओर दु खी होंगे क्या?' उत्तर आया– 'नहीं'। इसपर उन्होंने कहा– 'इसका अर्थ होता है कि आप अपना आनद और सुख छोड नहीं सकते।' अब क्या उत्तर दिया जाए, यह उस कार्यकर्ता को सूझता नहीं था। इसलिए वह मौन खडा रहा। तब उन्होंने स्वय बताया कि 'आपका कहना सच है। अपने सुख-आनद का त्याग करना किसी के लिए भी सभव नहीं है। अपना कार्य करते समय हम सुख व आनद अनुभव करें। किसी कारण मन में यदि सुख और आनद नहीं रहा तो अपनी पूरी ताकत से कार्य करना हमें अधिक समय तक सभव नहीं होगा।'

(७) अक्षय ध्येयनिष्ठा व मधुर व्यवहार

निचूर के रामकृष्ण आश्रम में आयोजित सघ-कार्यकर्ताओं की बैठक में श्री गुरुजी बोल रहे थे। उन्होंने कहा– 'अपने कार्यकर्ता की ध्येयनिष्ठा अक्षय चाहिए। साथ ही उसका व्यवहार मधुर एव सौजन्यपूर्ण होना चाहिए। उसको मिलने की सबकी इच्छा स्वाभाविकत निर्माण हो, ऐसा आत्मीयतापूर्ण व्यवहार होना चाहिए। कोयले और हीरे का दृष्टात बडा अच्छा है। दोनों एक ही मूल तत्त्व के दो स्वरूप हैं। कोयला जलने से उष्णता और प्रकाश मिलता है, परतु उससे दूर रहने की प्रवृति उत्पन्न होती है। हीरा भी चमकता है। उसके चमकते हुए विविध पहलू हमारे मन में आकर्षण निर्माण करते हैं। हीरा देखकर उसे पाने की इच्छा अपने मन मे आती है।

प्रखर ध्येयनिष्ठ एवम् उग्र विचारों के नेताओं का सहवास मैंने अनुभव किया है। सर्वसामान्य मनुष्य को मिलने के लिए उनके पास समय ही नहीं रहता था और यदि कुछ समय मिला भी तो उनके पास पहुँचना असभव रहता था। लेकिन अपने सघ-निर्माता डाक्टरजी का व्यवहार भिन्न था। उनसे कोई भी मिल सकता था और मिलने के लिए उनके पास सदैव समय उपलब्ध रहता था। इस प्रकार मधुर, आकर्षक और आत्मीय व्यवहार रहते हुए भी उनके जैसी प्रखर ध्येयनिष्ठा इतरत्र क्वचित ही देखने को मिलती है। वे ही अपना आदर्श हैं। अपना आदर्श हीरा है, कोयला कदापि नहीं हो सकता।

(८) तात्कालिक प्रेरणा

श्री गुरुजी शाखाओं की जानकारी पूछ रहे थे और कार्यकर्ता यथोचित उत्तर दे रहा था। एक कार्यकर्ता ने कहा, 'चुनाव के पूर्व शाखा में स्वयसेवकों की सख्या अच्छी रहती थी। चुनाव में कुछ स्वयसेवकों ने परिश्रम भी काफी किया, परतु चुनाव के पश्चात् अब वे शाखा में नहीं आते।'

श्री गुरुजी ने कहा, 'कुछ स्वयसेवकों को चुनाव के दिनों में काम करने की इच्छा हो जाती है। वह स्वाभाविक भी है, परतु चुनाव समाप्त हो जाने के पश्चात् उन्हें फिर से अपने कार्य में जुट जाना चाहिए।

कार्यकर्ता ने कहा, 'राजनीति गदी होती है। यद्यपि स्वयसेवक अच्छे हैं, परतु अब उनकी रुचि सघकार्य में कम हुई लगती है।'

श्री गुरुजी ने कहा, 'धान की बुआई करते समय हाथ-पैर कीचड से गंदे हो जाते हैं, परतु काम हो जाने के पश्चात् वह वैसा ही गदा नहीं रहता। अपने हाथ-पैर धोकर, स्वच्छ होकर अपने दैनदिन जीवन के कार्य में लग जाता है। उसी प्रकार अपने जीवन का प्रधान कार्य सघकार्य है। उत्तम शाखा चलाकर सद्गुणी, अनुशासित, देश की भलाई के लिए समर्पित कार्यकर्ता तैयार करना अपना जीवन-कार्य है। चुनाव के दिनों में किए हुए काम तात्कालिक ही मानने चाहिए और चुनाव के पश्चात् अपने काम में जुट जाना चाहिए।

(९) चिरप्रेरणा

निरतर कार्य करने की चिरप्रेरणा यह हिंदू राष्ट्र है, यह ज्ञान होने मात्र से प्राप्त नहीं होती। केवल बुद्धि से प्राप्त होनेवाली यह बात नहीं है।

भी पकडो। तब पीटर ने कहा, 'आप मुझे क्यों सता रहे हो। मैं ईसा को नहीं जानता।

बदी ईसा के खाने-पीने की कुछ व्यवस्था करने के विचार से पीटर उनकी कोठरी के पास टहल रहा था। यह देखकर सिपाही ने पूछा, 'क्यों रे, तू भी इसका साथी है?' तब उसने 'ना' कहा। फिर सुबह के पूर्व एक बार उसने 'ईसा से संबध नहीं' कहा, तभी मुर्गा बोल उठा। पीटर को पश्चाताप हुआ। जैसा ईसा ने कहा था, वैसा ही हुआ।

मैं एकनिष्ठ स्वयंसेवक हूँ, यह अहंकार न हो। मनुष्य का स्खलन हो सकता है, यह ध्यान में रखकर विनम्र भाव धारण करके अपनी दैनंदिन शाखा में जाना चाहिए। भगवान की कृपा से मैं काम कर सकूँगा, ऐसा दृढ विश्वास धारण कर अपना काम निष्ठापूर्वक करना चाहिए।

(११) हम सब मे, सब हम मे

श्री गुरुजी के द्वारा दिए गए दृष्टांत गूढार्थ लिए होते थे। राजस्थान की एक बैठक में उन्होंने कहा, 'अपने कार्य का स्वरूप ऐसा है कि हम सबमें हैं और सब हम में। अपने स्वयंसेवक समाज जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रभावी रूप से कार्य करते रहें और उनके जीवन में संघ विचार आधारभूत रहे। अपना कार्य भगवान का कार्य है। भगवान सब सृष्टि में है और सब सृष्टि भगवान में है। इन दोनों बातों का ठीक से सामंजस्य हो।

(१२) विनम्रता का गुण

अन्यान्य क्षेत्र में कार्य करते समय जब मालाएँ गले में पडती हैं, जय-जयकार को सुनने मिलता है, तब कार्यकर्ता का सीना फूलता है और उसे लगता है कि 'मैं लीडर बन गया'। मन को लुभानेवाले अहंकार का यह प्राथमिक स्वरूप है। अपना आग्रह है कि अपने-अपने कार्यक्षेत्र में भले ही लीडर बनो, सार्वजनिक जीवन में बडे अवश्य बनो, परंतु इस संगठन में एक विनम्र स्वयंसेवक के नाते सदैव अनुशासन में रहो। अपना व्यवहार अनुशासनहीन रहा, तो वह हमें राक्षस बनाएगा। कंस और जरासंध इसी कारण राक्षस प्रवृत्ति के बने। स्वस्थ समाज जीवन का अनुशासन उन्होंने स्वीकार नहीं किया था। सुसंगठित समाज जीवन में अनुशासन याने अपने कर्तव्य का बोध दृढ बनाकर उसका नित्य स्मरण कराने के लिये संघशाखा में सब स्वयंसेवकों के साथ कंधे से कंधा लगाकर खडे रहना और अपनी दैनंदिन प्रार्थना करना बहुत आवश्यक है।

श्रद्धा और विश्वासपूर्वक हिंदू राष्ट्र की अनुभूति अपने समाज के प्रत्येक मनुष्य को जब तक नहीं होती, तब तक यह कार्य बढाता जाऊँगा–ऐसा विचार अपने मन में स्थिर होना चाहिए। मेरे जीवन का यह प्रमुख कार्य है, अन्य सब– मेरा परिवार, व्यवसाय आदि गौण हैं। वे चलते रहते हैं। यह निश्चल भाव अपने मन में चाहिए। खाना-पीना ईश्वर सबको देता है। अच्छे काम करनेवाले किसी को भगवान भूखा नहीं रहने देगा, इस विश्वास से काम करो। फिर अनुभव आएगा कि चाहे जितना सघकार्य कर सकेंगे। काय करते रहो। कर्तव्यपूर्ति में शाति, सुख, सब कुछ है। हृदय का यह भाव, चिंतन-मनन से दृढ होता है। श्रेष्ठ लक्ष्य के विचार में एक धुन लेकर कार्य होता है और इसी से निरंतर प्रेरणा मिलती रहती है।

सघ का कार्य ईश्वरीय कार्य है। उसको करते हुए मस्त रहना चाहिए। अन्य बातों की चिंता न करो। छाया के पीछे दौडे तो वह दूर जाती है। मुँह फेर कर चलने पर वह पीछे आती है। वैसा ही धन-दौलत का है। जिसको चाहिए उसको नहीं मिलती। जो निश्चय से सघकार्य करता है उसको किसी प्रकार की चिंता नहीं रहती।

(१०) अहंकार न हो

अन्यान्य क्षेत्र में काम करनेवाले कुछ स्वयसेवकों को लगता है कि अपने हृदय पर हुए सघ के सस्कार पक्के हो चुके हैं। अब अपने शील-चारित्र्य में गिरावट आना संभव नहीं है। इस प्रकार के भाव निर्माण होते हैं उसके परिणामस्वरूप उनका अपने दैनिक कार्य से संबंध नहीं रहता। यह अहंकार का ही एक मोहक रूप है। ऐसा अहंकार किसी स्वयंसेवक को नहीं करना चाहिए।

पीटर, ईसा मसीह का निष्ठावान शिष्य था परंतु मन में इस बात के कारण कि मैं ईसा का सबसे अधिक निष्ठावान सेवक हूँ, उसने ईसा को कहा 'प्रभु! चाहे शिष्य आपके पास रहें या आपको छोड़ जाएँ परंतु मैं सदैव आपके साथ रहूँगा।' ईसा ने उसे सौम्य गंभीर वाणी से कहा 'पीटर अहंकार मत कर। कल सुबह मुर्गा बोलने से पूर्व तू तीन बार कहेगा कि मैं आपको नहीं जानता।'

हुआ भी वैसा ही। सत्ता के सिपाहियों द्वारा ईसा को पकड़ने के पश्चात उसके शिष्य तो इधर-उधर हो गए परंतु पीटर पास ही था। [illegible] और [illegible] कर कहा कि यह ईसा के साथ [illegible]

भी पकडो। तव पीटर ने कहा, 'आप मुझे क्यों सता रहे हो। मैं ईसा को नहीं जानता।

वदी ईसा के खाने-पीने की कुछ व्यवस्था करने के विचार से पीटर उनकी कोठरी के पास टहल रहा था। यह देखकर सिपाही ने पूछा, 'क्यों रे, तू भी इसका साथी है?' तव उसने 'ना' कहा। फिर सुवह के पूर्व एक वार उसने 'ईसा से सवध नहीं' कहा, तभी मुर्गा बोल उठा। पीटर को पश्चाताप हुआ। जैसा ईसा ने कहा था, वैसा ही हुआ।

मैं एकनिष्ठ स्वयसेवक हूँ, यह अहकार न हो। मनुष्य का स्खलन हो सकता है, यह ध्यान में रखकर विनम्र भाव धारण करके अपनी दैनदिन शाखा में जाना चाहिए। भगवान की कृपा से मैं काम कर सकूँगा, ऐसा दृढ विश्वास धारण कर अपना काम निष्ठापूर्वक करना चाहिए।

(११) हम सब मे, सब हम मे

श्री गुरुजी के द्वारा दिए गए दृष्टात गूढार्थ लिए होते थे। राजस्थान की एक बैठक में उन्होंने कहा, 'अपने कार्य का स्वरूप ऐसा है कि हम सबमें हैं और सब हम में। अपने स्वयसेवक समाज जीवन के सभी क्षेत्रों में प्रभावी रूप से कार्य करते रहें और उनके जीवन में सघ विचार आधारभूत रहे। अपना कार्य भगवान का कार्य है। भगवान सब सृष्टि में है और सब सृष्टि भगवान में है। इन दोनों वातों का ठीक से सामजस्य हो।

(१२) विनम्रता का गुण

अन्यान्य क्षेत्र में कार्य करते समय जव मालाएँ गले में पडती हैं, जय-जयकार को सुनने मिलता है, तब कार्यकर्ता का सीना फूलता है ओर उसे लगता है कि 'मैं लीडर बन गया'। मन को लुभानेवाले अहकार का यह प्राथमिक स्वरूप है। अपना आग्रह है कि अपने-अपने कार्यक्षेत्र में भले ही लीडर बनो, सार्वजनिक जीवन में वडे अवश्य बनो, परतु इस सगठन में एक विनम्र स्वयसेवक के नाते सदैव अनुशासन में रहो। अपना व्यवहार अनुशासनहीन रहा, तो वह हमें राक्षस बनाएगा। कस और जरासध इसी कारण राक्षस प्रवृत्ति के बने। स्वस्थ समाज जीवन का अनुशासन उन्होंने स्वीकार नहीं किया था। सुसगठित समाज जीवन में अनुशासन याने अपने कर्तव्य का बोध दृढ बनाकर उसका नित्य स्मरण कराने के लिये सघशाखा में सब स्वयसेवकों के साथ कधे से कधा लगाकर खडे रहना और अपनी दैनदिन प्रार्थना करना बहुत आवश्यक है।

(१३) नेतागिरी के चक्कर में न पड़ें

श्री गुरुजी चाहते थे कि संघ के स्वयंसेवक कभी भी मान-सम्मान की थोथी नेतागिरी के चक्कर में न पड़ें। इस बात को उनके हृदयों पर अंकित करने के लिए उन्होंने एक मजेदार चुटकुला सुनाया। वे बोले, 'मैंने एक समाचार-पत्र में पढ़ा है कि एक जगह विवाह था। वर द्वारा वधू को और वधू द्वारा वर को माला पहनाने का समय आया। तभी विवाह समारोह में एक नेताजी का आगमन हुआ। मालाएँ देखते ही उन्होंने अपनी गर्दन सामने की, आदत से लाचार जो थे। अब यह सच है या झूठ, पर मैंने जो पढ़ा, वह आप लोगों को सुनाया।'

(१४) दूसरों के माथे दोष न मढ़ें

एक शाखा के कार्यकर्ता के यह कहने पर कि उसकी शाखा की संख्या २०-२५ रहती है। श्री गुरुजी ने पूछा, 'संख्या कम क्यों रहती है। अधिक होने में क्या कठिनाई है?' उस कार्यकर्ता ने बताया, 'हमारे गाँव में साम्यवाद का वातावरण है। इससे संख्या बढ़ने में बाधा आती है।' श्री गुरुजी ने कहा, 'आपका यह विचार कि साम्यवादी वातावरण बाधा है, मुझे सही नहीं लगता। ऐसी ऊपरी चलनेवाली हवा को हम बाधा न कहें। वह कभी भी बाधा नहीं बनती। यदि हम अपनी शैली से शाखा का कार्य करें, तो ऐसे वातावरण में भी काम में बाधा नहीं आती। लोग बोलते हैं कि आंध्र के कृष्णा जिले में साम्यवादी वातावरण है। परंतु वहाँ अपने स्वयंसेवकों ने घर-घर में अपने स्नेह-संबंध प्रस्थापित करने का कार्य परिश्रमपूर्वक किया। वहाँ कार्य बढ़ा है।'

ऐसा सोचना अपनी ही कल्पना से निर्माण किया भूत है और उससे आप डर रहे हैं। ऐसी भीरुता का विचार करनेवाले ही उनका प्रभाव बढ़ाते हैं। मान लो कि ऐसा वातावरण है, तो अपने पास भी लोगों के हृदय पुलकित करनेवाला प्रभावी तत्त्वज्ञान है। सबको अपनानेवाली शुद्ध आत्मीयता है। हम परिश्रम करेंगे तो हमारा प्रभाव क्यों नहीं होगा? मुख्य कारण यह है कि हम आलसी हैं। परिश्रमपूर्वक अपनी शाखा का कार्य नहीं करते और अपनी इस कमी का दोष साम्यवाद के मत्थे मढ़ते हैं।

(१५) अनुशासन का अर्थ

संघ में अभिप्रेत अनुशासन का अर्थ स्पष्ट करते हुए श्री गुरुजी ने कहा, 'अनुशासन में रहने के लिए बाध्य करनेवाले कई कारण होते हैं। एक

तो जीवन में स्वार्थ के कारण अनुशासन रहता है। सरकारी दफ्तर में मनुष्य स्वार्थ के कारण ही समय की पाबदी स्वीकारता है। रोगमुक्त होने के लिए औषध-योजना और परहेज का पालन स्वार्थ के कारण होता है। सर्वसामान्य मनुष्य अपराध नहीं करता, क्योंकि उसके मन में दड का डर रहता है। फौजी जवान अनुशासन में रहता है, क्योंकि जब वह कोई बहादुरी का काम करता है, तब उसे मान-सम्मान और तरक्की मिलने के स्वार्थ की भावना रहती है और यदि गलती करे तो कठोर दड का भय रहता हे। ईसाई व मुस्लिम जीवन में अच्छा बर्ताव करने पर स्वर्ग मिलने का आश्वासन ईसा व मोहम्मद साहब ने दिया है, परतु गलत व्यवहार करने पर जहन्नुम में जाने का भय भी दिखाया है।

एक और कारण से जीवन में अनुशासन आता है। वह अनुशासन सर्वश्रेष्ठ होता है। किसी श्रेष्ठ लक्ष्य-प्राप्ति की तीव्र इच्छा रहती है, तब उसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य स्वय के जीवन में अनेक बधन स्वेच्छा से स्वीकार करता है। अपने लक्ष्य के विषय में सुस्पष्ट ज्ञान और उसकी प्राप्ति हेतु स्वीकार किए हुए साधन में श्रद्धा होने के कारण यह अनुशासन बाह्य परिस्थिति से टूटता नहीं। सघकार्य करते समय हम इसी प्रकार का अनुशासन चाहते हैं।

(१६) स्वार्थी विचार माया के कारण

श्री गुरुजी— 'प्रत्येक कार्यकर्ता शील-चारित्र्य से परिपूर्ण चाहिए। अपने पथ से विचलित न होनेवाले योगी जैसा उसका जीवन चाहिए। किसी व्यामोह से भ्रष्ट न होनेवाला, किसी भी प्रलोभन से खरीदा न जा सके— ऐसा कार्यकर्ता एकनिष्ठ भक्ति के कारण बनता है। अपने लक्ष्य पर अडिग श्रद्धा और उसकी प्राप्ति हेतु अविरत परिश्रम के कारण उसके मन में अन्य विचार प्रवेश नहीं करते। यदि किसी परिस्थिति के कारण व्यक्तिगत जीवन की चाह कुछ क्षणों के लिए निर्माण हुई तो भी वह स्थायी नहीं बनती और उसका प्रलोभन कार्यकर्ता के मन को लुभा नहीं सकता। अपनी आध्यात्मिक परिभाषा में व्यक्तिगत विचार 'माया' के कारण निर्माण होते हैं और सघकार्य जैसे विशुद्ध राष्ट्रभक्ति से माया और उसके फलस्वरूप निर्माण होनेवाले मोह, प्रलोभन से ऊपर अपना कार्यकर्ता उठ सकता हे ओर समाज का मार्गदर्शन कर सकता है। जब भक्ति प्रवेश करती है, तब माया भाग जाती है। इस भक्ति के बल पर चारित्र्य का निर्माण करो।

(१७) स्पष्ट और सत्य बोले

श्री गुरुजी चाहते थे कि सघ के कार्यकर्ता कार्य करने और बोलने में कोई ढिलाई न वरतें। अत जहाँ भी वे ढीलापन देखते, झट से कोई मीठी चुटकी लेकर उसका ध्यान उस ओर दिला देते। आध्र की एक बैठक में जब एक कार्यकर्ता ने अपनी शाखा की उपस्थिति बताते हुए 'छह से कम'— ऐसा शब्द-प्रयोग किया। तब श्रीगुरुजी ने कहा, 'भाई, छह से कम कहते-कहते हम एक से कम तक भी पहुँच सकते हैं। क्यों भाई, ऐसी कौन-सी प्रभात शाखा है, जहाँ एक से कम उपस्थिति रहती है?'

इसी बैठक में एक ऐसी शाखा की ओर सकेत करते हुए जो केवल हिसाब में ही थी, उन्होंने कहा कि 'तुम कहते हो उपस्थिति नहीं है। मैं कहता हूँ उपस्थिति है, परतु वह है शून्य।' एक प्राध्यापक महोदय की बात बताता हूँ। उन्होंने मेज पर एक गेंद रखते हुए विद्यार्थियों से कहा, 'देखिए, यह गेंद घूम रही है।' तब उनकी बात को काटते हुए एक विद्यार्थी ने कहा, 'महाशय, गेंद तो स्थिर है। घूम नहीं रही।' तब प्राध्यापक महोदय ने कहा, 'वह घूम अवश्य रही है, परतु घूमने का उसका वेग शून्य है।"

(१८) निकट का सपर्क

अपने गट के स्वयसेवकों से असीम स्नेह से मित्रता प्रस्थापित करके ही उनके जीवन में परिवर्तन लाना और उनका मार्गदर्शन करना सभव होता है। उनसे दूर रहकर यह हो नहीं सकता। कोई व्यक्ति ऊँचे मकान पर खडा रहकर, सडक पर चल रहे लोगों को देखे, तो उसे लगेगा कि बहुत से लोग लक्ष्यहीन होकर इधर-उधर घूम रहे हैं। न जाने उनके पाँव कहाँ पडते हैं और वे किधर देखते हैं। इतनी दूर से देखकर उनका मार्गदर्शन करना तो असभव ही है। इसके लिए सहज मित्रता व परिश्रम करना पडेगा। मजे व आराम से सघ का काम करने की कल्पना हो, तो वह भूल है।

(१९) नए स्वयसेवको की भर्ती

यदि हम नए लोगों को नहीं लाएँगे, तो पुराने लोगों को घसीटकर कितने दिन काम कर सकेंगे ? नए आए नहीं, पुराने बद हुए, तो परिणाम क्या होगा?' अपना मित्र परिवार नित्य बढाते हुए नए स्वयसेवक बनाना चाहिए। दायित्व सँभालनेवाले स्वयसेवकों को इस काम में लगना चाहिए।

बात की ओर अपने अधिकारियों को ध्यान देना चाहिए। 'नए लोगों ागे न आने देने वाले अधिकारी बनकर कैसे रह सकेंगे? दूसरे को न आने देना दुर्बलता का लक्षण है। अपने कार्यक्रमों के द्वारा ावक सस्कारित हुए हैं या नहीं, इसका पता उनके साथ बातचीत से लग जाता है। जब चावल पकाते हैं, तब एक दाना देखकर ही पके होने का पता लगा लिया जाता है।

(२०) आत्मीय व्यवहार

पहले-पहल अपना काम शुरू हुआ, तब हिंदू सभा ने इसे अपने ि रूप में देखा। धीरे-धीरे उन्हें सही बात ध्यान में आई। इस बात ुछ लोगों को बुरा भी लगा, परतु बहुत से ऐसे भी थे जिनका सघ थ प्रेम बढता ही गया। लोगों की भावनाओं को धक्का न देते हुए यता के व्यवहार से आकृष्ट कर सघ के विशुद्ध विचारों से परिचित हुए उन्हें अपनी ओर आकर्षित करना चाहिए।

(२१) विजिगीषु कार्य

विभागाधिकारियों की बैठक के कुछ अश —

★ 'अपने पास एक ध्येयवाद है, उसको समझे बिना परिवर्तन सभव नहीं होगा। मानसिक दुर्बलता के कारण ध्येयवाद को लोगों के न रखना और यह समझना कि दुनिया उसको मानने के लिए तैयार यह काम करने का ढग नहीं है।'

★ 'सुरक्षात्मक काम गतिशील नहीं होता। भिन्न कार्यक्रमों के द्वारा स्वयसेवकों को जैसे-तैसे सबध में बनाए रखना रक्षात्मक काम है। करो, आगे बढो। इसका प्रशिक्षण देने के लिए स्वयसेवकों को छुट्टियों ीप के ग्रामों में दो-दो, चार-चार दिन बिताने को कहो।'

★ 'लोगों से मिलो। शाखा दिखाने के लिए लोगों को लाओ। कार्य का परिचय आत्मविश्वास व स्वाभिमान के साथ दो। स्वयसेवक ो छोटे हों, सख्या में कम हों, परतु कट्टर हिंदू चाहिए। तभी कार्य हो सकता है। हमें रक्षात्मक नहीं, आक्रामक शाखा चाहिए। कार्य में ही आनद है।

★ 'हृदय में उमग उठनी चाहिए। स्वयसेवक सदा उत्साह की से सराबोर रहे। तभी कार्य बढेगा।'

(२२) कार्यकर्ता की पहचान

★ 'हर चीज को मैं उत्तम रीति से करूँगा, सदैव यही विचार रहे। दक्ष से आरम् और आरम् से दक्ष ही क्यों न करना हो, वह भी उत्तम रीति से करना चाहिए।'

★ 'कार्यक्रम करके ऐसा विश्वास उत्पन्न होता है और प्रगट भी होता है कि अपने में प्रत्यक्ष सामर्थ्य है।'

★ 'स्वयसेवकों में दृढता उत्पन्न करने के लिए ध्येय की समझ आवश्यक है और सफलता प्राप्त करने के लिए योग्यता। प्रत्येक कार्यक्रम में पूर्ण ध्यान देना और गलती नहीं होने देना चाहिए, इससे योग्यता बढती है।'

★ 'स्वयसेवक की पहचान के लिए किसी बाह्य चिह्न की आवश्यकता नहीं है। सघ का ध्येय जीवन में उतरा हुआ दिखाई दे। हिम्मत से चलनेवाला तेजस्वी पुरुष तुरत पहचान में आ जाएगा।'

(२३) प्रार्थना का उच्चारण

'सप्तशती में ७०२ श्लोक हैं। पठन का नियम है कि ज्यादा जोर से कहना नहीं और अत्यत धीमे भी नहीं। उच्चारण में एक मात्रा भी कम-अधिक न हो। पाठ में किसी प्रकार की त्रुटि न हो। नागपुर में एक व्यक्ति ने १०० बार पाठ कर एक मदिर बनवाया। पाठ में गलती होती थी। उसके कारण मदिर-निर्माण में काफी बाधाएँ खडी हुई। पाठ में गलती नहीं होनी चाहिए, अन्यथा नाश हो जाएगा— ऐसी शप्तशती पाठ की शापवाणी है।'

'हमारे मत्र अर्थात् प्रार्थना में ऐसी शापवाणी तो नहीं है, परतु उसका गुण ठीक पाठ में ही है। पूरा स्पष्ट उच्चारण ठीक स्वर से हो। याद करने के लिए छपे हुए पत्रक की जरूरत है, तो छपा हुआ भी मिलता है। किसी प्रकार की त्रुटि नहीं रहनी चाहिए।'

'एक बार में अकोला की एक साय शाखा में गया था। साय शाखाओं का एकत्रीकरण था। प्रार्थना कहनेवाले ने गलती की। उसे रोककर पुन प्रार्थना कहने को कहा। पुन गलती हुई। तब मैंने प्रार्थना कराई और विकिर हुआ। दुरुस्त करने में वही समर्थ होगा जिसको शुद्ध प्रार्थना मालूम है।'

(२४) योग कर्मसु कौशलम्

'अच्छा काम करनेवाले को सब बातों में अच्छा होना चाहिए। पेशवाओं के जमाने में साढे तीन सयाने माने जाते थे। नागपुर, हैदराबाद

तथा पुणे में एक-एक सयाना था। तीनों ही चतुर राजनीतिज्ञ, कुशल सेनापति तथा शस्त्र व शास्त्र के जानकार थे। पुणे के नाना फडनवीस को आधा सयाना माना जाता था, क्योंकि वह केवल चतुर राजनीतिज्ञ था। उसे शस्त्र देखकर घबराहट होती थी, पसीना छूटता था। अपने काम में भी आधा सयाना नहीं चल सकता। हमें शारीरिक, बौद्धिक तथा अन्य कुशलता प्राप्त करनी चाहिए। किसी भी अग की अवहेलना न करें।

(२५) पैसे से रुपया

'कोई बात कितनी भी छोटी क्यों न हो, उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। कुछ स्वयसेवक कार्यक्रम से अधिक कपडों का ख्याल करते हैं। कपडों का ख्याल रखने का भी अपना समय है। गणवेश- निरीक्षण के समय उसकी चिता करनी चाहिए।'

'नागपुर में एक शिक्षक की कमीज में लगने वाली R S S Badge की पिन गिर गई। उसने उसके स्थान पर दियासलाई की तीली लगाई। शिक्षकों का गणवेश-निरीक्षण हुआ। पकड में आने पर उसे दो चक्कर लगाने की सजा दी गई। वह बहुत नाराज हुआ। मैं सर्वाधिकारी था, इसलिए वह मेरे पास आया। उसने कहा, 'मेरा अपमान हुआ है।' मैंने समझाया कि गणवेश में कमी नहीं होनी चाहिए। किसी से माँगकर कमी को पूरा कर सकते थे। आप शिक्षक हैं, यदि आपकी भूल की ओर दुर्लक्ष्य किया जाता, तो देखा-देखी अन्य स्वयसेवक दस भूलें करेंगे। हमें निर्दोष रहना चाहिए।'

'प्रचलन में सामने की ओर देखना चाहिए, न कि अपने पैर की ओर। आज साय कार्यक्रम के समय तेज हवा चल रही थी। कमीज की कालर उडती थी। ऐसे में वे हाथ से दबाने से दबेंगे नहीं, उडेंगे ही। फिर भी एक ने हाथ से उस कालर को बार-बार ठीक करने का प्रयास किया। यह ठीक नहीं है।

'थोडी भी गडबड को ध्यान देकर ठीक नहीं किया, तो पूरी गडबड होती है। सदैव सोचना चाहिए कि बडे काम करते समय छोटी बातों का भी ध्यान रहना चाहिए। एक साधु के पास आध्यात्मिक साधना करने हेतु एक साधक आया। उसकी परीक्षा लेने हेतु साधु ने कहा, 'हवा चल रही है, दरवाजा बद कर दो।' उसने धडाम से दरवाजा बद किया। साधु ने कहा, 'छोटी-सी बात ध्यान से नहीं कर सकते, प्रभु का ध्यान कैसे कर सकोगे?'

'सन् १९४० में डाक्टर जी नासिक में बीमार हुए। मैं साथ था। स्थानीय स्वयसेवक काम करने आते थे। उन स्वयसेवकों ने डाक्टर जी के कपडे धोकर सुखाने हेतु डाले। तौलिया का मैल वैसे ही रह गया। विश्राम के बाद डाक्टर जी उठे। पूछा, 'तौलिया किसने धोया।' स्वयसेवक ने कहा, 'दाग पक्का है, छूटता नहीं।' मैं सुन रहा था। थोडी देर बाद देखा कि तौलिया साफ है। डाक्टरजी ने बीमारी की अवस्था में उसे स्वय धोया था।'

'आदतें बिगडना सुलभ है। दिल्ली में सन् १९४९ में प्रतिबध उठने के पश्चात् नारेबाजी और चित्र लेने की आदत पड गई थी। प्रार्थना करते हुए एक हाथ छाती पर और दूसरा कैमरे पर, ऐसा करते हुए एक स्वयसेवक देखा था। दुर्गुण जल्दी आते हैं।'

'जब मैं सघस्थान पर पहुँचता हूँ, तब सब को दक्ष आज्ञा दी जाती है। कार्यक्रम चलते हुए दक्ष करने की शिक्षा मिलती है। स्वयसेवक ध्वजाभिमुख होकर जहाँ हो, वहीं दक्ष की स्थिति में आता है। किसी आज्ञा की राह नहीं देखनी पडती। छोटी चीज है, परतु इसमें बडी श्रेष्ठता है। कितना भी उत्साह हो, कैसा भी वातावरण हो, अपने आपको रोकने का अभ्यास होना चाहिए।'

'नागपुर में विद्यार्थी स्वयसेवक मिलने आते हैं। मैने उन्हें कहा, 'परीक्षा समीप है, पढाई चल रही है, तब बारात पास से जा रही हो तो उसे देखोगे क्या? आदत बनानी पडती है कि वह सुनाई भी न दे।'

'मैंने एम् एस सी और लॉ किया। मैंने पूरा हिसाब लगाया। पढाई के इन वर्षो में मैं केवल १२३ दिन पढा था। जिस समय पढता था, उस समय दुनिया उलट गई होती, तब भी मुझे पता नहीं लगता। अपने कार्यक्रमों से यह चीज पैदा हो सकती है। श्रेष्ठता, योग्यता पैदा होती है। दक्ष करने के अभ्यास से क्रमश हर चीज को अच्छी तरह से करने का गुण आता है।' Take care of the Pennies and Poands shall take care of themselves (एक-एक पैसे की चिता करने से रुपए जमा हो जाएँगे।) छोटी बातों को ठीक करो, तो बडी बात कदापि नहीं बिगडेगी।

(२६) स्थायी कार्य का आधार

स्थानीय कार्यकर्ता के द्वारा ही शाखा का काम होना चाहिए। केवल प्रचारकों के आधार पर स्थायी कार्य खडा नहीं हो सकता। नागपुर में प्रारभ में कार्यवाह, मुख्यशिक्षकों की बैठक पू डाक्टर जी स्वय लेते थे।

फिर नागपुर के कार्यवाह पर बैठक लेने का भार सौंपा। लेकिन स्वय एक स्वयसेवक की तरह बैठक में बैठते थे।'

'प्रचारक को जो कहना है, वह कार्यवाह को बैठक के पहले बता देना चाहिए। जब तक जरूरी न हो, बैठक के बीच में नहीं बोलना चाहिए। क्रियान्वयन कार्यवाह द्वारा ही करवाना चाहिए।'

(२७) अवसर को कभी न गवाएँ

'लोगों को अपने निकट लाना है। सघ के विचार उनके पास पहुँचाने हैं। हम सघ के प्रतिनिधि हैं, पूरे आदर्श के साथ प्रतिनिधि बनकर रहें। नए सपर्क का लाभ लेने में देरी नहीं करनी चाहिए। समय बीतने से उत्साह और सपर्क ढीला हो जाता है। नए सबधों को कार्य का स्वरूप प्रदान करें। गरम लोहे को ही अपनी इच्छा का स्वरूप प्रदान किया जा सकता है।'

'यद्यपि नए सबध बाद में अधिक लाभदायक सिद्ध न हों, परतु पहले-पहल जो स्वरूप मिल जाता है, उसका एक विशेष स्थायी लाभ हमेशा मिलता रहता है। लोहा ठडा हो जाने पर उसका स्वरूप नहीं बदला जा सकता।'

(२८) एकात्मिक भक्ति

'यह निश्चय चाहिए कि यह कार्य अपना है। एकातिक भक्ति होती है, तो सफलता मिलती है। जब तुलसीदास जी को कृष्ण मदिर में ले गए, तब उन्होंने प्रणाम नहीं किया। उन्हें तो प्रभु के रूप में अपने धनुर्धारी राम की मूर्ति की अभिलाषा थी। उनके लिए वह प्रकट भी हुई। उन्हें एकातिक निष्ठा से सिद्धि प्राप्त हुई है। सब काम भले हैं, परतु मेरे लिये मेरा सघ का काम सबसे अधिक भला है।'

(२९) खेलों द्वारा सस्कार

शाखा के बाद अनौपचारिक बातचीत में श्री गुरुजी ने स्वयसेवकों से पूछा 'आपका आज जो खेल हुआ, उसका नाम क्या था?' एक बाल स्वयसेवक ने बताया, 'दीप बुझाना।' अन्य वयस्क स्वयसेवकों की ओर देखकर श्री गुरुजी ने पूछा, 'क्या इसने खेल का नाम ठीक बताया। नाम सही होने की बात सुन कर उन्होंने कहा 'खेल का नाम इस प्रकार का नहीं होना चाहिए। दीप बुझाना अपने यहाँ अशुभ माना गया है। यह अपनी सस्कृति के अनुकूल नहीं है। अपने यहाँ कहते हैं— ज्ञानदीप

प्रज्ज्वलित करो, वह कभी भी बुझना नहीं चाहिए।' 'ज्ञानदीप मालवू नको रे (ज्ञानदीप कभी बुझने मत दो) यह संतवाणी है। खेल के लिए भी क्यों न हो, नाम ठीक चाहिए। उसका संस्कार स्वयंसेवकों के मन पर बहुत गहरा होता है।

(३०) ग्रंथ की उपयोगिता सीमित है

श्री गुरुजी टंकित साहित्य पढ रहे थे। वह उनके ही भाषणों एवं संभाषणों का संकलन था, जो 'बंच ऑफ थॉट्स' नाम से प्रकाशित होनेवाला था। उसे निर्दोष करने हेतु ध्यानपूर्वक पढ रहे थे।

इस नए प्रकाशन की जिसे जानकारी थी, ऐसे एक कार्यकर्ता द्वारा यह कहने पर कि इस प्रकार की पुस्तक की आज बहुत आवश्यकता है, श्री गुरुजी ने कहा कि आप इसकी जितनी आवश्यकता अनुभव कर रहे हैं, उतनी है नहीं। पुस्तक कितनी भी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती हो, लेकिन उसे अपरिहार्य मानकर उस पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति अयोग्य है। कल्पना करो कि अपने भाषण में किसी कार्यकर्ता ने कहा — 'यदि मन में संदेह हो, तो गोलवलकर की लिखी पुस्तक का पठन करो।' क्या इस प्रकार भाषण कर वह संघकार्य कर सकेगा? कोई भी कार्यकर्ता इस रीति से स्वयंसेवकों को सुसंस्कारित व प्रेरित नहीं कर पाएगा।

प्रत्येक पुस्तक की अपनी मर्यादा रहती है। पुराने-नए, बालक-युवा, अधिक कार्यक्षम और अकार्यक्षम, मित्र अथवा अन्य लोगों को पुस्तक एक ही शब्द-भंडार एक ही स्वर में सुनाती है। इस कारण पुस्तक की उपयुक्तता सीमित है। इसलिए अपनी कार्यपद्धति में व्यक्तिगत संपर्क, सहवास और मित्रत्व से की हुई बातचीत अत्यधिक महत्त्व की है। वार्तालाप किससे, किस समय और किस सीमा तक करना है— इसकी स्वाभाविक मर्यादा रहती है, अधिकार-भेद रहता है। प्रत्येक का स्वभाव, भाव, भावना, वैचारिक स्तर, बातचीत का योग्य समय आदि बातें संघ की दृष्टि से महत्त्व की हैं। संघकार्य करते समय इन सब बातों की ओर ध्यान देकर काम करना आवश्यक रहता है। पुस्तक इनमें से किसी भी बात की चिंता नहीं करती।

(३१) कार्यकर्ता अध्ययनशील रहे

श्री गुरुजी ने पूछा, 'यहाँ ऐसे कितने कार्यकर्ता हैं, जो अपने कार्य की दृष्टि से उपकारक अध्ययन नित्य करते हैं?' उपस्थित कार्यकर्ताओं में से कई ने हाथ उठाए। तब उनसे उसके अध्ययन के सबध में उन्होंने प्रश्न पूछे। उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो', 'रामचरितमानस' और 'साकेत' ग्रथों की विशेष चर्चा की तथा उनका महत्त्व बताया। इन ग्रथों के कुछ उद्धरण भी बताए।

(३२) बैठक का वातावरण

जब कभी बैठक का वातावरण कुछ गभीर हो जाता था, तो उसे सामान्य करने के लिए वे कोई बोधप्रद चुटकुला सुनाकर बोझिल वातावरण को हल्का कर दिया करते थे। उसका एक उदाहरण–

उन्होंने बताया कि वे बचपन में हिन्दी की सुप्रसिद्ध 'सरस्वती' मासिक पत्रिका नियमित रूप से पढते थे। उसमें प्रकाशित एक कविता मुझे अब तक याद है। एक दिन बादशाह बडे तडके किले की प्राचीर पर खडे थे। उन्होने देखा कि यमुना नदी के जल से भाप निकल रही है। वे सर्दी के दिन थे। अत बादशाह को बडा आश्चर्य हुआ कि कडाके की सर्दी है, फिर भी पानी से भाप निकल रही है। क्या किसी ने नदी के पानी को गरम करने के लिये उसके नीचे आग सुलगाई है? पानी क्यों खौल रहा है? उन्होंने बीरबल से पूछा– केहि कारन प्रात बफात है पानी?' बीरबल तो हाजिरजवाब था। उसने तुरत उत्तर दिया–

'एक समय लकापति रावण आन हरी सिय राम की रानी
कोप चढयो दशरथ के नदन, अजनिसुत भयो अगवानी
बाँध लगोट कगूर चढयो तब लका जली जडनी अकुलानी
जाए समुद्र में पूँछ बुझाई एहि कारण प्रात बफात है पानी।

(३३) दायित्व की व्याप्ति

बैठक में एक प्रचारक को अपने स्थान के कार्य का वृत्त बताने के लिए श्री गुरुजी ने कहा, तो उसने बताया कि पिछले माह ही यह दायित्व स्वीकार करने के कारण उसे जानकारी नहीं है। इस पर उन्होंने कहा– 'तो क्या हुआ? हमें इस प्रकार नहीं कहना चाहिए। हमारा एक सगठन है। कार्यक्षेत्र सौंपे जाने का अर्थ मात्र वह पद ग्रहण करना नहीं है। अपने कार्य में दायित्व स्वीकारने की व्याप्ति बहुत अधिक है।'

जानते हो, अपने देश की शासन व्यवस्था अंग्रेजों ने कैसे चलाई थी? प्रत्येक आई सी एस विद्यार्थी को सभी प्रकार से सुशिक्षित व सस्कारित किया जाता था। आगे चलकर जिस क्षेत्र का उसे सचालन करना होना था, उस क्षेत्र के लोगों के रीतिरिवाज और रहन-सहन जानना उसके लिए अनिवार्य माना जाता था। उन लोगों की विशेष शैली में बोली जानेवाली भाषा, वहाँ की भौगोलिक और ऐतिहासिक जानकारी उसे अवगत कराइ जाती थी। उस क्षेत्र का दायित्व स्वीकार करने के कारण जिन-जिन बातों की जानकारी आवश्यक रहती थी, उन सब बातों से प्रशिक्षित होकर वह आई सी एस अपने क्षेत्र का दायित्व सभालता था। इसी कारण वह उस क्षेत्र की परिस्थिति पर काबू पा लेता था।

अपने सगठन में कार्यकर्ता इसी प्रकार प्रशिक्षित रहना चाहिए। पू डाक्टर जी जिस किसी से मिलना चाहते थे, उसकी पूर्ण जानकारी से वे हमेशा अवगत रहते थे। मिलनेवाले को अपने कार्य के अनुकूल बनाना पू डाक्टर जी को इसी से सभव होता था।

मैं अपना एक अनुभव बताता हूँ। एक बार हवाई जहाज से प्रवास कर रहा था। मेरे बगल में एक सुप्रसिद्ध नेता बैठे थे। उन्होंने स्वय अपना परिचय करा दिया। मैंने कहा आपने बडी कृपा की, जो अपना परिचय करा दिया। आपसे अभी तक मिलने का सुअवसर नहीं आया था, परतु मैं आपको जानता हूँ। आपसे मेरे पूर्व के सरसघचालक पू डाक्टर जी का घनिष्ठ परिचय था। उन्होंने आश्चर्यचकित होकर कहा– 'यह बात सही है, परतु आपको इसका पता कैसे चला?' मैंने कहा कि 'उनके शात हो जाने पर जब मैंने दायित्व सँभाला, तब पू डाक्टर जी की दैनदिनी का अध्ययन किया था। उसमें आपके विषय में लिखा हुआ मैंने पढा है।' फिर क्या था, हमारी मित्रता हो गई। बाद में उन्होंने अपने एक विशाल समारोह की अध्यक्षता भी की थी।

एक बार मुख्यमत्री श्री रविशकर शुक्ल से मिलने गया था। बातचीत में मैंने उनसे कहा, 'आप भी स्वयसेवक हैं।' उन्होंने आश्चर्य से पूछा, 'आप कैसे जानते हैं?' मैंने बताया, 'जब मैंने सघकार्य का दायित्व स्वीकार किया, तब मेरे पूर्व रहे सरसघचालकजी के समय जो हुआ, उसकी जानकारी प्राप्त करना मेरा कर्तव्य था।'

श्री रविशकर जी ने बताया कि डाक्टर साहब जीवित थे, तब उन्हीं के घर शाखा का प्रारभ हुआ था और वे सघ मे सम्मिलित हुए थे।

मैं इस तथ्य से अनभिज्ञ कैसे रह सकता था?

इसी कारण कहता हूँ कि 'दायित्व स्वीकारने का अर्थ मात्र पद की स्वीकृति नहीं है। प्रत्येक कार्यकर्ता के लिए और विशेषरूप से प्रचारक के लिए यह सद्गुण आवश्यक है। इसको उसने हृदयगम करना ही चाहिए।'

(३४) सबको काम से जोड़े

श्री गुरुजी ने अपना एक अनुभव बताया, 'एक जिला स्थान पर एक महोदय प्रचारक के रूप में कार्य करते थे। मैं जब वहाँ पहुँचा तब, एक बडे उत्सव का आयोजन किया गया था। उसमें सब कुछ उन्होंने ही किया। सामूहिक गीत और प्रास्ताविक भाषण भी उन्होंने किया। तब मैंने उनसे कहा, 'भाई, मेरा भाषण भी आप ही दे देते।' उस कार्यकर्ता का उत्साह अवश्य सराहनीय था, परतु दूसरों को प्रेरणा देने में वह बाधक था। परिणाम यह हुआ कि उस क्षेत्र में नव-नवीन कार्यकर्ताओं की निर्मिति नहीं हो सकी। हमें सबको काम देना चाहिए और अपनी बुद्धि से तथा स्वयप्रेरणा से वे करें— ऐसी योजना करनी चाहिए। कभी-कभी लोग कह देते हैं कि पूर्ण योग्य व्यक्ति नहीं मिलते। अब बताओ, हमारे में पूर्ण योग्य कौन है? पूर्ण योग्य तो केवल परमेश्वर है। हम सबमें कोई न कोई त्रुटि अवश्य विद्यमान है। एक-दूसरे को समझाते तथा सँभालते हुए हमें अपने दोषों को दूर करना है और अपने अदर विभिन्न गुणों को भरना है। इसी प्रकार कायकर्ता निर्माण होंगे।'

(३५) कार्यकर्ता कैसे हो

श्री गुरुजी ने बताया, 'एक बार मैं एक शिविर में गया था। मेरे रहने और सोने की व्यवस्था शिविर से कुछ दूर की गई थी। रात्रि में जब शिविर के सब कार्यक्रम समाप्त हो गए, तब मैं अपने सोने के स्थान पर चला गया। मध्य रात्रि में मुझे इच्छा हुई कि शिविर का सरक्षण-प्रबध देखूँ। वहाँ पहुँचा तो देखा कुछ कार्यकर्ता एक पटकुटी (तबू) में बैठकर गप्पें लडा रहे थे। उसमें बहुत अधिक परनिदा थी। पक्ष-उपपक्ष की आलोचना थी। नेताओं का उपहास था। कोई किसी की भोंडी नकल कर देता और सब हँसते थे। यह कहाँ तक उचित है?'

हमारे स्वयसेवकों तथा कार्यकर्ताओं के लिये यह सर्वथा अनुचित है। उनका स्वभाव परनिदा-प्रिय नहीं बनना चाहिए। मैं जानता हूँ कि निदा

और उपहास का भी उपयोग अवश्य है, परंतु बहुत कम प्रसंगों पर उनका उपयोग करना चाहिए। क्वचित् किसी समय पर विष का औषधि के रूप में सेवन करते हैं। वैसे ही निंदा या उपहास का हमें उपयोग करना चाहिए। पग-पग पर परनिंदा करने से हम क्षुद्रता से घिर जाते हैं। जब हमें संघ का यह महान ईश्वरीय कार्य करना है, तब हमें इस हीन दोष से सदैव मुक्त रहना होगा।

इसका अर्थ यह नहीं है कि हम एकदम नीरस और गंभीर बनें सदैव रोती सूरत बनाकर रहें। जब देखो, तब सचिंत हैं। मन पर बड़ा बोझ हो, ऐसी अवस्था कार्यकर्ताओं के लिए उचित नहीं। अपना कार्यकर्ता हमेशा प्रसन्न और हँसमुख रहना चाहिए। कभी लोग मुझसे पूछ बैठते हैं -- 'इतनी विकट परिस्थिति है, फिर भी आप हँसते हैं। यह कैसे?' मैं उनसे प्रतिप्रश्न करता हूँ-- 'क्या विकट परिस्थिति का सामना करने के लिये रोना आवश्यक है? सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्ता का श्रीमद्भगवद्गीता में बड़ा सुंदर वर्णन आया है--

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वित
सिद्धयसिद्धयोर्निर्विकार कर्ता सात्विक उच्यते।
(अध्याय १८ श्लोक २६)

(३६) कार्यकर्ता कैसे न हो

श्री गुरुजी-- 'हमारे कार्यकर्ता को केवल भावनाप्रधान नहीं होना चाहिए। कुछ लोगों के मन में एकदम से भावनाएँ उमड आती हैं और वे रोने लगते हैं अथवा कुछ ऊटपटांग कर बैठते हैं। कुछ अनाचार या अत्याचार करते हैं। कुछ अवास्तव या अयोग्य करने से राष्ट्र का भला नहीं होता, हानि ही होती है। यहाँ-तक कि बना-बनाया काम बिगड जाता है। इटली के स्वातंत्र्य-युद्ध के समय की बात है। इटली के गेरीबाल्डी, मैजिनी आदि नेताओं ने फ्रांस के कुछ नेताओं के साथ गुप्त संधि की थी। तदनुसार इटली बहुत शीघ्र दास्यमुक्त हो सकता था, परंतु एकाएक किसी आततायी ने फ्रांस के बादशाह पर गोली चला दी। समाचार सुनते ही मैजिनी ने कहा 'ईश्वर कृपा करे, गोली चलानेवाला कोई इटालियन न हो।' दुर्दैव से वह इटालियन ही निकला। सारी योजना नष्ट हो गई। जब भावनातिरेक के कारण आदमी कोई अविवेकपूर्ण कार्य कर बैठता है, तब उससे कोई लाभ नहीं होता, हानि ही होती है। भावनाएँ तीव्र अवश्य होनी

चाहिए, परतु उन पर विवेक का अकुश रहना चाहिए। उसपर ध्येयनिष्ठा का प्रभाव रहना चाहिए और उसके द्वारा योग्य मार्ग पर प्रगति होनी चाहिए। हमें उन्मार्गगामी बनानेवाली भावना भला किस काम की?'

(३७) हम पदाधिकारी नहीं, स्वयसेवक है

'हम सब सघकार्य करनेवाले स्वयसेवक हैं। कार्य की सुविधा के लिए किसी पद का दायित्व हम पर है, परतु हम पदाधिकारी नहीं हैं। जिस कार्य का दायित्व सौंपा गया है, वह करना सभव नहीं होता, ऐसा कहना हमें शोभा देनेवाली बात नहीं है। हमें जो जिम्मेदारी सौंपी गई है, उसके अनुरूप व्यवहार जीवन में चरितार्थ करने की क्षमता प्रकट करना हमारा कर्तव्य है। हम सभी सामान्य लोग हैं। ऐसे ही सामान्य लोगों का सगठन खडा करने का हमारा प्रयास है। जिससे जितना बन सकता है, उतना काम करवाकर अधिक करने के लिए उसको प्रेरित करना अपनी कार्यपद्धति है। स्वभाव दोष तो सभी में रहते हैं, परतु उसका बुरा असर कार्य पर न हो, इसकी सावधानी हमें अवश्य बरतनी चाहिए। अन्यथा स्वय को स्वयसेवक कहना निरर्थक सिद्ध होगा। दिया हुआ कार्य मैं करके ही रहूँगा, इस निश्चय से हमें चलना चाहिए।'

(३८) कार्य की पूरी जानकारी हो

रात्रि में भोजन के पश्चात् प्रचारकों के साथ वार्तालाप चल रहा था। बातचीत का विषय था कि कार्यकर्ता बदलने पर भी कार्य चलते रहना चाहिए, बढना चाहिए।

शाखा-शिक्षकों की बैठक में श्री गुरुजी के प्रश्न पूछने पर सबधित शिक्षक ने कहा था कि वह उस समय शिक्षक नहीं था, केवल तीन महीने पूर्व ही वह शाखा में शिक्षक बना है। तब श्री गुरुजी ने कहा था – 'यह कोई उचित स्पष्टीकरण नहीं है।' शिक्षकों की बैठक समाप्त हो जाने पर जिला के अधिकारी, प्रचारक और कुछ थोडे शिक्षक रहे थे, तब श्री गुरुजी ने उसी विषय को चलाते हुए कहा, 'हाँ, मैंने कल उसे कहा था कि ऐसा स्पष्टीकरण नहीं देना चाहिए। हम नित्य स्मरण रखें कि हम एक सगठन चला रहे हैं। किसी शाखा या अन्य कार्य का दायित्व जब कोई स्वयसेवक स्वीकार करता है तब उसे उस कार्य की पूर्व जानकारी और पृष्ठभूमि पूर्णतया जान लेनी चाहिए। यद्यपि उसके लिये दायित्व नया है, मगर कार्य

तो वर्षो से चला आ रहा है। कार्य की नित्य हो रही प्रगति में उनको अपना यथोचित स्थान ग्रहण करना चाहिए।

इस बारे में हमें अंग्रेजों से पाठ मिलता है। भारत में आनेवाला प्रत्येक वायसराय आने के पूर्व यहाँ की पूर्ण जानकारी से अवगत रहता था। वह अपनी रुचि-विशेष लेकर भारत में आता था और यहाँ के बुद्धिमान लोगों को अपने छद के अनुकूल करने में सफल होता था। किसी सामान्य मनुष्य से मिलने के पूर्व उस व्यक्ति की सपूर्ण पूर्ण जानकारी देनेवाली फाईल सम्मुख रखने के लिए अपने सचिव को अंग्रेज अधिकारी आदेश देता था। मिलनेवाले व्यक्ति का पूर्व जीवन इस प्रकार ज्ञात रहने से वह विश्वासपूर्वक बात करता था और मिलनेवाले व्यक्ति के लिए उत्तर देना कठिन हो जाता था। इसलिए जो भी दायित्व हम ग्रहण करते हैं, उसका पूर्व इतिहास, सपूर्ण जानकारी हमें मालूम रहनी ही चाहिए।

(३९) अधिक उद्यमशीलता चाहिए

एक बैठक में नगर कार्यवाह ने पूछा– 'उपशाखाओं की उपस्थिति बढाने के लिए हमें क्या करना चाहिए? उपशाखाओं की भी सख्या कम है, यह कठिन समस्या है। यह स्थिति बदलने के लिए क्या किया जाना चाहिए?'

श्री गुरुजी ने इसका उत्तर देते हुए कहा, 'मुख्य कठिनाई यह है कि हम काम कम करते हैं। यदि प्रत्येक मुख्यशिक्षक व कार्यवाह ठीक से काम करे और उससे स्वयसेवकों को प्रेरणा मिले, तो शाखाओं की सख्या और उपशाखाओं में स्वयसेवकों की उपस्थिति बढेगी। मुझे एक प्रसग याद है। अपने कार्य से सहानुभूति रखनेवाले एक सज्जन मिले। लगभग घटाभर हमारी प्रदीर्घ बातचीत हुई। बातचीत का निष्कर्ष यह था कि प्रत्येक व्यक्ति को शाखा में जाना चाहिए। उन्होंने कहा, 'आपके अनेक कार्यकर्ता मिले, परतु शाखा में जाने का प्रस्ताव केवल आपने ही रखा है।' अपने कार्यकर्ता लोगों से बातचीत करते हैं, सघ के विषय में उनका पूर्ण समाधान भी करते हैं, परतु उनको सघशाखा में जाने को नहीं कहते। यह कठिनाई है।

(४०) फिर कैसे हम हिंदू हैं?

महाराष्ट्र की एक बैठक में श्री गुरुजी ने कार्यकर्ताओं से कुछ प्रश्न पूछे जैसे– यहाँ ऐसे कितने कार्यकर्ता हैं, जिन्हें चार पुरुषार्थो के सबध में ज्ञान है? सत ज्ञानेश्वर की ४-६ ओवियाँ (ओवी – एक मराठी छद) किसे

याद हैं? मोरोपत की पाँच आर्याएँ सुनाओ। तुकाराम के पाँच अभग (एक मराठी छद) कौन कर सकता है? समर्थ रामदास के 'मनोबोध' में से दस श्लोक किसे कठस्थ हैं?

फिर इन ग्रथों के प्रतिपाद्य विषय पर सक्षेप में कुछ भाष्य भी किया। अनेक साधु-सतों के जीवन का रहस्योद्घाटन किया और अत में उस विषय का उपसहार करते हुए उन्होंने कहा, 'जिन काव्यों से हमें हिदुत्व का वास्तविक ज्ञान हो सकता है, उनका परिचय न होना उचित नहीं। इसके बिना हम नाम मात्र के हिदू हैं।

(४१) कार्यकर्ता चारित्र्यसपन्न बने

'हमें उत्तम कार्य करने के लिए जनता का विश्वासभाजन बनना होगा। जनता हम पर तब विश्वास करेगी, जब हमारा बर्ताव शुद्ध होगा। हमारा व्यक्तिगत जीवन इतना निष्कलक रहना चाहिए कि किसी के मन में स्वप्न में भी हमारे बारे में शका न उठे। किसी समय हमारा यह सपूर्ण समाज शील-चारित्र्य सपन्न था। आज भी गाँवों में हमें सच्चरित्रता के उदाहरण दिखाई देते हैं। रास्ते चलते किसी किसान की गाडी टूट जाती है, तो वह टूटा हुआ पुर्जा लेकर निकट के गाँव में दुरुस्ती के लिए चला जाता है। गाडी और गाडी में लदा सामान वहीं पडा रहता है, पर कोई उसे उठाता नहीं। जिन्हें हम अनपढ या देहाती कहते हैं, उनके पास आज भी इतना शील विद्यमान है। उनकी तुलना में हम तथाकथित, सुविद्य एव शहरी लोग हीन हैं। हमें ध्यान में रखना चाहिए कि सच्चरित्रता के बल पर ही हमारा समाज एव हमारा यह कार्य अपनी उन्नति कर सकता है।'

(४२) पॉलिटिकल हिदू न बने

'आज आत्मविस्मृति हमारा सबसे बडा दोष है। सच्ची राष्ट्रीयता को हम भूल गए हैं। जो अपने आपको कट्टर हिदू कहते हैं, उनकी भावना का भी यदि हम विश्लेषण करें, तो बडी विचित्र स्थिति दिखाई पडती है। हिदू हमारा उपनाम मात्र बन गया है। हिदू याने पॉलिटिकल हिदू, मुसलमानों के खिलाफ बोलनेवाला हिदू, ईसाइयों के विरोध में प्रचार करनेवाला हिदू। हिदू का यह नकारात्मक रूप ठीक नहीं है। हिदुत्व की अनुभूति हमें अपनी आत्मा से होनी चाहिए। प्रतिक्रियात्मक हिदुत्व किसी भी काम का नहीं। पॉलिटिकल हिदू का ध्यान केवल आर्थिक लाभों तथा अधिकारों की ओर रहता है। हिदुत्व निपट स्वार्थ पर आधारित नहीं रहना

चाहिए। मैं हिंदू हूँ, इसका अर्थ है— मेरे अदर कुछ असामान्य गुण हैं, मेरी कुछ अलग परपरा है, मेरे जीवन का ध्येय हिंदुत्व के अनुरूप है। इस प्रकार हमारी धारणा भावात्मक, रचनात्मक एव क्रियात्मक रहनी चाहिए प्रतिक्रियात्मक कदापि नहीं।'

(४३) गुरुदक्षिणा समर्पण-भाव का प्रतीक

'दक्षिणा का विचार केवल पैसे की दृष्टि से नहीं करना चाहिए। प्रत्यक्ष पूजन का आग्रह करना चाहिए। दक्षिणा चंदे जैसी इकट्ठी नहीं करनी चाहिए। अधिक से अधिक स्वयसेवकों को प्रत्यक्ष ध्वजपूजन कर, दक्षिणा समर्पित करनी चाहिए। यह मेरा कार्य है, इसके लिए मुझे कष्ट उठाने चाहिए, कुछ देना चाहिए, यह स्वयसेवकों की वृत्ति रहे। यह भाव निरतर बढे, ऐसा प्रयास होना चाहिए। पैसा जुटाना, धन-सचय करना न हमारा कार्य है और न ही हमारा हेतु। हमारे कार्य का वह एक स्वाभाविक परिणाम रहे।

तन-मन-धन पूर्वक मैं अपना काम करूँगा— यह विचार हमारे कार्य का आधार है। पहले ही दिन कोई भी व्यक्ति सर्वस्व तो समर्पित नहीं कर सकता। उस भावना का क्रम से विकास करना पडता है। गुरुदक्षिणा बढाने के लिए अयोग्य आग्रह अथवा जोर-जबरदस्ती कभी नहीं करनी चाहिए। स्वयसेवक की सद्भावना को आघात नहीं पहुँचाना चाहिए। किसी का मन नहीं दुखाना चाहिए। स्वयसेवकों के मन की प्रसन्नता भग नहीं होनी चाहिए।'

(४४) नाग और नेवला

कुछ दिनों पूर्व सघ के विषय में 'इदिरा काग्रेस' तथा शासन द्वारा अनर्गल प्रचार चल रहा था। उसका उल्लेख करते समय बैठक में श्रीगुरुजी ने एक कहानी बताई। उन्होंने कहा, 'ये विरोधक जो क्षमतासपन्न हैं हमें धमकियों से डराने का वृथा प्रयत्न कर रहे हैं। वास्तविक रूप में हमको भय दिखानेवालों के मन में ही भय रहता है।' बचपन में पढी हुई एक कविता याद आती है। एक नेवले का बच्चा जगल में अकेला भटक रहा था। इतने में एक भयकर नागराज ने उसे देखा। सर्प नेवले से डरता है। उस नन्हें नेवले ने अपनी स्वाभाविक निर्भयता से उस नाग से पूछा, 'तुम कौन हो?' तब उस नेवले को डराने के उद्देश्य से वह नाग कहता है, 'क्यों मुझे

पहचानते नहीं? देखो, मेरे माथे पर का यह दस का ऑकडा, साक्षात् ब्रह्मदेव ने लिखा है। इसे देखो और मुझसे बचकर रहो। आगे कवि उस कविता का अत करते हुए कहता है-- 'सच बात यह है कि वह नाग ही मन में डर गया था। उसे भय लग रहा था, क्या जाने अपने परपरागत शत्रुत्व की याद आते ही यह नेवले का बच्चा उसके टुकडे-टुकडे तो नहीं कर देगा।'

(४५) सघकार्य मे मेरे सहयोगी

वृत्त निवेदन करते समय एक कार्यकर्ता अपनी कठिनाइयॉं बता रहा था। उसने कहा-- 'मेरे कार्यकर्तागण मुझसे मन पूर्वक सहकार्य नहीं करते।' यह सुनते ही आश्चर्यचकित मुद्रा में भृकुटि उठाकर उसकी ओर देखकर श्री गुरुजी ने पूछा, 'वे आपके कार्यकर्ता हैं या सघकार्य में आपके सहयोगी हैं?' तब कार्यकर्ता ने अपनी भूल सुधारते हुए कहा-- 'मेरे सहयोगी।' श्री गुरुजी ने कहा-- 'हॉं, अब आगे कहो।'

(४६) काक दृष्टि छोडे

एक बार एक कार्यकर्ता अपने वृत्तकथन में दूसरे कार्यक्षेत्रों की त्रुटियॉं दिखाने लगा। तब श्री गुरुजी ने उससे कहा -- 'दूसरों के दोष दिखाने से हमारी निर्दोषता सिद्ध नहीं होती। एक सौ पापात्माओं को आप पहचानते होंगे, किंतु उससे आप स्वय पुण्यात्मा नहीं बन जाते।'

(४७) अपना काम जोडने का है

श्री गुरुजी ने एक अधिकारी से पूछा-- 'आपके नगर में कितने स्वयसेवक हैं?'

अधिकारी ने तत्कालीन उपस्थिति और सपर्कित स्वयसेवकों की सख्या बताई। इसपर श्री गुरुजी ने कहा, 'आपके यहॉं की शाखा बहुत पुरानी है, स्वयसेवकों की सख्या इससे अधिक होगी। जरा ठीक से बताओ।'

अधिकारी ने उत्तर दिया-- 'इसमें कुछ लोगों को छोड दिया है।'

श्री गुरुजी-- 'यह छोडने का कार्य कब से शुरू किया है?'

वातावरण में गभीरता छाई हुई थी। वे अधिकारी महोदय क्या उत्तर दें? श्री गुरुजी ने कहा-- 'सघकार्य समाज के बधुओं को छोडने का नहीं है, जोडने का है।'

(४८) धारणा ठीक होने पर ही सफलता

एक प्रचारक अपने कार्यक्षेत्र का वृत्त बता रहे थे। उस क्षेत्र में कार्य बहुत कम था। श्री गुरुजी ने उससे प्रश्न किया– 'वहाँ अपने कार्य की ऐसी स्थिति क्यों है? कार्य बढता क्यों नहीं?'

उत्तर– 'क्या करें? वहाँ का समाज मरा हुआ है। लोगों में कोई उत्साह दिखलाई नहीं देता।'

यह सुनते ही श्री गुरुजी का मुख गंभीर हो गया। उनकी भाव-भंगिमा में वक्रता आ गई। उन्होंने बहुत ही कठोर स्वर में कहा, 'तुम बैठ जाओ। तुम काम नहीं कर सकते।'

सारी बैठक में मानो सन्नाटा छा गया। फिर कुछ देर रुककर श्री गुरुजी बोले, 'फिर तुम्हें वहाँ क्यों भेजा गया? समाज के प्रति यदि ऐसी धारणा रखकर काम करोगे तो सफलता कैसे मिलेगी? अगर काम करना है और सफल होना है, तो समाज के प्रति अपनी धारणा को ठीक करना होगा।'

(४९) सामाजिक शक्ति का केंद्र संघस्थान

बैठक के पूर्व कार्यकर्ताओं के साथ श्री गुरुजी खडे थे। उन्होंने श्री मधुमंगल शर्मा को बुलाया। उनके पास आते ही बोले, 'शर्माजी, रामायणकाल में यज्ञस्थल सामाजिक शक्ति का केंद्र था। आज कलियुग में अपना संघस्थान ही समाजशक्ति का केंद्र है।

(५०) सजगता

(श्री गुरुजी की अंतिम बैठक)

संघ शिक्षा वर्ग में आए शिक्षार्थियों की प्रातः बैठकों का अंतिम चरण, हेडगेवार भवन, नागपुर, २ जून १९७३–

श्री गुरुजी– 'आज्ञा क्या है? उत्तिष्ट कि उत्तिष्ठ।'

उत्तर– 'उत्तिष्ठ।

गुरुजी– 'आज्ञा का उच्चारण निर्दोष होना चाहिए।'

अंतिम क्षणों में भी थी इतनी सजगता और अचूक मार्गदर्शन।

(५१) संघचालक अर्थात् परिवार का मुखिया

'एक बार की बात है। एक सज्जन से अपनी एक शाखा के संघचालक का उत्तरदायित्व स्वीकारने के लिए कहा वे प्रतिष्ठित व्यक्ति थे।

उन्होंने पूछा कि सघचालक के रूप में उनसे कौन से कार्यो की अपेक्षा की जाएगी? मैंने कहा 'मान लीजिए कि आप सयुक्त परिवार के मुखिया हैं और परिवार में पुत्र, पुत्री, प्रपौत्र आदि हैं, तो मुखिया के नाते आपका कार्य क्या होगा?' उन्होंने कहा, 'वे उनकी देखभाल करेंगे'। मैंने पूछा— 'आप परिवार के बच्चों को पढा-लिखा देखना चाहेंगे अथवा नहीं?' वे बोले, 'अवश्य ही मैं उन्हें पढा-लिखा देखना चाहूँगा।' फिर मैंने कहा, 'आप यह भी देखेंगे कि वे अपने जीवन में स्थिरता प्राप्त करें।' वे बोले, 'हाँ, मैं यह भी देखूँगा।' मैंने पूछा, 'वे सद्‍गुणी हों इस ओर ध्यान देंगे कि नहीं?' उन्होंने कहा, 'हाँ, यह भी मेरा कार्य होगा।' तब मैंने उनसे कहा कि सघ-परिवार की देखभाल के लिए भी आपको यही सब-कुछ करना होगा।

सब स्वयसेवकों की ओर सब प्रकार से ध्यान देना होगा। मान लो कि शाखा में उपयोगी नवयुवक स्वयसेवक हैं। ध्यान देना होगा कि उनका व्यवहार अपने घरों में, बाहर तथा दूसरे विद्यार्थियों, शिक्षकों, मित्रों आदि के साथ उचित रहे। उनकी आदतें अच्छी हों। वे शीघ्रता से सद्‍गुण ग्रहण करें। उसी तरह वे अपनी पढाई की ओर उचित ध्यान दें। परीक्षा में ठीक प्रकार उत्तीर्ण हों। जो बडी आयु के स्वयसेवक हैं, उनके सबध में हमें उनकी जान-पहचान और कामधधे का ठीक-ठीक पता कर लेना होगा और यह भी देखना होगा कि वे अपने कार्यक्षेत्र की जिम्मेदारी ठीक प्रकार से निभाते हैं या नहीं। जो लोग सघचालक, कार्यवाह, मुख्यशिक्षक, गणशिक्षक और गटनायक के उत्तरदायित्वों को सँभालते हैं, उन्हें स्वयसेवकों की इन सब बातों की ओर ध्यान देना होगा।'

(५२) छुआछूत की प्रक्रिया हमे रोकनी है

'पहले अपने देश में कुल १८ जातियाँ थी। सभवत अब १८ हजार हो गई हैं। कहा जाता है कि उनका आपस में कोई सबध नहीं। मुझे बडा आश्चर्य होता है जब कुछ लोग कहते हैं कि कुछ जातियों तो स्पर्श करने योग्य नहीं है। ऐसे लोग यह भी कहते हैं, चूँकि उन्होंने घोर कृत्य किए थे, इसलिए उन्हें समाज के बाहर करने का दड दिया गया था। यदि यह बात मान भी ली जाए तो भी यह कई शताब्दियों पहले की बात है। उसके लिए आज उनके वशजों को दडित करते रहने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। वशपरपरा से समाजबाह्यता की बात मुझे बिलकुल नहीं जँचती। किसी व्यक्ति ने समाज-विरोधी कोई कार्य किया हो तो उसे दडित किया जा

सकता है। परतु उसके वशजों को क्यों कर प्रताडित किया जाए? किसी समूह को समाजबाह्य करने में बहुत बडा खतरा रहता है। अपने समाज के अग को इस प्रकार पृथक कर देते हैं, तब टूटकर अलग होनेवाला हिस्सा अपने अस्तित्व के लिए सहज ही एक अलग गुट बनाकर काम करता है। यह गुट अपने विचित्र व्यवहार द्वारा कालातर में सपूर्ण समाज को खोखला बना डालता है। इस तरह से खोखला बना समाज ससार में टिक नहीं सकता। समाज को खोखला करनेवाली इस छुआछूत की प्रक्रिया को हमें रोकना ही चाहिए।

(५३) सिद्धातो पर दृढ

एक मुसलमान मेरे पास आया और बोला, 'मैं जनसघ में काम करना चाहता हूँ।' आप सब जानते हैं कि मेरा जनसघ से सबध नहीं है। कभी सबध रहने की आशा भी नहीं है। फिर भी वह मेरे पास आया।

मैंने कहा, 'जरूर जाओ।' फिर विनोद करते हुए कहा, 'तुम्हें मालूम है जनसघ में कुछ सघवाले हैं?'

उसने कहा, 'मुझे मालूम है। इसीलिये आपके पास आया हूँ।'

मैंने कहा, 'ये सघवाले मेरे समान कट्टर हिंदूराष्ट्र की बात करनेवाले हैं।'

वह बोला, 'हाँ, मालूम है, मुझे चलेगा।'

ऐसे जितने भी मिलते हैं उनसे कहता हूँ कट्टर हिंदू-राष्ट्र माना, तब तो ठीक है। उसी लिए काम करना। अपनी बाकी की सभी बातें भूल जाओ। परतु यदि सिद्धात के बारे में किसी प्रकार की लेन-देन की बात होगी, जैसी काग्रेस में हुई, तो वह बढती जाएगी और धीरे-धीरे सब गडबड हो जाएगी।

(५४) शब्दो से विकृति

कभी-कभी लोग कहते हैं कि हम समाजवाद की बात करें। मुझे स्मरण है, आवडी के काग्रेस अधिवेशन में प जवाहरलाल नेहरू ने समाजवादी समाज-रचना का विचार रखते हुए कहा था, 'इससे साम्यवादी पाल की हवा निकाल देंगे। उस समय के काग्रेसियों ने सोचा उनकी हवा निकालकर उन पर अपना प्रभुत्व रखेंगे। मगर आज दिखाई देता है कि उसी शब्द का शिकार बनकर काग्रेस क्रमश बदलते-बदलते साम्यवादी पार्टी की गुलाम बन गई है। 'गुलाम' शब्द का प्रयोग मैंने जान-बूझकर किया है।

(५५) सत्ता का दुष्परिणाम

लोग यह कहते हैं कि राजसत्ता का बडा प्रभाव होता है। परतु प्रश्न यह है कि राजसत्ता के कारण हमारा दिमाग ठीक रहेगा, बुद्धि ठीक रहेगी, इसका विश्वास कहाँ है? राजसत्ता प्राप्त होने पर अनेक अच्छे-अच्छे लोगों में विकृति आ गई है। यह सत्ता का प्रभाव है। उसका परिणाम होता, मद रहता है। फिर अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए सभी प्रकार के भले-बुरे मार्गों का अवलबन करने की इच्छा होती है। तब सत्ता मिलने पर यह सब प्रकार के दुर्गणों की शिकार होकर राष्ट्र के लिये सकट नहीं बनेगी, ऐसा विश्वास कैसे और कहाँ से आएगा?

(५६) मैं क्या हूँ

'मैं क्या हूँ? क्या है मेरा अस्तित्व, मैं तो झाड का एक पत्ता हूँ। झाड की ऊँची टहनी पर लगा हुआ पत्ता, ऊपर होने के कारण सबको दूर से दिखता है। सूर्य-किरणें पडने से जो चमकीला भी दिखता है, वैसे ही मैं हूँ। झाड के हजारों-लाखों पत्ते होते हैं, वैसा ही ऊपर का चमकीला पत्ता भी एक पत्ता है, और ज्यादा क्या? उस पत्ते का जीवन-क्रम वैसा ही अन्य पत्तों के जीवन-क्रम जैसा ही है। टहनी पर फूटना, बढना, एक दिन वहाँ से छूटकर हवा के झकोरे के साथ बह कर नीचे गिरना, सडना, गलना और उसी पेड के नीचे खाद बनकर रहना।

जब तक झाड पर पत्ता है, तब तक उस पत्ते को ही नहीं, झाड के प्रत्येक अग-प्रत्यग को रस मिलता है, यह रस निकलने का काम समाप्त हो जाए तो प्रथम पत्ता सूख जाएगा और क्रम से सारा झाड भी सूख जाएगा।

यह अमृत जैसा रस ऊपर की टहनी तक पहुँचाने का काम पृथ्वी के नीचे से, अधेरे से अखड चलता रहता है। इसलिए पत्ते हैं, फूल है और रसीले फल भी।

यह जडें जैसे अपना काम करती हैं, वैसा ही काम अपने अनेकानेक स्वयसेवक भाई करते हैं और मेरे जैसा पत्ता ऊपर चमकता हुआ दिखाई दे रहा है।

जडें बडी नाजुक, कोमल हुआ करती हैं। नाखून लगाओ तो रस निकलता है, परतु उससे रस ग्रहण करनेवाली टहनियाँ क्रूरता से तोडनी,

काटनी पडती हैं। तने का टूटना मामूली काम नहीं है। जडें बडी भद्दी-सी दिखती हैं, परतु पत्ते, फूल खूबसूरत दिखते हैं।

इन जडों को थोडा-सा भी स्थान मिल जाए, कहीं मृतिका के कण मिल जाएँ, तो उसका रस चूसकर ऊपर पहुँचाने का काम अखड रूप से करती रहती हैं।

यह जड अपनी ईश्वरीय शक्ति है। मामूली मृतिका का रस चूसकर, उसका अमृत बनाकर वृक्षों को पिलाती है। अपने स्वयसेवक भी उनको जो सघ द्वारा प्राप्त ईश्वरीय गुण मिला है, उसके बल पर समाज के सब क्षेत्रों में प्रवेश कर उसको सघानुकूल बना लेते हैं।

यही सघ की शक्ति का असल स्रोत है। यहीं से शक्ति सचारित होती है, ऊपरवाली टहनी पर लगे पत्ते से नहीं। मिट्टी के रस का अमृत-रस बनाना, यह सघ का कार्य है, वह स्वयसेवक करते रहते है।

और साथ ही साथ यह भी करना पडता है कि ऊपर बढना है। ऊपर इतना बढना है कि आसमान को छू सकें। यह तब हो सकता है, जब रस ग्रहण करने वाली जडें, पृथ्वी तल के नीचे फैलें और समय पडे तो पाताल तक, जहाँ 'शेष' बैठा है, उसके माथे तक पहुँच कर रस ग्रहण करें। दोनों कार्यों को समझकर उसका सबध समझें।'

ffi ffi ffi

शारीरिक शक्ति आवश्यक है किंतु चरित्र उससे भी अधिक महत्त्व का है। बिना चरित्र के केवल शक्ति मनुष्य को पशु बना देगी। वैयक्तिक उसी प्रकार राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी चरित्र की शुद्धता राष्ट्र के वैभव एव महानता की जीवन–प्राण होती है।

— श्री गुरुजी

उद्बोधन

देश मे प्रवास के दौरान स्वयसेवको के अलावा अन्य कार्यक्रमो मे अथवा प्रबुद्धजनो के सम्मुख श्रीगुरुजी के बौद्धिक वर्ग होते थे। ऐसे ही कुछ चुने हुए बौद्धिक वर्गों के साराश।

१ सघकार्य मे प्रौढजनो का योगदान

(३ सितबर १६८३, बगलौर)

बगलौर की शाखा आप लोगों ने देखी है। प्रौढों की कुछ स्वाभाविक उदासीन वृत्ति और उनकी यह धारणा कि सघकार्य केवल छोटे बालकों के लिए है, यहॉ के कार्य के विकास में प्रमुख रुकावटें हैं। केवल लडकों को मिलाकर समाज नहीं बनता है। नगे बदन घूमनेवाले बालकों का समूह– ऐसी हम समाज की व्याख्या नहीं करते। जिन्होंने श्रेष्ठ कार्य किया है, जो प्रौढ हैं, उनसे अपना हिदू-समाज बना हे। दुनिया में पदार्पण करनेवाली नवीन पीढी की सुरक्षा और मार्गदर्शन का दायित्व प्रौढों पर है। समाज के वयोवृद्धों और बालकों के बीच की वह कडी हैं। एक सस्कृत श्लोक में वर्णन किया गया है कि हमारा क्रियाशील जीवन सौ वर्ष का है। हमें जिस तरह का सामाजिक गठन अभिप्रेत है, वह निर्माण करना पूर्णत १८ से ७५ वर्ष की आयु के उत्साही लोगों पर निर्भर है। नई पीढी को प्रोत्साहित करना उनका काम है। नई पीढी पर सगठित जीवन के सस्कार होकर वह अन्य बलिष्ठ समाज के साथ समकक्ष तथा सम्मानपूर्वक मित्रता के साथ रह सके तथा विश्व के सघर्षमय जीवन में दृढता से स्थिर रह सके, इस दिशा में प्रयत्न करना प्रौढ पीढी का कर्तव्य है। यह कार्य बच्चों का खेल नहीं है। अपना अधिकाश समाज इस प्रकार मार्गदर्शन के लिए उत्सुक है, परतु उसे गुमराह किया जाता है। इसलिए उसे प्रगति-पथ पर चलने के लिए प्रेरित करना अत्यत महत्त्वपूर्ण कार्य है। क्या करणीय है, क्या

अकरणीय है, ऐसी विवेक बुद्धि सभी में नहीं होती। सभी नि स्वार्थ बुद्धि से काम नहीं कर सकते। इसीलिए नि स्वार्थ बुद्धि से दूसरों का मार्गदर्शन करनेवाले कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। अपने विशाल हिंदू-समाज का मार्गदर्शन करने के लिए बडी सख्या में ऐसे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, जिनके भीतर यह गर्व नहीं है कि वे मार्गदर्शक हैं। केवल एक ही व्यक्ति, जो श्रेष्ठ गुणों से परिपूर्ण है, सपूर्ण समाज में चैतन्य पैदा नहीं कर सकता। पूर्वकाल में भी जब-जब ईश्वर ने अवतार ग्रहण किया, तब-तब वे अकेले नहीं, देवताओं की सेना के साथ अवतीर्ण हुए।

एकात्मता की अनुभूति से उदासीनता हटेगी

हम चाहते हैं कि समान विचार और श्रद्धा रखनेवाले असख्य लोगों के हृदय-मन एक ध्येय से प्रेरित हों। ऐसे कार्यकर्ता, जिनके हृदय में सपूर्ण समाज के प्रति विशुद्ध स्नेह है, भिन्न तथा विरोधी मतावलबी लोगों का भी जीवन सुधार सकते हैं। जो विचारक हैं, समाज की भावनाओं से समरस होते हैं, उनके प्रति पडोसियों के मन में स्वाभाविक आदरभाव रहता है तथा उनसे वे मार्गदर्शन की अपेक्षा करते हैं। विशुद्ध प्रेम से ओतप्रोत कर्तृत्वसपन्न लोग एकत्र होने पर, उनके सामूहिक जीवन की सघ-वृत्ति के स्पदन से सपूर्ण समाज-हृदय स्पदित हुए बिना नहीं रहेगा।

अन्य प्रांतों के प्रौढ व्यक्ति इस कार्य में उत्साह से योगदान कर समाज के घटकों को परस्परानुकूल कर समाज में एकता की भावना निर्माण कर रहे हैं। यहाँ विगत दो वर्षों से सघकार्य चल रहा है। उदीयमान पीढी भावी समाज की नींव है, अत उसमें कार्य विस्तार करने के लिए वर्तमान पीढी के प्रौढ व्यक्तियों को आगे आना चाहिए। यदि हम सब नियमपूर्वक एकत्र आकर कुछ व्यायाम आदि कार्यक्रम कर सकें तो वर्तमान समाज को बलशाली कर सकेंगे। यहाँ एकत्र आनेवाले युवकों की हमें उचित देखभाल करनी चाहिए। बगलौर, कर्नाटक प्रात का केंद्र है। अत इस केंद्र से पूरे प्रात में कार्य का प्रसार होना चाहिए। जैसा दूसरे प्रातों में हुआ, वैसे ही यहाँ भी प्रौढ व्यक्ति सघकार्य के लिए आगे आएँ और युवकों को प्रोत्साहित करें। जब सघकार्य पर हमारी निष्ठा होगी, तभी हम अपने जीवन में सघ का मार्गदर्शन स्वीकार कर सकेंगे। प्रतिष्ठित सज्जन एकत्र आकर विचार विनिमय करें तथा जीवन का व्यापक दृष्टिकोण अपनाएँ। अपने स्वभाव की व्यक्तिगत त्रुटियाँ तथा आपसी भली-बुरी धारणाएँ मिटाकर सबके लिए हितकारी काम एक हृदय से करने के पाठ सीखें।

नागपुर की एक घटना है। एक वृद्ध वकील थे। एक दिन सवेरे घर पर वे, उनकी लडकी और उनके दो पुत्र थे। पुत्र और दामाद काम से बाहर गए हुए थे। अचानक घर में आग लग गई। उस समय वृद्ध वकील साहब धार्मिक ग्रथ का पठन कर रहे थे। उन्होंने धुआँ देखा, परतु यह सोचकर कि धुआँ अपने घर से नहीं निकल रहा है, उसकी ओर दुर्लक्ष किया। पर जब पुत्री चिल्लाती हुई आई कि घर में आग लगी है, तब क्षणार्ध में वृद्ध सज्जन की उदासीनता और शात वृत्ति भग हुई। वे सभ्रमित हुए, उनका मन पर काबू नहीं रहा और 'बचाओ', 'मर गया' चिल्लाते हुए घर के बाहर दौडे। उनके चारों ओर धार्मिक और मौखिक सहानुभूति दिखानेवाले लोगों का जमघट लग गया। उस समय, उस मकान के निकट ही सघ-शिक्षा वर्ग चल रहा था। प्रात कालीन कार्यक्रम में कुछ स्वयसेवक अनुपस्थित देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। दोपहर को २५-३० स्वयसेवक, जिनके कपडे और हाथ-पैर काले हो गए थे, मुझसे मिले और आग लगने की घटना का पूरा वृत्तात बतलाया। ये स्वयसेवक जब घटनास्थल पर पहुँचे, तब उन्होंने देखा कि हाथ पर हाथ धरे दर्शकों की भीड लगी हुई है। स्वयसेवकों ने जलते घर के भीतर प्रवेश किया और आग में घिरे दो बच्चों को उनकी माता के साथ घर से बाहर निकाला। उसके बाद उन्होंने फोन से अग्निशामक दल को घटना की सूचना दी। स्वयसेवकों ने यह सब कुछ किया, परतु पडोसी केवल तमाशा देखते खडे रहे। उन्होंने वेदात चर्चा बहुत की होगी, परतु उनका प्रत्यक्ष आचरण वेदात के अनुसार नहीं था।

आज सुशिक्षित लोगों में समाज के सबध में दिखाई देनेवाली उदासीनता की चर्चा किसी भी दर्शन-शास्त्र के ग्रथों में नहीं है। दैनिक सपर्क और एकात्मता की अनुभूति से यह उदासीनता दूर हो सकती है। मदिर में केवल एकत्र आने से एकता निर्माण नहीं होती। आज अपने देश में हर कोई दूसरे के बारे में तुच्छता प्रकट करता है। साधारणतया बगाली, बिहारी, मद्रासी नाम से सबोधित किया जाता है। हमें यह भिन्नता भूल जानी चाहिए। वैसे सामाजिक एकता का बोध होना कोई नई बात नहीं है, परतु आज उसका विस्मरण हो गया है। राख से ढँके अग्निस्फुल्लिग के समान हमारे अन्दर आतरिक एकता निश्चित रूप से विद्यमान है। झझावात से ऊपरी राख उडाकर फिर से अग्नि प्रज्ज्वलित करनी चाहिए। इससे अपने समाज-जीवन की आतरिक एकता प्रकट होगी। विश्व में सम्मानपूर्वक जीवित रहने का यही एकमात्र मार्ग है।

चारित्र्यसपन्न समाज ही शक्तिपुज है

दुनिया सौजन्य और सद्गुणों का वस्तुनिष्ठ विचार नहीं करती। वह शक्ति को पहचानती है। सबल, दुर्बलों को खा जाते हैं, इसलिए हम बलवान बनें, ताकि कोई हमें भक्ष्य न बना सके। अपने हिंदू-समाज के अस्तित्व पर ही विश्व की सुसस्कृतता निर्भर है। विश्व के भिन्न-भिन्न मतावलबियों को पूर्ण सतोष देने का सामर्थ्य अपने दर्शन-शास्त्र में है। विश्व को सहजीवन के पाठ देते हुए चिरतन विश्व-शाति प्रस्थापित करने की क्षमता केवल हिंदू-समाज में ही है। परतु आज जिस अवस्था में अपना समाज है, उसमें से हम कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

कार्य का प्रारभ स्वत से होना चाहिए। छोटे बालकों को पढाते समय, मानसिक दृष्टि से दिए गए दड का लाभ होता है। शिक्षकों को अपने चरित्रबल से छात्रों को अनुशासन में रखना चाहिए। नैतिक दड से बालक को अपनी भूल त्वरित अनुभव होती है। ऐसे विद्यार्थी, जिनमें सद्गुणों का विकास हुआ है, भविष्य में समाज शक्ति का स्रोत होते हैं। चरित्रसपन्न समाज ही शक्तिपुज है, जो समाज के प्रत्येक व्यक्ति को बल प्रदान करता है। इस समाज की नींव अत्यत सुदृढ है, परतु उसपर निर्मित प्रासाद ढह रहा है। व्यक्ति-व्यक्ति के चारित्र्य और एकता से निर्माण होनेवाली ऊपरी रचना पुन निर्माण करनी होगी। सुदृढ रचना के लिए निरपेक्ष, स्नेह रूपी सीमेंट की आवश्यकता है। उसके लिए भीषण क्रांतिकारी परिवतन की आवश्यकता नहीं है। केवल समाजविषयक अपने दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन कर प्रत्येक को जीवन-दृष्टि बदलनी होगी। यह अत्यत सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक क्रांति है।

सारे हिंदुओं को अनुभव करना चाहिए कि अपना एक सहजीवन है। सहजीवन के बोध से निर्माण होनेवाले सामर्थ्य की जिन्हें अनुभूति है और जो कार्यरत हैं, वे यह प्रखर भावना दूसरे किसी भी असहाय निर्धन व्यक्ति में सक्रमित कर सकते हैं। इसी प्रकार से ग्रामों में बसनेवाले बधुओं का भी सगठन कर सकते हैं। कुछ मात्रा में यह हुआ भी है। अपने कार्यकर्ताओं के कुशल व्यवहार और सपर्क से यह सभव हुआ है। अपने समाज की एकात्मता की अनुभूति से तथा परस्पर स्नेहपूर्ण बधुभाव से समाज में सामर्थ्य पैदा होगा और फलस्वरूप अपना समाज गौरवपूण जीवन सतोष से बिता सकेगा। सप्रति हिंदू-समाज तक ही हमारे कार्य की मर्यादा है। इससे अधिक कार्यविस्तार करना भी सभव है, परतु अपने घर के प्रबध की प्रथम आवश्यकता है।

ऽऽऽ

२ हमारी सस्कृति की अखड धारा

(दिल्ली, जून १९४७)

हमारे सामाजिक जीवन में आज दिन-प्रतिदिन अनेकानेक घटनाएँ घटित होती हैं और उन्हीं के परिणामस्वरूप जनता के अत करण में एक प्रतिक्रिया उत्पन्न होती है। परिस्थिति की भीषणता को देखकर लोग डरते हैं और उस अवस्था में प्रश्न करते हैं कि अब सघ क्या करेगा? बडी उत्सुकता से वे प्रतीक्षा करते हैं कि देखें, अब सघ क्या कहता है, क्या करता है? परतु सघ तो प्रतिक्रियात्मक कार्यप्रणाली का अनुसरण करनेवाला नहीं है। वह तो दिन-प्रतिदिन की होनेवाली इन घटनाओं से अविचलित रहता हुआ निरतर अपने ध्येय-मार्ग पर अग्रसर होता रहता है। ये घटनाएँ तो उसके जीवन के प्रारभिक काल से ही प्रचुर मात्रा में होती रही हैं, परतु सघ सदैव अपनी ही कार्यप्रणाली पर दृढ रहा है। कठिनाइयाँ सदा ही मार्ग में आती रहीं हैं, परतु उनकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप सघ को अपनी कार्यपद्धति में परिवर्तन करने की आवश्यकता कभी नहीं हुई।

सस्कृति-सगम या सस्कृति-सकर?

आज हम अपने सम्मुख एक बात देखते हैं। राष्ट्र का दुर्भाग्य कहो या सौभाग्य, अनेक व्यक्ति मानवता की दृष्टि को अपने सम्मुख रखकर भिन्न-भिन्न विचारधारा रखनेवाले व्यक्तियों का एक ही भारतमाता की सतान होने के नाते उनके उस माता के सबध में क्या विचार हैं। इसकी चिता न करते हुए सगठन करने में प्रयत्नशील हैं। पिछले एक सहस्र वर्ष की ऐतिहासिक घटनाओं और सघर्षो की शृखलाओं को विस्मृत कर, वे लोग विरोधी भावों तथा विभिन्न आदर्शो से प्रेरित होनेवाले भिन्न-भिन्न सस्कृति के अनुयायियों के एकीकरण में लगे हुए हैं। भारतवर्ष के इतिहास में इस प्रकार का प्रयत्न कोई नई बात नहीं है। अनेक बार बडे-बडे पुरुषों ने मानवता के परमश्रेष्ठ संदेश के आधार पर, परस्पर सघर्ष में लगे हुए लोगों में एकात्मता निर्माण करने की, विरोधी भावापन्न लोगों का एकत्रीकरण करने की तथा एक दूसरे से सर्वथा भिन्न प्रभाव डालनेवाली सस्कृतियों का सगम करने की चेष्टा की है। परतु इतने प्रयत्नों के होने पर भी न तो सघर्ष समाप्त हुआ और न वह सगम ही सभव हो सका। ऐसा ही एक प्रयत्न आज भी हो रहा है। हम देखते हैं कि एक परमश्रेष्ठ पुरुष अपनी सपूर्ण मानसिक शक्तियों को एकत्र करके, अपनी आत्मा की सपूर्ण ज्योति

को केंद्रित करके, परस्पर का विरोध तथा सघर्ष मिटाने हेतु जीवन के पवित्र सिद्धातों के आधार पर भिन्न-भिन्न मत चलानेवालों के सामने सदुपदेश रखकर, उसी प्रकार सगम करने में लगा हुआ है। परतु उसका परिणाम क्या हो रहा है और क्या होगा, इस पर मैं कुछ भी नहीं कहता। इस पर लोग स्वय ही विचार करें। एक वात अवश्य प्रत्यक्ष है कि जिन सस्कृतियों के सगम करने का उसने आजीवन प्रयत्न किया, वे सस्कृतियाँ आज एक दूसरे से पहले की अपेक्षा और भी अधिक दूर चली गई हैं। अपने पूर्व के इतिहास में इसी प्रकार का एक प्रयत्न पहले भी हुआ था। एक ससारमुक्त साधु ने उस समय सघर्ष में जुटी हुई दोनों सस्कृतियों के सिद्धातों को सम्मुख रखकर एक नवीन पथ का निर्माण किया। परतु परिणाम यही हुआ कि विभिन्न सस्कृतियों का सगम करने में सचेष्ट उसी गुरु नानक के वशज गुरु गोविदसिह को भी अत में अपनी ही सस्कृति को वचाने के लिए खड्ग हाथ में उठाना पडा। अपनी सस्कृति की रचना को न खोते हुए, अपने आदर्शो को विस्मृत न करते हुए, अन्य लोगों के प्रति सद्भावना रखने की एक विधि सगठन-निमाण करने की है। दूसरों के सम्मुख आत्मसमर्पण करने से, भिक्षा माँगने से ओर घुटने टेकने से वह निर्माण नहीं किया जा सकता। अपने सामर्थ्य को न खोते हुए, आत्मनिर्भरता तथा आत्मविश्वास के द्वारा ही इस प्रकार का सगम सभव है। अपने तथा अन्य देशों में होनेवाली अनेक घटनाओं से इस सिद्धात की पुष्टि होती है। इतिहास के ज्ञाता भी इसका अनुमोदन ही करेंगे। यह तो स्पष्ट ही है कि मैत्री स्थापित करने हेतु यदि कोई अपना दुर्वल हाथ एक असस्कृत वलशाली के सम्मुख बढाएगा तो वह उसका हाथ क्यों पकडेगा? उसको उसके साथ मैत्री-सबध स्थापित करने में कोई लाभ नहीं होगा। इस विषय में एक छोटी-सी कहानी मुझे स्मरण आती है। एक अत्यत वलशाली दैत्य और एक छोटा-सा वामन, एक समय पास-पास रहते थे। वामन ने दैत्य से मैत्री का प्रस्ताव किया और कहा कि चलो हम दोनों साहस के कार्य करें। दैत्य ने इसे स्वीकार किया और तव दोनों मित्र वीरता के कार्य करने के लिए निकल पडे। चलते-चलते उनके मार्ग में लुटेरों का अड्डा आया। वामन महोदय ने वडे जोर से उसपर आक्रमण किया, परतु उसे अपनी एक टाँग खोनी पडी। दैत्य ने उन सवको मार भगाया और उनके सारे धन पर अधिकार कर लिया। आगे चलकर उनको दुष्टों का एक राज्य मिला। दुर्दम्य साहस से वामन ने उस राज्य के रक्षकों पर धावा बोल दिया। उसका फल इतना ही मिला कि वामन का एक हाथ जाता रहा। दैत्य ने जव आक्रमण किया तो

अनेक दुष्ट लोग मारे गए और जो बचे, वे भाग गए। नगर पर दैत्य का अधिकार हो गया। कुछ समय पश्चात् इनको खबर मिली कि एक अतीव सुदर युवती को एक अत्याचारी राक्षस ने अपनी कैद में डाल रखा है। वामन का साहस अभी कम नहीं हुआ था। एक टॉग और एक हाथ के द्वारा वह उत्साहपूर्वक उसे मुक्त करने के लिए चल दिया। इस बार भी वही हुआ कि उसको अपनी ऑख खोकर एकाक्ष बनना पडा परतु दैत्य को वह सुदर स्त्री प्राप्त हुई। सबल तथा दुर्बल की मित्रता का परिणाम यही होता है। सबल को सब लाभ प्राप्त होते हैं और निर्बल को अपने हाथ-पैर तुडवाकर ससार में तुच्छ जीवन बिताने के लिए बाध्य होना पडता है। अपने बल-सामर्थ्य का विचार किए बिना ही यदि कोई अपना दुर्बल हाथ किसी असस्कृत बलशाली के सम्मुख मैत्री हेतु बढाएगा, तो वह उसे स्वीकार ही क्यों करेगा? एक सबल व्यक्ति व्यर्थ में ही एक दुर्बल व्यक्ति की रक्षा की जिम्मेदारी क्यों अपने सिर लेने लगा? बल्कि वह शक्तिशाली यदि कह दे कि तुम मरते हो तो मरो, यही नहीं, अपितु मरते देखकर ऊपर से दो ठोकर स्वय भी मार दे, तो इसमें भी कोई वैचित्र्य नहीं है। यह तो ससार का एक सामान्य व्यवहार ही है। इसके विपरीत यदि कोई सामर्थ्यसपन्नता, बलसपन्नता के साथ अपना कठोर भुजदड आगे बढाता है तो उसके हाथ की मासपेशियों और उगलियों की दृढता एव पुष्टता को देखकर ही दूसरा व्यक्ति सघर्ष की भावना भूल जाएगा और तुरत मित्र बनने के लिये तैयार हो जाएगा। असस्कृत बलशाली से मैत्री स्थापित करने की एकमात्र विधि यही है। हिंदू-समाज के उत्तरादायित्वपूर्ण व्यक्ति, जिनकी बुद्धि पर भूत सवार नहीं है, अवश्य यह मानते हैं कि जब तक हिंदू-समाज शक्तिशाली नहीं होता, अपने पूर्वजों का, जिन्होंने यावच्चद्रदिवाकरौ विस्मृत न होनेवाले अपने प्रताप को अखिल विश्व में प्रकट किया था मार्ग अनुसरण नहीं करता, अपनी सस्कृति तथा स्वधम पर निश्चितता के साथ दृढ रहने का सकल्प नहीं रखता, तब तक सगम सभव नहीं। इसके विपरीत दुर्बलता की अवस्था में किए जानेवाले सस्कृति-सगम का प्रयत्न तो सस्कृति-सकर ही निर्माण करेगा, सस्कृति-सगम नहीं।

अधिकार-लालसा बाधक

परतु हमारे सामने अब प्रश्न यह है कि करना क्या चाहिए? कहने को तो प्रत्येक ही कहता है कि सगठन होना चाहिए पारस्परिक भेदभाव को त्यागकर एकता-निर्माण करनी चाहिए, परतु हमारे दुर्भाग्य से आज यह

विशेषाधिकार प्राप्त करने हेतु लड़ रहे हैं। मानो बहुत-से पुत्र अपनी माता के शरीर के अंगविच्छेद करने की चेष्टा में रत हैं। ऐसे घृणास्पद दृश्य को देखकर जो घृणा के भाव हृदय में जागृत हुए, वे शब्दों में प्रकट हुए बिना रह नहीं सके। एक सौ वर्ष के जागरण के पश्चात् हमने प्राप्त की है अपने समाज की छिन्न-विच्छिन्नता, बल के स्थान पर दुर्बलता तथा शक्ति के स्थान पर शक्ति-विहीनता।

हमारी उदारता और निःस्पृहता

आज हम बड़े-बड़े भाषण कर सकते हैं। अपने भाषण में चंद्रमा पर आक्रमण करनेवाली उत्तेजना प्रकट कर सकते हैं, बड़े-बड़े उच्च सिद्धांतों की घोषणा तथा व्याख्या कर सकते हैं, विचित्र-से-विचित्र भावों का प्रदर्शन कर सकते हैं और ऐसा करने के पश्चात् स्वयं अपनी पीठ भी ठोक सकते हैं, कि देखो हमने क्या-क्या कहा, पर कोई सोचता नहीं कि हमारे शब्दों के पीछे कार्य क्या है, सिद्धांतों की घोषणाओं के पीछे सामर्थ्य क्या है और उत्सुकता का वातावरण निर्माण करनेवाली इन बातों के पीछे शक्ति क्या है? अपने समाज पर होनेवाले अत्याचारों के सम्मुख शक्तिहीन होने के कारण नतमस्तक होकर लज्जा अनुभव करनेवाली शर्म की भाषा, प्रतिक्रिया के रूप में आक्रमण की याद कर व्यथित होनेवाले समाज की वेदना तो दिखाई देती है, परंतु संगठन कहीं भी दिखाई नहीं देता। एक ओर तो है हिंदू के नाते अपना जीवन व्यतीत करना छोड़कर तथाकथित विशाल दृष्टिकोण लेकर संगम की मृगमरीचिका के पीछे दौड़-धूप और दूसरी ओर है आघातों से आहत होकर प्रत्येक घटना से भयभीत होकर रोता हुआ, शरणागति के मार्ग का अनुसरण करता हुआ और रक्षा की भिक्षा माँगता हुआ अपना दुर्बल समाज। कैसा दृश्य है? यह क्या अच्छा जागरण है? कैसी उन्नति है? हम समझते हैं कि हमारा उत्थान हो रहा है। हम दुनिया की मित्रता करने को निकले हैं, परंतु किसी की चुटकी की आवाज सुनते ही हम भयभीत हो जाते हैं। आश्चर्य वह चुटकी ही हमारे लिए तोप बन जाती है। ऐसी असहाय अवस्था में यदि कोई शक्ति संचय करके रक्षा के लिए खड़ा होता है तो अपने ही यहाँ ऐसे सुयोग्य पुरुष हैं, जो कहते हैं, 'शक्ति एकत्रित मत करो, आत्महत्या ही धर्म है, आत्मरक्षा पाप है।' यह कहकर वे अपनी विचित्र नीतिमत्ता का नमूना सम्मुख रखते हैं। बलशाली न बनो, इस डर से कि कहीं कोई अधिक क्रुद्ध न हो जाए। अभी की ही घटना है— हमारे कुछ श्रेष्ठ पुरुषों ने कहा है 'आत्मरक्षा न

स्थिति दिखाई नहीं देती। हम आज अपने समाज का चित्र देखेंगे, तो हमें अनुभव होगा कि जितने पारस्परिक भेद हमारे समाज में आज हैं, इससे पूर्व उतने कभी नहीं थे। यद्यपि कहा जा रहा है कि हम एकता निर्माण कर रहे हैं, परतु वास्तव में जो भेद आज से सौ वर्ष पूर्व हमारे समाज में नहीं थे, वे आज उत्पन्न हो गए हैं। अपने-अपने सप्रदाय को लेकर आज सभी यह कहते दिखाई देते हैं कि 'हम तो हिदू-समाज से अलग हैं, हम तो अपने अधिकार अलग ही प्राप्त करेंगे, अपनी डेढ चावल की खिचडी अलग ही पकाएँगे, अपना चौका अलग ही रखेंगे।' आज प्रत्येक जाति, उपजाति शेष समाज से पृथक होकर इस प्रकार की घोषणा करती दिखाई देती है कि 'हमारा हिदू-समाज से कोई सबध नहीं। हमारा अधिकार शेष समाज से अलग है। हमारी इच्छा शेष समाज की इच्छा से अलग है। अतएव हम अपनी जाति को शेष समाज से पृथक करना चाहते हैं।

बडे-बडे बुद्धिमान, ख्याति-प्राप्त पुरुष एकत्रित होकर सम्मेलनों का आयोजन करते, सधि की वार्ता करते हैं तथा अत में बँटवारे की विधि का विधान रचते दृष्टिगोचर होते हैं। समाज हित के लिए, समस्त राष्ट्र के हेतु आत्मसमर्पण की भावना का सर्वथा अभाव हे, यही है आज हमारे समाज का चित्र। हमारी जाति को इतने-इतने अधिकार दे दो, फिर शेष समाज चाहे जिए या मरे, अर्थात् अपनी माता की बॉह काटकर हमारे लिए अलग दे दो, ऐसा कहनेवाले माता के निकम्मे पुत्र बने हुए हैं। ऐसे लोगों को पुत्र भी कहना चाहिए या नहीं, इसमें भी सदेह है। जेसे किसी मृतप्राय जानवर को घेरकर बहुत-से गिद्ध इधर-उधर चारों ओर से उसका मास नोच-नोचकर ले जाने के लिये चेष्टा कर रहे हों तथा उनमें से यदि कोई अधिक बडा अग नोच-खसोट लेता है, तब वे परस्पर लडने लगते हैं। अथवा जेसे किसी जगल में चोर एकत्रित होकर लूटे हुए धन के लिए परस्पर झगडते हैं, वैसे ही आजकल हम अपनी माता के अग-प्रत्यग काट-काटकर उनके बँटवारे के लिए परस्पर सघर्ष कर रहे हैं।

दुर्भाग्य है कि इस प्रकार के कटु शब्द आज प्रयोग करने पडे हैं। परतु जिस हृदय में हिदू-समाज की छिन्न-विच्छिन्नता को देखकर, इधर-उधर चतुर्दिक अधिकारों तथा बँटवारे की मॉग देखकर एक असह्य पीडा होती हो, वह चुप कैसे रहे? हिदू-राष्ट्र के इस गर्हित जीवन का चित्र क्या किसी भी हृदय में प्रसन्नता उत्पन्न करेगा? अनेक प्रयत्नों के पश्चात् अपने ही समाज के मत-मतातर एक दूसरे के शत्रु बनकर अपने ही समाज से क्षुद्र

विशेषाधिकार प्राप्त करने हेतु लड रहे हैं। मानो बहुत-से पुत्र अपनी माता के शरीर के अंगविच्छेद करने की चेष्टा में रत हैं। ऐसे घृणास्पद दृश्य को देखकर जो घृणा के भाव हृदय में जागृत हुए, वे शब्दों में प्रकट हुए बिना रह नहीं सके। एक सौ वर्ष के जागरण के पश्चात् हमने प्राप्त की है अपने समाज की छिन्न-विच्छिन्नता, बल के स्थान पर दुर्बलता तथा शक्ति के स्थान पर शक्ति-विहीनता।

हमारी उदारता और निःस्पृहता

आज हम बडे-बडे भाषण कर सकते हैं। अपने भाषण में चद्रमा पर आक्रमण करनेवाली उत्तेजना प्रकट कर सकते हैं, बडे-बडे उच्च सिद्धातों की घोषणा तथा व्याख्या कर सकते हैं, विचित्र-से-विचित्र भावों का प्रदर्शन कर सकते हैं और ऐसा करने के पश्चात् स्वय अपनी पीठ भी ठोक सकते हैं, कि देखो हमने क्या-क्या कहा, पर कोई सोचता नहीं कि हमारे शब्दों के पीछे कार्य क्या है, सिद्धातों की घोषणाओं के पीछे सामर्थ्य क्या है और उत्सुकता का वातावरण निर्माण करनेवाली इन बातों के पीछे शक्ति क्या है? अपने समाज पर होनेवाले अत्याचारों के सम्मुख शक्तिहीन होने के कारण नतमस्तक होकर लज्जा अनुभव करनेवाली शर्म की भाषा, प्रतिक्रिया के रूप में आक्रमण की याद कर व्यथित होनेवाले समाज की वेदना तो दिखाई देती है, परतु सगठन कहीं भी दिखाई नहीं देता। एक ओर तो है हिंदू के नाते अपना जीवन व्यतीत करना छोडकर तथाकथित विशाल दृष्टिकोण लेकर सगम की मृगमरीचिका के पीछे दौड-धूप और दूसरी ओर है आघातों से आहत होकर प्रत्येक घटना से भयभीत होकर रोता हुआ, शरणागति के मार्ग का अनुसरण करता हुआ और रक्षा की भिक्षा माँगता हुआ अपना दुर्बल समाज। कैसा दृश्य है? यह क्या अच्छा जागरण है? कैसी उन्नति है? हम समझते हैं कि हमारा उत्थान हो रहा है। हम दुनिया की मित्रता करने को निकले हैं, परतु किसी की चुटकी की आवाज सुनते ही हम भयभीत हो जाते हैं। आश्चर्य वह चुटकी ही हमारे लिए तोप बन जाती है। ऐसी असहाय अवस्था में यदि कोई शक्ति सचय करके रक्षा के लिए खडा होता है तो अपने ही यहाँ ऐसे सुयोग्य पुरुष हैं, जो कहते हैं, 'शक्ति एकत्रित मत करो, आत्महत्या ही धर्म है, आत्मरक्षा पाप है।' यह कहकर वे अपनी विचित्र नीतिमत्ता का नमूना सम्मुख रखते हैं। बलशाली न बनो, इस डर से कि कहीं कोई अधिक क्रुद्ध न हो जाए। अभी की ही घटना है— हमारे कुछ श्रेष्ठ पुरुषों ने कहा है 'आत्मरक्षा न

विषय में कुछ विचार ही नहीं किया? क्या उनमें अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना ही नहीं थी? उत्तर यही है कि 'हम ऐसा कदापि नहीं कह सकते।' फिर यह असफलता, यह निराशा के दृश्य क्यों? इसका कारण है अपने पूर्वजों के गौरवशाली इतिहास को विस्मृत कर देना, प्राचीन सस्कृति की अवहेलना करना तथा विश्वभर के अनुभव से सपादित अपने पूर्वपुरुषों के ज्ञान का तिरस्कार करना। आज प्रयत्न हो रहा है अपने इतिहास को विस्मृत करने का। शिवाजी का नाम लेते हो? खबरदार। महाराणा प्रताप? वह अदूरदर्शी था, उसे भूल जाओ। विक्रमादित्य की वीरता? केवल दतकथाएँ हैं। चद्रगुप्त, चाणक्य आदि के नाम भी न लो। इतिहास पढना है तो अमरीका के स्वातत्र्य युद्ध का पढो। जीवन-गाथाएँ पढनी हैं तो स्टालिन, मैजिनी, नेपोलियन की पढो। तात्पर्य यह कि अपने भारतीयत्व से ओतप्रोत ऐतिहासिक ज्वलत उदाहरणों के आदर्शो को छोडकर दूसरों के सामने भीख माँगों, उनके गुणगान गाओ, भिक्षा का कटोरा लिए 'देनेवाले दाता राम' कहकर चिल्लाओ। यही है हमारे गत सौ वर्ष से प्राप्त शिक्षा तथा सस्कार। प्रत्येक वस्तु के लिये, बुद्धि के लिए, आदर्श के लिए तथा अपने समाज की रचना के लिए दूसरों से भीख माँगते हैं। आज जिन महापुरुषों की प्रतिभा के सम्मुख सभी सिर झुकाते हैं, वे भी अपना आत्मविस्मरण करके रूस का माडल (Model) अपनी स्वातत्र्य-प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित करते हैं। यह है हमारी बौद्धिक गुलामी की पराकाष्ठा। राजनैतिक आदर्शों के लिए बाहर ही खोजने का प्रयत्न, अपने देश की आर्थिक उन्नति के लिये भी अन्य देशों की गुलामी। आज यह गुलामी हमारी बुद्धि पर, हमारे अत करण पर अधिकार कर चुकी है। बाह्य देशों से स्फूर्ति ग्रहण करते हुए बडे-बडे शब्दाडबर स्वतत्रता, समता और बधुता आदि का उच्चारण करते रहना हमारा स्वभाव बन गया है। परतु अपने मन की भावना को विस्मृत करके निर्माण किया हुआ भारतीयत्व से विहीन तत्र किस प्रकार 'स्व-तत्र' कहलाएगा। इसपर कोई विचार नहीं करता।

अपनी बुद्धि को अन्य देशों के सस्कारों की दासता से मुक्त रखकर अपनी ही इच्छानुसार अपनेपन की भावना से युक्त जीवन का विकास करने के तत्र को 'स्व-तत्र' कहते हैं। परतु अपने इतिहास को, अपने भारतीयत्व को तथा अपनेपन के अभिमान को भुलाकर, परकीय बुद्धि के दास बनकर, अन्य समाजों से स्फूर्ति प्राप्त करके निर्माण किया हुआ तत्र तो स्व-तत्र न होकर पर-तत्र ही होगा। रूस के आदर्शों के आधार पर निर्मित तत्र

करो, बैठे-बैठे मरो, 'किसी प्रकार का प्रतिकार न करते हुए मरो।' यह पौरुष का आदर्श आज हमारे सम्मुख है। यही है हमारी भगवद्गीता के प्रारभ में वर्णित क्लीव बने हुए अर्जुन का विषादयोग। गीता के शास्त्र से पूर्व मोहित अर्जुन ने भी शस्त्रास्त्र त्यागकर सम्मुख खड़े हुए अपने प्रिय सबंधियों के मोह में युद्ध के परिणाम की आशका के कारण कपित हृदय में व्याप्त अपनी कायरता को छिपाने के लिए इसी प्रकार धर्म की, आध्यात्मिकता की, वैराग्यवृत्ति की तथा नि स्पृहता की बड़ी-बड़ी व्याख्याएँ की थीं। इधर-उधर की पचासों बातें बनाकर युद्ध के परिणाम का भीषण दृश्य श्रीकृष्ण के सम्मुख खींचा था-'मैं भीख माँगकर रहूँगा, अपने गर्व और सम्मान को मैंने एक ओर रख दिया है, 'धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतर भवेत्', मैं प्रतिकार नहीं करूँगा, कौरव मारें तो मारें, मैं शात रहूँगा' कहकर उदारता प्रकट की थी। अर्जुन का यह युक्तिवाद तथा आज का प्रचलित युक्तिवाद एक ही है। आज भी श्रीकृष्ण एव मोहित अर्जुन के दृश्य हमारे समक्ष हैं। आज की त्रस्त, अत्याचारपीडित असहाय जनता अर्जुन है। महाभारत में शत-शत योद्धाओं को अपने बाणों से पलायित करनेवाला वीर अर्जुन नहीं, अपितु विराट के यहाँ कुमारियों में कोमलता की शिक्षा से शिक्षित नृत्यकारी अर्जुन है। जिसके लिए भगवान श्रीकृष्ण ने उपहारस्वरूप प्रथम विशेषण दिया था– 'क्लैब्यम्,' और कहा था– 'नपुसकता से परिपूर्ण पौरुषहीन, ऊँची-ऊँची बातें न करो, विद्वत्ता प्रदर्शित करके वादों (isms) की व्याख्याएँ न करो। यह प्रज्ञावाद क्लीवता के सिवाय कुछ भी नहीं है। अपनी 'अनार्यजुष्टम्' वृत्ति को आवृत करके यह उदारता की भावना प्रकट करने की चेष्टा न करो। क्या हम आज भी उदारता का यही चित्र अपने सामने रखें, लडने से डरनेवाले अर्जुन का आदर्श निर्माण करें और श्रीकृष्ण के वचन भूलकर क्लीव कहलाएँ? सौ वर्षों के जागरण का क्या यही परिणाम है? बुद्धिमान पुरुषों को प्रिय आज का यह युक्तिवाद ही हम इतनी जागृति के द्वारा यदि प्राप्त कर सके हैं, तो ऐसी बुद्धिमत्ता, ऐसे युक्तिवाद तथा ऐसे जागरण से परमात्मा बचाए। समस्त शौर्य, पराक्रम तथा आत्मगौरव की भावनाओं को विस्मृत करके, सब प्रकार के षढत्व तथा मुर्दापन को स्वीकार करें हृदय में मातृभूमि के प्रति श्रेष्ठतम आदर्शों को भूलकर बँटवारे की कापुरुषतापूर्ण भावनाएँ अपनाएँ। यदि सौ वर्ष के हमारे अनवरत कार्य के परिश्रम का यही फल है तो इससे क्या लाभ?

भारतीयत्व से विहीन तत्र तो पारतत्र्य ही है

परतु एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या सौ वर्षों में लोगों ने इस

विषय में कुछ विचार ही नहीं किया? क्या उनमें अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना ही नहीं थी? उत्तर यही है कि 'हम ऐसा कदापि नहीं कह सकते।' फिर यह असफलता, यह निराशा के दृश्य क्यों? इसका कारण है अपने पूर्वजों के गौरवशाली इतिहास को विस्मृत कर देना, प्राचीन संस्कृति की अवहेलना करना तथा विश्वभर के अनुभव से संपादित अपने पूर्वपुरुषों के ज्ञान का तिरस्कार करना। आज प्रयत्न हो रहा है अपने इतिहास को विस्मृत करने का। शिवाजी का नाम लेते हो? खबरदार। महाराणा प्रताप? वह अदूरदर्शी था, उसे भूल जाओ। विक्रमादित्य की वीरता? केवल दंतकथाएँ हैं। चंद्रगुप्त, चाणक्य आदि के नाम भी न लो। इतिहास पढना है तो अमरीका के स्वातंत्र्य युद्ध का पढो। जीवन-गाथाएँ पढनी हैं तो स्टालिन, मैजिनी, नेपोलियन की पढो। तात्पर्य यह कि अपने भारतीयत्व से ओतप्रोत ऐतिहासिक ज्वलंत उदाहरणों के आदर्शों को छोडकर दूसरों के सामने भीख माँगों, उनके गुणगान गाओ, भिक्षा का कटोरा लिए 'देनेवाले दाता राम' कहकर चिल्लाओ। यही है हमारे गत सौ वर्ष से प्राप्त शिक्षा तथा संस्कार। प्रत्येक वस्तु के लिये, बुद्धि के लिए, आदर्श के लिए तथा अपने समाज की रचना के लिए दूसरों से भीख माँगते हैं। आज जिन महापुरुषों की प्रतिभा के सम्मुख सभी सिर झुकाते हैं, वे भी अपना आत्मविस्मरण करके रूस का माडल (Model) अपनी स्वातंत्र्य-प्राप्ति का लक्ष्य निर्धारित करते हैं। यह है हमारी बौद्धिक गुलामी की पराकाष्ठा। राजनैतिक आदर्शों के लिए बाहर ही खोजने का प्रयत्न, अपने देश की आर्थिक उन्नति के लिये भी अन्य देशों की गुलामी। आज यह गुलामी हमारी बुद्धि पर, हमारे अंतःकरण पर अधिकार कर चुकी है। बाह्य देशों से स्फूर्ति ग्रहण करते हुए बडे-बडे शब्दाडंबर स्वतंत्रता, समता और बंधुता आदि का उच्चारण करते रहना हमारा स्वभाव बन गया है। परंतु अपने मन की भावना को विस्मृत करके निर्माण किया हुआ भारतीयत्व से विहीन तंत्र किस प्रकार 'स्व-तंत्र' कहलाएगा। इसपर कोई विचार नहीं करता।

अपनी बुद्धि को अन्य देशों के संस्कारों की दासता से मुक्त रखकर अपनी ही इच्छानुसार अपनेपन की भावना से युक्त जीवन का विकास करने के तंत्र को 'स्व-तंत्र' कहते हैं। परंतु अपने इतिहास को, अपने भारतीयत्व को तथा अपनेपन के अभिमान को भुलाकर, परकीय बुद्धि के दास बनकर, अन्य समाजों से स्फूर्ति प्राप्त करके निर्माण किया हुआ तंत्र तो स्व-तंत्र न होकर पर-तंत्र ही होगा। रूस के आदर्शों के आधार पर निर्मित तंत्र

'रूस-तंत्र' होगा, 'स्व-तंत्र' नहीं। इंग्लैंड के संरक्षण में वहाँ के राजनीतिज्ञों की प्रेरणा के अनुकूल बनाया हुआ तंत्र, इंग्लैंड का तंत्र होगा। अमरीका के Federation को देखकर स्वयं भी फेडरेशन की आवश्यकता को अनुभव करनेवालों द्वारा रचा हुआ तंत्र अमेरिकन-तंत्र होगा, स्व-तंत्र कभी नहीं। यह सब हमारी बुद्धि की दासता के लक्षण हैं। सौ वर्ष में हमारी यही 'भिक्षा देहि' वाली मनोवृत्ति रही है। हमारे वे नवयुवक, जिन्हें स्वाभिमानपूर्वक गर्वोन्नत मस्तक से विश्व के सम्मुख खड़ा होना चाहिए और अपने प्रखर तेज से सबको चकाचौंध कर देना चाहिए, रूस का झंडा भारत में गाड़ना अपने जीवन का सौभाग्य समझते हैं, अपने देशवासियों की बुद्धि को दूसरों का गुलाम बनाने के आयोजन करते हैं।

ऐसे विचित्र दृश्य यहाँ के अतिरिक्त अन्यत्र देखने को नहीं मिल सकते। हमारे एक सौ वर्ष के जागरण का परिणाम यही दिखाई देता है कि इस प्रकार की बौद्धिक गुलामी की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है और हम इस विषय में सोचते भी नहीं। दूसरों ने कहा–'पुराना विचार त्याग दो।' हमने कहा–'हाँ, ठीक ही तो है, पुराने विचार ढकोसले हैं, उन्हें त्यागना ही चाहिए' और तुरंत दूसरों से नए विचारों की शिक्षा लेने के लिए भीख का कटोरा उठाकर माँगना शुरू कर दिया। अपने प्राचीन महान पुरुषों के त्याग एवं संयम के पवित्र आदर्श से पतित होकर, मार्गदर्शन के हेतु हम परकीयानुकरण-वृत्ति का आश्रय लेने लगे। यदि कहा जाए तो उत्तर देते हैं कि 'ऐसा न करें तो क्या करें?' मानो हमारे पास अपना कुछ है ही नहीं। हम अपने हाथों अपना पेट भर ही नहीं सकते। अतएव भीख माँगने के सिवा चारा भी क्या है।

इसी बाह्यानुकरण के कारण हमारी मौलिकता, हमारी कर्तृत्वशक्ति तथा हमारे स्फूर्तिस्रोत नष्ट होकर हमारे जीवन में आत्मगौरवशून्यता, परावलंबन तथा बौद्धिक दासता समा गई है। इतनी हिम्मत भी नहीं है कि अपनी बुद्धि के इस दिवालियेपन को, आत्मनिर्भरता के इस अभाव को हम स्वीकार भी करें। हृदय की इसी दासता से हमारा एक सौ वर्ष का इतिहास परिपूर्ण है।

प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण अनुचित

आज एक और बात हमारे जीवन में दिखाई देती है। परकीयानुकरण-प्रवृत्ति के साथ-ही-साथ प्रतिक्रियात्मक वृत्ति भी हमारे अंदर आ गई है। राज्यसत्ता का विरोध करना चाहिए, बस इसी संकुचित दृष्टि के आधार पर हमारे सभी प्रयत्न चल रहे हैं। परकीयानुकरण के

कारण हमारी विचारशक्ति पर पाश्चात्य शिक्षा-पद्धति, उनके शासन-विधान, उनके वैभवसपन्न सुख एव विलास ने अपना सिक्का जमा लिया।

ध्यान अपने देश की दु स्थिति, अपनी दुर्गति की ओर गया तो इस सबका जिम्मेदार हमने परदेशियों को समझा। इससे उनके प्रति हमारे मन में विद्वेष की भावना उदित हुई। अपने विजेताओं के प्रति घृणा के भावों के आधार पर हमारे राजनैतिक आदोलनों का अधिष्ठान हुआ। इसी प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्ति का एक उदाहरण मुझे स्मरण है। एक बार एक प्रतिष्ठित वृद्ध सज्जन अपनी शाखा में आए वे सघ के स्वयसेवकों के लिए एक नूतन संदेश लाए थे। उनको शाखा के स्वयसेवकों के सम्मुख बोलने का अवसर दिया गया, तब वे अत्यत ओजस्वी स्वर में बोले, 'अब तो केवल एक काम करो, अग्रेजों को पकडो और मार-मारकर निकाल बाहर करो। इसके पश्चात् फिर देखा जाएगा।' इतना ही कहकर बैठ गए। इस विचारधारा के पीछे है राज्यसत्ता के प्रति द्वेष तथा क्षोभ की भावना एव द्वेष-मूलक प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्ति। आज की राजनैतिक भावापन्नता का यही दुर्गुण है कि उसका आधार है प्रतिक्रिया, द्वेष, क्षोभ एव अपनापन छोडकर विजेताओं का विरोध। किसी ने तो यहाँ तक कहा कि 'विरोध में ही राष्ट्र-जीवन निर्माण होता है तथा उसी के द्वारा सगठन शक्ति का प्रकटीकरण होता है।' यदि उनसे प्रश्न किया जाता हे विरोध का कारण क्या है? तो कारण बताया जाता है कि 'हमारा आर्थिक शोषण हो रहा है। हमें फौज में, सरकारी दफ्तरों में कम नौकरी मिलती है।' स्वतत्रता इसलिए चाहिए कि रुपया-पैसा खूब मिले, नौकरी-चाकरी तथा रोटी-पानी की कमी न रहे। दूसरे शब्दों में— freedom is freedom from poverty अर्थात् यदि हम धनवान हो जाएँ तो हम स्वतत्र हैं। यदि कुत्ते को बहुत सारी ताजी रोटियाँ मिल जाएँ तो पर्याप्त हे। भारतवर्ष धनवान का कुत्ता बने, उसे खाने-पीने, रहने-सहने की कमी न रहे, यह हे उनका आदर्श।

प्रादेशिक राष्ट्रवाद

हमारा यह परकीयानुकरण केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं रहता, अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में रहता हे। इसी कारण अपने स्वरूप का अज्ञान तथा अपनी सस्कृति का विस्मरण होकर भिन्न-भिन्न भावना तथा वृत्तिवाले लोगों को एकत्र करने का प्रयत्न होता है। दूसरे लोगों का अनुकरण करके ही 'समान शत्रुवाद' के आधार पर मित्रता और एकता का निर्माण करते हैं। 'सत्ताधीश से विरोध होने के नाते एक भूखड में रहनेवाले

सभी एक हैं, चाहे उनके विरोध के कारण भिन्न-भिन्न ही क्यों न हों।' यह युक्ति तो उसी भाँति हुई, जैसे कोई कहे कि 'मछलियाँ जल में रहती हैं और सर्प भी जल में रहते हैं, अतएव मछलियाँ तथा सर्प एक ही हैं।' जिस प्रकार यह युक्तियुक्त नहीं, उसी प्रकार की युक्ति समान शत्रुवाद या प्रादेशिक राष्ट्रवाद की है। यह प्रादेशिक राष्ट्रवाद भी परकीयानुकरण का एक उदाहरण है। प्रादेशिक राष्ट्रवाद के आधार पर राष्ट्र-जीवन में मनमाना परिवर्तन करना इसी अनुकरण का दूषित प्रभाव है। पहले मनुष्य के नाम पर देश का नाम रखा जाता था, परतु आज इससे बिल्कुल ही विपरीत विचार प्रकट किए जा रहे हैं, देश के आधार पर नवीन राष्ट्र-निर्माण करने की योजना की जा रही है। इस प्रादेशिक राष्ट्रवाद का अर्थ है कि जमीन का टुकडा ही राष्ट्र है। देश में जो भी कोई कुत्ता-बिल्ली रहे, वोट का अधिकार रखता है। जीवन के आदर्शों की अवहेलना करके सबको आलिगन करने की प्रवृत्ति इसी कारण निर्माण हुई। परतु ऐसा तभी सभव हो सकता है, जब हम स्वय को भूल जाएँ। इसलिए हम आज अपना विस्मरण कर सब कुछ बदलने को तैयार हो गए हैं। हमने इसी आधार पर स्वभाषा, स्वधर्म, यहाँ तक कि इतिहास तक भी बदलने का प्रयत्न किया है। कारण, सच्चा इतिहास स्मरण रहने से यह सगम होता नहीं। इसके आलिगन करने में शिवाजी के प्रयत्नों की स्मृति, सभाजी की मृत्यु का करुणास्पद दृश्य तथा दीवारों में से झाँकनेवाली गुरुपुत्रों की आँखें, बाधक सिद्ध होती थीं। अतएव हमने इन सभी प्रात स्मरणीय बलिदानों की स्मृति नष्ट करने की चेष्टा कर, अपने गौरवशाली पूर्वपुरुषों के इतिहास को साष्टाग प्रणाम करके नवीन इतिहास तथा परपरा निर्माण करने के लिए कमर कसी। दूसरों से मिल जाने की नीति का यह परिणाम, अर्थात् अपना इतिहास मिट्टी में मिलाकर नया इतिहास बनाने का प्रयत्न हमारी प्रतिक्रियात्मक प्रकृति को सिद्ध करता है। परतु हमने देखा कि यह प्रयत्न निष्फल रहा। इतनी चेष्टा करने पर भी १०० वर्ष में हम सफलीभूत नहीं हो सके। अपितु हमारा समाज इसी कारण दिन-प्रतिदिन दुर्बल होता जा रहा है। सौ वर्षों से उपार्जित इस दौर्बल्य का कारण है स्वकीय सस्कृति को विस्मृत कर देना, सस्कृति की अमृतमयी धारा में रोडे डालकर समाज को उसके परिपोषक प्रभाव से वचित रखना। इसी कारण आज हम अपने समाज की छिन्न-विच्छिन्न असहाय अवस्था का यह दृश्य देखते हैं। यदि हमें हिंदू-समाज को शक्तिसपन्न करना है तो परकीयानुकरण विरोधात्मक प्रवृत्ति तथा प्रादेशिक

राष्ट्रवाद को भुलाना पडेगा। प्रतिक्रियात्मक भावना, द्वेष-विद्वेष की विरोध-जनक प्रवृत्ति को त्याग कर अपनेपन की भावना के आधार पर हमें अपने राष्ट्र का सगठन करना होगा।

भारतीयत्व की महान धारा का प्रवाह

हम सगठित क्यों हों? क्योंकि हम एक हैं, एक ही हमारी सस्कृति है, एक ही हमारी परपरा है, राष्ट्र की जीवन-धारा एक ही है, हमारा स्वरूप एक ही है तथा एक ही इतिहास है। यह आत्मज्ञान प्राप्त कर आत्मविश्वास, पौरुष तथा पराक्रम के आधार पर भारतीय सस्कृति की परपरागत विचारधारा के अनुकूल चलते हुए एक आशा, एक आकाक्षा हृदयों में जागृत करके समाज का एक विशाल राष्ट्रपुरुष निर्माण करना, यही है हमारा मार्ग, यही है अपने समाज को सामर्थ्य-सपन्न बनाने की एकमात्र विधि। यह व्रत हमें कोई आज ही सूझा हो, आज ही हमारे ध्यान में आया हो अथवा अपने समाज पर होनेवाले आक्रमणों की प्रतिक्रिया के स्वरूप यह भावना आई हो, ऐसी बात नहीं है। क्योंकि आक्रमणों के प्रतिकार की भावना चिरस्थायी नहीं हो सकती। हमारे सामने तो एक ही भावना है– अपनेपन की। 'भिक्षा देहि' प्रवृत्ति छोडकर आत्मनिर्भरता की। हम तो दृढ निश्चयपूर्वक भारतीयत्व की महान धारा का प्रवाह बूँद बनकर बढानेवाले हैं। अन्य लोगों के समान स्वार्थ-प्रवृत्ति, समान हित की सकुचित भावना, क्षुद्र अधिकार-लालसा अथवा अधश्रद्धा में न फँसकर, उनके स्थान पर भारतीय आदर्शों के पालन हेतु भारतीय सस्कृति, धर्म तथा इतिहास की गौरवपूर्ण परपरा के रक्षण तथा विकास हेतु चारों ओर अपनेपन की भावना से प्रेरित हिंदुओं को एक सूत्र में पिरोकर एक कठिन कवच का निर्माण करनेवाले हैं। अपनी परपरा पर चलकर आत्मविश्वास के आधार पर तथा इतिहास के शौर्य एव पराक्रम परिपूर्ण आदर्शों से स्फूर्ति ग्रहण करके ही राष्ट्र सगठित हो सकता है। इस सत्य को भूलकर राष्ट्र-जीवन हेतु जो असख्य बलिदान हुए, उन सबको भूलकर, इन समस्त भावनाओं की जड को काटकर, केवल कुछ लोगों को एकत्र करने मात्र से सगठन नहीं हो सकता। हाँ, यों तो समान स्वार्थों के आधार पर दस-बीस आदमी चोरी करने के लिए भी एकत्रित हो सकते हैं।

आज केवल एक प्रयत्न हो रहा है, जिसके द्वारा परकीयों का अनुकरण करना छोडकर अपने अतीत पर श्रद्धा रखते हुए राष्ट्र को जागृत करने की चेष्टा की जा रही है। यह प्रयत्न है राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ का। शेष प्राय सभी प्रयत्न बाहर से स्फूर्ति ग्रहण करते हुए बाहर के आदर्शों

पर अधिष्ठित हैं। आजकल की भाषा में जिसे extra territorial loyalty कहते हैं, जो वस्तुत 'राष्ट्रद्रोह' है। जिसमें भारतवर्ष की विचार-प्रणाली, परपरा, इतिहास तथा ध्येयवाद के प्रति श्रद्धा की भावना नहीं, उसको भी इसी विशेषण के द्वारा विभूषित करना चाहिए। इसलिए अपने भारतीय प्राचीन पूर्वपुरुषों के स्फूर्तिदायी, ज्वलत उदाहरण को अपने सम्मुख रखते हुए, भारतीयत्व की अखड ज्योति हृदय में धारण करते हुए तथा परम तेजस्वी सूर्य-चद्र को भी लज्जित करनेवाले पराक्रमी ऐतिहासिक वीर पुरुषों के पदचिह्नों पर चलते हुए ही हम राष्ट्र को जागृत करने में सफल हो सकते है। इस सत्य को सिद्ध करने के लिए इतिहास में एक सुदर उदाहरण है।

महात्मा गौतम बुद्ध को कौन नहीं जानता? सासारिक दु खों से मुक्ति प्राप्त करने की खोज में कष्ट सहन करते हुए प्राणिमात्र की पीडा दूर करने हेतु उन्होंने 'सुधार-आदोलन' किया। यह जगत्-भर में फैला। परतु अत में वह एक स्वतत्र सप्रदाय के रूप में परिणत होकर यहाँ की परपरागत ज्ञानधारा से नाता तोड बैठा। यहाँ के प्राचीनतम वैदिक ज्ञान को उसने श्रद्धा से नहीं देखा। परिणामस्वरूप हम देखते हैं कि इस धारा को छोडकर उसकी क्या दशा हुई। जहाँ पर प्राचीन सस्कृति की धारा प्रवाहित थी, वहाँ पर तो वह सरिता का प्रवाह अधिक समय तक रोक सकने में असमर्थ होकर नष्ट हो गया, परतु जहाँ सस्कृति की धारा नहीं थी, भारत से दूर उन प्रदेशों में तो बौद्ध धर्म चल सका, परतु अपने ही जन्मस्थान भारतवर्ष में नष्ट हो गया। इसी प्रकार दूसरों का आदर्श लेकर अपनी सस्कृति की जीवनधारा से पृथक होकर चलनेवाले जो प्रयत्न होंगे, वे अधिक देर तक ठहर नहीं सकेंगे। बाह्यादर्शप्रवृत्ति (Extra territorial ideal ism) के आधार पर नवीन जीवन-निर्माण करने हेतु हम चाहे कितना ही ढोल बजाएँ, वह फटे बिना नहीं रहेगा। वास्तविकता प्रकट हो ही जाएगी। हमारी सस्कृति की अखड धारा भूले-भटके को अवश्य ही राह पर लाएगी।

प्रलयकाल सरक्षक महामत्स्य सघ

कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि सघ की सफलता का रहस्य क्या है? सघ की सफलता का रहस्य है उसका भारतीयत्व से प्रेम। अन्य लोग इस जीवन-वृक्ष की जड काटकर उसे हरा-भरा करने का प्रयत्न करते हैं। पर जड काटने से जीवन-रस न मिलने के कारण वृक्ष निश्चित ही सूख जाता है। परपरा की, अपने पूर्व इतिहास की जड काटकर रूसी तथा अमेरिकन आदर्शों पर नवीन राष्ट्र का निर्माण करना मानो जड कटे हुए वृक्ष के

शाखा-पत्तों को जल देने के समान है अथवा सूखे वृक्ष को बाहर से पत्ते लाकर गोंद से चिपकाने के समान है। परतु जिसने प्राचीन सस्कृति के अखड स्रोत से अपनी जड अलग कर ली हो, वह जीवन-रस कहॉ से प्राप्त कर सकेगा? फिर उसमें शाखा, पल्लव कहॉ से आ सकते हैं, पुष्प भी कहॉ खिल सकते हैं और फल भी कैसे लग सकते हैं? सगठन का रहस्य समझकर हृदय-हृदय में भारतीयत्व को जगाकर सघ ने कार्य किया। इसलिए इसे सफलता प्राप्त हो रही है।मनु ने एक मछली को मरने से बचाया और उसे पाला। वह बडी विशाल हो गई और अत में प्रलय के समय मनु की नौका का सरक्षण करने में समर्थ हुई। उस महान मत्स्य की भॉति सृष्टि का सपूर्ण बीज, मानवता की सपूण विभूतियों का सरक्षण करते हुए भारतीयत्व को सकल विश्व में प्रकट करने में समर्थ होगा। इस दृष्टि से हम सघ को देखें और भारतीयत्व को जगाकर 'मैंने अपनी परपरानुकूल अपना कर्तव्य पालन किया'— यह सतोष धारण कर, पूर्वजों से प्राप्त सस्कृतिधारा के मार्ग के रोडे हटाकर उसके पतित-पावन प्रवाह को उत्तरोत्तर बढाने के लिए अपने समाज को अधिकाधिक शक्तिशाली बनाकर ध्येय की ओर अग्रसर करने के लिए एक महान सगठन का निर्माण करें।

ॐ ॐ ॐ

३ सच्चा राष्ट्रवाद

(लखनऊ, जुलाई १९४७)

हम अपना ध्येय अत्यत सुलभ वाक्य-समूह द्वारा व्यक्त कर सकते हैं— १ हम हिंदू-समाज को सगठित करना चाहते हैं। २ सगठित करके उसको शक्तिशाली बनाना चाहते है तथा ३ शक्तिशाली बनाकर उसे सर्वविध वैभवसपन्न बनाना चाहते हैं। भारतवर्ष की भारतीयता को प्रकट करके अपना वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करने की भावना को हमें सदैव जागृत रखनी चाहिए। अपने इस भारतीयत्व के प्रकटीकरण की ओर आज प्राय किसी का ध्यान नहीं है। इसके स्थान पर आज चारों ओर के प्रयत्नों का आधार केवल प्रतिक्रिया तथा विरोध की भावना है। इन भावनाओं के उद्गम को ढूँढने के लिए हमें पिछले कुछ वर्षो का इतिहास देखना होगा। आज से डेढ-दो सौ वर्ष पूर्व का चित्र हम अपनी ऑखों के सामने लाएँ। एक महान हिंदू साम्राज्य के जन्म, सरक्षण और उसके विकास में भारत को एक प्रकार से कुछ सफलता प्राप्त हुई थी, पर उसी समय एक नया आक्रमण होने के कारण और फिर अपने ही अदर यथायोग्य राष्ट्रवृत्ति तथा कर्तव्यभावना व स्वार्थ को पीछे रखकर राष्ट्रभक्ति

पर अधिष्ठित हैं। आजकल की भाषा में जिसे extra territorial loyalty कहते हैं, जो वस्तुत 'राष्ट्रद्रोह' है। जिसमें भारतवर्ष की विचार-प्रणाली, परपरा, इतिहास तथा ध्येयवाद के प्रति श्रद्धा की भावना नहीं, उसको भी इसी विशेषण के द्वारा विभूषित करना चाहिए। इसलिए अपने भारतीय प्राचीन पूर्वपुरुषों के स्फूर्तिदायी, ज्वलत उदाहरण को अपने सम्मुख रखते हुए, भारतीयत्व की अखड ज्योति हृदय में धारण करते हुए तथा परम तेजस्वी सूर्य-चद्र को भी लज्जित करनेवाले पराक्रमी ऐतिहासिक वीर पुरुषों के पदचिह्नों पर चलते हुए ही हम राष्ट्र को जागृत करने में सफल हो सकते है। इस सत्य को सिद्ध करने के लिए इतिहास में एक सुदर उदाहरण है।

महात्मा गौतम बुद्ध को कौन नहीं जानता? सासारिक दु खों से मुक्ति प्राप्त करने की खोज में कष्ट सहन करते हुए प्राणिमात्र की पीडा दूर करने हेतु उन्होंने 'सुधार-आदोलन' किया। वह जगत्-भर में फैला। परतु अत में वह एक स्वतत्र सप्रदाय के रूप में परिणत होकर यहाँ की परपरागत ज्ञानधारा से नाता तोड बैठा। यहाँ के प्राचीनतम वैदिक ज्ञान को उसने श्रद्धा से नहीं देखा। परिणामस्वरूप हम देखते हैं कि इस धारा को छोडकर उसकी क्या दशा हुई। जहाँ पर प्राचीन सस्कृति की धारा प्रवाहित थी, वहाँ पर तो वह सरिता का प्रवाह अधिक समय तक रोक सकने में असमर्थ होकर नष्ट हो गया, परतु जहाँ सस्कृति की धारा नहीं थी, भारत से दूर उन प्रदेशों में तो बौद्ध धर्म चल सका, परतु अपने ही जन्मस्थान भारतवर्ष में नष्ट हो गया। इसी प्रकार दूसरों का आदर्श लेकर अपनी सस्कृति की जीवनधारा से पृथक होकर चलनेवाले जो प्रयत्न होंगे, वे अधिक देर तक ठहर नहीं सकेंगे। बाह्यादर्शप्रवृत्ति (Extra territorial idealism) के आधार पर नवीन जीवन-निर्माण करने हेतु हम चाहे कितना ही ढोल बजाएँ, वह फटे बिना नहीं रहेगा। वास्तविकता प्रकट हो ही जाएगी। हमारी सस्कृति की अखड धारा भूले-भटके को अवश्य ही राह पर लाएगी।

प्रलयकाल सरक्षक महामत्स्य सघ

कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि सघ की सफलता का रहस्य क्या है? सघ की सफलता का रहस्य है उसका भारतीयत्व से प्रेम। अन्य लोग इस जीवन-वृक्ष की जड काटकर उसे हरा-भरा करने का प्रयत्न करते हैं। पर जड काटने से जीवन-रस न मिलने के कारण वृक्ष निश्चित ही सूख जाता है। परपरा की, अपने पूर्व इतिहास की जड काटकर रूसी तथा अमेरिकन आदर्शों पर नवीन राष्ट्र का निर्माण करना मानो जड कटे हुए वृक्ष के

शाखा-पत्तों को जल देने के समान है अथवा सूखे वृक्ष को बाहर से पत्ते लाकर गोंद से चिपकाने के समान है। परतु जिसने प्राचीन सस्कृति के अखड स्रोत से अपनी जड अलग कर ली हो, वह जीवन-रस कहाँ से प्राप्त कर सकेगा? फिर उसमें शाखा, पल्लव कहाँ से आ सकते हैं, पुष्प भी कहाँ खिल सकते हैं और फल भी कैसे लग सकते हैं? सगठन का रहस्य समझकर हृदय-हृदय में भारतीयत्व को जगाकर सघ ने कार्य किया। इसलिए इसे सफलता प्राप्त हो रही है।मनु ने एक मछली को मरने से बचाया और उसे पाला। वह बडी विशाल हो गई और अत में प्रलय के समय मनु की नौका का सरक्षण करने में समर्थ हुई। उस महान मत्स्य की भाँति सृष्टि का सपूर्ण बीज, मानवता की सपूर्ण विभूतियों का सरक्षण करते हुए भारतीयत्व को सकल विश्व में प्रकट करने में समर्थ होगा। इस दृष्टि से हम सघ को देखें और भारतीयत्व को जगाकर 'मैंने अपनी परपरानुकूल अपना कर्तव्य पालन किया'– यह सतोष धारण कर, पूर्वजों से प्राप्त सस्कृतिधारा के मार्ग के रोडे हटाकर उसके पतित-पावन प्रवाह को उत्तरोत्तर बढाने के लिए अपने समाज को अधिकाधिक शक्तिशाली बनाकर ध्येय की ओर अग्रसर करने के लिए एक महान सगठन का निर्माण करें।

ि ि ि

३ सच्चा राष्ट्रवाद

(लखनऊ, जुलाई १६४७)

हम अपना ध्येय अत्यत सुलभ वाक्य-समूह द्वारा व्यक्त कर सकते हैं– १ हम हिंदु-समाज को सगठित करना चाहते हैं। २ सगठित करके उसको शक्तिशाली बनाना चाहते है तथा ३ शक्तिशाली बनाकर उसे सर्वविध वैभवसपन्न बनाना चाहते हैं। भारतवर्ष की भारतीयता को प्रकट करके अपना वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत करने की भावना को हमें सदैव जागृत रखनी चाहिए। अपने इस भारतीयत्व के प्रकटीकरण की ओर आज प्राय किसी का ध्यान नहीं है। इसके स्थान पर आज चारों ओर के प्रयत्नों का आधार केवल प्रतिक्रिया तथा विरोध की भावना है। इन भावनाओं के उद्गम को ढूँढने के लिए हमें पिछले कुछ वर्षो का इतिहास देखना होगा। आज से डेढ-दो सौ वर्ष पूर्व का चित्र हम अपनी आँखों के सामने लाएँ। एक महान हिंदू साम्राज्य के जन्म, सरक्षण और उसके विकास में भारत को एक प्रकार से कुछ सफलता प्राप्त हुइ थी, पर उसी समय एक नया आक्रमण होने के कारण और फिर अपने ही अदर यथायोग्य राष्ट्रवृत्ति तथा कर्तव्यभावना व स्वार्थ को पीछे रखकर राष्ट्रभक्ति

को स्थान देने की त्याग-भावना का अभाव होने के कारण, साथ ही पारस्परिक मतभेद और उससे उत्पन्न दुर्वलता के कारण, वह वना हुआ सारा साम्राज्य टूट गया। समाज में उत्पन्न हुई महान आकाक्षाएँ नष्ट हो गई। एक अकल्पित सत्ता ने पूर्णरूप से अपना प्रभुत्व जमाकर भारतीय समाज को सव प्रकार से दीन कर दिया। सपूर्ण आकाक्षाओं के नष्ट होने से आत्मविश्वास जाता रहा, अतर्वाह्य दुर्वलता आ गई, अत करण की गौरव-भावनाएँ नष्ट हो गई और इसके परिणाम हमारे अदर परकीय सत्ता के अस्तित्व में सन्तुष्ट रहकर व्यक्तिगत जीवन व्यतीत करने तथा एक अप्रशसनीय एव विलासप्रिय जीवन वनाने की प्रवृत्ति निर्मित हो गई। यह चित्र एक अत्यत ही दूपित एव विकृत जीवन से परिपूर्ण है।

पराभूत मानसिकता

किंतु समाज में जो एक दिव्य शक्ति निहित थी, वह वहुत काल तक शात चित्त से गर्हित जीवन के इस नग्न नृत्य को नहीं देख सकी। अत उसमें से ऐसे पुरुप उत्पन्न हुए, जिन्होंने इस परिस्थिति को वदलना चाहा। अवश्य ही इन लोगों ने अपनी दु स्थिति को सुधारना तो चाहा, परतु इनका मन भी परकीय भावों के द्वारा पूर्णतया पराजित था। इनके हृदय में पराभव था, विचारों पर पाश्चात्य शिक्षा का सिक्का जम चुका था तथा पश्चिम के ठाट-वाट और वैभव को देखकर इनकी आँखें चौंधिया गई थीं। अत जव इन्होंने अपनी दुर्गति का कारण ढूँढने का प्रयत्न किया, तव प्रथम तो इन्होंने उन परदेसियों को जिम्मेदार ठहराया, जिन्होंने यहाँ आकर हमारी ऐसी दुर्गति की थी और दूसरी ओर इनको पाश्चात्यों की जीवन-प्रणाली के सामने अपनी जीवन-प्रणाली तुच्छ दिखलाई दी। इससे इन्होंने उस प्रणाली को भी दुर्गति के लिए दोपी ठहराया।

इस प्रकार अपनी दुर्गति के लिए 'परकीयों' को तथा उनकी जीवनप्रणाली की तुलना में अपनी जीवनप्रणाली को तुच्छ मानकर 'अपनी प्रणाली' को जिम्मेदार ठहराकर हमने अपने प्राचीन जीवन के प्रति घृणा एव निराशा, परानुकरण में उत्साह तथा परकीयों के प्रति विद्वेप का सम्मिश्र भाव लेकर अपने राष्ट्रीय जीवन के निर्माण का प्रयत्न प्रारभ किया। परिणामस्वरूप इस प्रकार की प्रतिक्रिया के भाव जिनमें हो सकते हैं उन सवको अपनाकर राष्ट्र-निर्माण का प्रयत्न किया गया। इन्हीं प्रयत्नों का कुफल हमें अपने आज के चारों ओर के जीवन में दिखाई दे रहा है। परकीयों के प्रति विद्वेप, अपनेपन से घृणा तथा पाश्चात्यों का अनुकरण

यही आज के हमारे सब प्रकार के कार्यो का आधार है।

परकीय आदर्श व स्वत्व का विस्मरण

परकीय सत्ता के विरोध को ही राष्ट्रीयता का आधार मानकर जो-जो उस सत्ता के दास बने, उन सबको अपनाकर हमारे हृदय में एक राष्ट्र बनाने की भावना का उदय हुआ। इस प्रकार भ्रमात्मक प्रादेशिक राष्ट्रवाद का बीज हमने अपने जीवन में बो दिया। विरोधी भावात्मत्र लोगों का एकत्रीकरण करके उसमें से नवनिर्माण करने की बातें हुई, किंतु इस नवनिर्माण के लिए आदर्श (model) क्या हो? पर हमारी आँखें बाहर की ओर लगी हुई थीं ही, इसलिए हमको उस समय अपने विजेताओं के अथवा उनके सगे-सबंधियों के जीवन के अतिरिक्त और कौन-सा आदर्श जीवन दिख सकता था। अपने प्राचीन जीवन को और अपने गौरवमय सच्चे इतिहास को भुलाकर सस्कारहीन हो जाने के कारण तथा दूसरों को मिलाने की अभिलाषा मन में लेकर हमने अपने अत करण के स्वाभाविक स्फूर्ति-देवता को हटाकर, उसमें परकीयों के स्फूर्तिदाता आदर्शों की स्थापना की। पिछले सौ-सवा सौ वर्षों में जितने महापुरुष हुए, जितने बडे-बडे कार्य हुए और जितनी सस्थाएँ बनीं, सब-के-सब प्राय बाहर से ही स्फूर्ति प्राप्त करते रहे। बाहर के स्वाधीनता सग्राम तथा वहाँ की राज्य क्रातियाँ ही हमारे लिए आदर्श हो गई। किसी ने अमरीका के स्वातत्र्य-युद्ध को आदर्श बनाया, तो किसी ने आयरिश स्वातत्र्य-सग्राम अथवा फ्रास की राज्यक्राति को सामने रखते हुए उसके जीवन का अनुकरण कर, अपना जीवन भी वैसा ही बनाने की इच्छा प्रकट की। हमारा सर्वथा अपना भी कोई प्राचीन जीवन है, उस जीवन की भी कोई प्रेरणा है और हमारे भी कोइ आदश हो सकते हैं तथा उनसे अनुप्राणित होकर ही हम ससार का महान से महान कार्य कर सकते हैं, इन सब बातों का हमें पता ही नहीं रहा अथवा हमने जान-बूझकर इनकी अवहेलना की और हम पर सपूर्णतया परानुकरण कर नवीन निर्माण करने की अनोखी धुन सवार हो गई। इसी से आज नई श्रद्धा, नई स्फूर्ति और नया आदर्श, यहाँ तक कि नया इतिहास निर्माण करने तक की भावना हमारे अदर दृष्टिगोचर होती है। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'हमारे पास तो पहले कुछ था ही नहीं, राष्ट्र का विचार भी हमने पाश्चात्यों के सपर्क से सीखा है, इसलिए अब हम को राष्ट्र बनाना है– We are a nation in the making (हम राष्ट्र बन रहे हैं)।'

इस नव-निर्माण में हमने पाश्चात्यों को अपना गुरु स्वीकार कर

उन्हीं की ऑखों से अपने को देखा। परकीय विद्वानों ने कहा कि 'आर्य भारतीय नहीं हैं, वाहर से आए हुए हैं।' हमने नतमस्तक होकर इसे मान लिया। उन्होंने कहा, 'भारतवर्ष एक महाद्वीप (Continent) है, अत इसमें एक राष्ट्र नहीं, अनेक राष्ट्र रहते हैं।' हमने भी यही कहना शुरू कर दिया तथा अनेक राष्ट्रों का निवासस्थान मानकर वाहर के राष्ट्रों ने इस प्रश्न को जैसे सुलझाया, वैसे ही हम भी सुलझाने लगे। हमने देखा कि अमरीका ने एक फेडरेशन बनाया है, इसलिए हमारी इच्छा भी फेडरेशन बनाने की हो गई। जर्मनी और इटली ने जिस मार्ग पर चलकर विभिन्न लोगों का एकत्रीकरण करने का प्रयत्न किया, उसी पर चलने को हमें भी कहने लगे। फलस्वरूप हम अपने जीवन में प्रादेशिक राष्ट्रवाद को ले आए और वह भी अत्यत विकृत रूप में। ओर फिर उसी को सिद्ध करने की इच्छा से राजनीति को ही अपना जीवनसर्वस्व मान बैठे।

इतना ही नहीं, परकीय अनुकरण ने हमारे जीवन के दृष्टिकोण को ही बदल दिया। अनुकरण में बुद्धिप्रतिभा और हृदयस्वातत्र्य बिल्कुल नहीं होता। परानुकरण तो हृदय की गुलामी तथा बुद्धि की कमी का द्योतक है। उसमें अपनी परपरागत मोलिकता की छाया तक नहीं रहती। इसीलिए वाह्यानुकरण करके जव हमने अपने जीवन की रचना की, तो हम अपने प्राचीन त्याग एव सयम के पवित्र आदर्श से च्युत होकर पाश्चात्य सस्कृति के सुखोपभोग, इद्रियसुख तथा वासनातृप्ति के आदर्श के पीछे पागल होकर दौड पडे। पाश्चात्य जीवन केवल वाह्यजीवन है, ऐहिक सुख ही उसका परमोच्च आदर्श है, मन व इद्रियों का स्वामी बनने के स्थान पर उनका गुलाम वनना, मनमाना स्वेच्छाचार करना ही उनकी स्वतत्रता का आदर्श है। हमने भी अपने जीवन में उसी आदर्श को स्थान दिया। और अपने 'जीवन-निर्वाह का स्तर' ऊँचा करना चाहिए, इसी बात की चारों ओर पुकार मचाने लगे। जीवन-निर्वाह का स्तर वढाने का अर्थ है 'वाह्य उपकरणों की दासता वढाना । इसको यदि अधिक स्पष्ट शब्दों में कहा जाए तो यह 'पशुभाव' वढाना है। इसी पशुभाव के कारण क्रियाशक्ति तथा स्फूर्ति की प्रेरकला नष्ट हो गई है। लोग चारों ओर केवल अपनी वासनाओं की तृप्ति तथा ऐहिक जीवन को अधिक-से-अधिक सुखपूर्ण बनाने की धुन में लगे हुए हैं। आज के तरुणों को आधुनिक आर्थिक जीवन के स्वप्न में उपभोग-प्रवणता ही अत्यधिक आकर्षक दिखाई देती है। इसलिए परकीयों के जीवन के दृष्टिकोण को अपनाकर व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की

रचना उन्हीं के ढग पर करने की भावना हमारे अदर उदित हुई। अपने वास्तविक जीवन को भुलाकर, अपनी सास्कृतिक विचारधारा से कोसों दूर, सुखोपभोग के साधनों से सपन्न, बाह्याडवर से पूर्ण और आसुरी-ऐश्वर्यसपन्न पाशविक जीवन के द्वारा निर्मित तथा राजनैतिक दृष्टि से वडे-वडे साम्राज्य और पाशविकता के द्वारा इस भूमि को छीन लेनेवाले समाज का आँखों को चौंधिया देनेवाला चित्र हमारे सामने रखा गया। अपनेपन के सस्कार तो नष्ट हो ही चुके थे, हृदय कुचला जा चुका था और मन मर चुका था। बस, लोग इसी जीवन के पीछे दौड पडे। इसी के परिणामस्वरूप आज भारतीय मानव कुत्ते के समान पेटभरू जीवन को आदर्श समझकर अपने-अपने क्षुद्र स्वार्थों की सिद्धि के लिए व्यक्तिगतरूप से अथवा समष्टिरूप से राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए छटपटा रहा है। उसके सपूर्ण प्रयत्न, उसकी सारी दौडधूप केवल इन्हीं अधिकारों की प्राप्ति के लिए है।

राजनीति ही सर्वस्व नहीं

इस प्रकार— (१) प्रादेशिक राष्ट्रवाद को अपनाकर उसे सत्य सृष्टि में परिणत करने की भावना से तथा (२) ऐहिक सुखों की प्राप्ति के लिए, अधिकारारूढ होने की इच्छा से आज राजनीति को हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हो गया है, वल्कि यह भी कहा जा सकता है कि आज राजनीति ही हमारे जीवन का सार-सर्वस्व वन गई है। मनुष्य मात्र को राजनीतिक भावापन्न होना चाहिए, प्रत्येक व्यक्ति को राजनीतिक विचार रखने चाहिए आज लोग यही कहने लगे हैं। यहाँ तक कहा गया कि अपना धर्म तथा अपना जीवन भी राजनीति के अनुकूल होना चाहिए। सक्षेप में राजनीति को ही जीवन मान लिया गया और फिर उसकी आवश्यकता के अनुसार ही शेष सब चीजों में परिवर्तन किया गया। इसके लिए हमने स्व-भाषा वदली, स्वधर्म वदला, यहाँ तक कि अपना इतिहास भी वदल डाला। यह परकीय अनुकरण का एक दूषित प्रभाव है, जिसके कारण आज साधारण मनुष्य राजनीति को ही जीवन का केंद्र-विंदु समझ बैठा हे। साधन को ही साध्य समझ बैठा है। मनुष्य शरीर की रक्षा के लिए कपडे पहनता है, अत शरीर की आवश्यकता के अनुसार कपडे बनवाता है, न कि कपडों के अनुसार शरीर को वडा-छोटा करता है। यदि कोई मनुष्य पहले अपना कोट वनवा ले और फिर उस कोट के नाप के अनुसार अपने शरीर में काट-छाँट करे, तो उस मनुष्य को कोई भी बुद्धिमान नहीं कहेगा। उसी तरह अपने जीवन को राजनीति के ढाँचे में ढालनेवालों को कौन बुद्धिमान

करेगा? यहाँ एक उदाहरण याद आता है। एक मनुष्य के यहाँ एक पलंग था। कोई भी मेहमान उसके घर आता तो उसको वह उसी पलंग पर सुलाता। यदि किसी का कोई अंग पलंग के बाहर निकलता तो वह उसको काट देता। यदि पलंग के नाप से किसी का शरीर छोटा होता तो वह दोनों ओर से खींचकर शरीर को बढ़ा देता। इस प्रकार वह दैत्य सबको मार डालता। बिस्तरे को ही जीवन का ध्येय समझकर शरीर को उसके अनुसार घटाने-बढ़ाने से तो मरना ही होता है। आज प्रादेशिक राष्ट्रवाद का आधार लेकर राजनीति के इस बिस्तर के अनुसार राष्ट्रजीवन पर जो प्रहार और उसके साथ जो खींचातानी हो रही है, उससे अनादिकाल से चला आया हुआ अपना जीवन खतरे में पड गया है। राजनीतिक ढाँचा तो वास्तविक जीवन के सौभाग्य के लिये होता है। व्यवस्था सर्वस्व नहीं होती, सर्वस्व तो जीवन होता है। हमें उसी की चिंता करनी चाहिए। परकीय समाज में यदि राजनीति ही जीवन का केंद्र-बिंदु हो, तो हमको उसका अनुकरण करने की क्या आवश्यकता है? उन्हें तो इसकी कल्पना तक नहीं है कि भौतिक जीवन को छोडकर और भी कोई मनुष्यत्व का जीवन है, खाने-पीने और आराम करने के अलावा और भी कोई उच्चादर्श हो सकता है। ऐसी अवस्था में यदि उन्होंने राजनीति को जीवन का केंद्र माना तो ठीक है, पर हम वैसा क्यों मानें? इसमें हमें सुख की प्राप्ति नहीं होगी, उलटे जीवन के भी लाले पड जाएँगे।

अंधानुकरण से स्वाभिमानशून्यता

परकीय अनुकरण के परिणामस्वरूप प्राप्त इस राजनीतिक ध्येय के पीछे बेसुध होकर दौडने के कारण हमारा परंपरागत एकात्मता का पवित्र जीवन, हमारी महान सर्वांगपूर्ण भव्य संस्कृति तथा हमारा अखिल विश्वकल्याणकारी परम श्रेष्ठ धर्म से परिपूर्ण जीवन पीछे पड गया है। इसके स्थान पर पाश्चात्यों के वैर और विद्वेष से भरा हुआ ऐहिक सुखोपभोग में ही प्रमत्त जीवन आ गया और दुर्भाग्यवश उसी को 'प्रगति' के नाम से पुकारा गया। अपने पूर्वकाल को 'दार्शनिक' कहा गया तथा इसी 'दर्शन' के कारण हमारी अवनति हुई है— ऐसा कहकर अपनी संस्कृति और सभ्यता की परंपरा को मिटाने का प्रयत्न हुआ। कुछ अपवाद भी हुए, किंतु उनकी कौन सुनता है? साधारणतया चारों ओर अपनी प्राचीनता को नष्ट कर देने की ही पुकार थी। संस्कृति की जड कटने लगी, प्राचीन परंपरा का प्रवाह रुक गया। परिणाम में जरा से वायु के झोंके से इधर-उधर बहनेवाला शुष्क तृणवत जीवन निर्मित हो गया। पिछले सौ-डेढ सौ वर्षों के कार्य की

सफलता तो वस्तुत तब होती जब समाज में आत्मविश्वास का निर्माण होता, ससार को ज्ञान प्रदान करने की योग्यता प्राप्त होती, अपरिमेय पौरुष होता, अनन्य एकात्मता होती और विभिन्नत्व में एक विशाल राष्ट्रीयत्व का दर्शन होता। इस स्थिति के प्रकटीकरण के जीवनरस से यह समाजवृक्ष चैतन्ययुक्त हो जाता। परतु यह नहीं हुआ, बल्कि इसके विपरीत आज समाज अपने हाथों बरबादी की भाषा बोल रहा है। बडे-बडे पुरुषों ने अपने समाज के ओजस्वी जीवन को भ्रष्ट कर दिया है और उस जीवन को लेकर सुखोपभोग का प्रयत्न कर रहे हैं। पर इससे सुख तो दूर रहा, खाने की भी चिता पड गई है। स्वाभिमान नष्ट हो गया और पुरुषार्थ का तो कहीं पता ही नहीं लगता। इस दीन-हीन दशा में रोते हुए समाज के सौ वर्ष की प्रगति का यह चित्र है। भारतीय समाज परमात्मा के नाम पर रोता रहता है। उसमें अपने पैरों पर खडे होने की शक्ति नहीं, आघातों का प्रतिकार करने की हिम्मत नहीं। कैसी महाभयकर प्रगति है? मानो कोई अपने उद्दिष्ट की ओर पीठ करके दौड रहा हो। आज यहाँ तक अध पतन हो गया है कि अपने को हिदू कहने में, स्वय को अपने पूर्वजों की सतान कहने में शर्म आने लगी है। इससे अधिक दुर्दशा और क्या होगी? पशु-जीवन का वैभव भी तो प्राप्त नहीं हुआ। त्रिशकु के समान सर्वच्युत स्थिति हो गई है। इस प्रकार जीवन को पशु से भी निम्नस्तर पर पहुँचा देने में हमारे सौ वर्ष के उद्योग सफल हुए हैं। यही है हमारी उन्नति का स्वरूप।

श्रेष्ठ परपराओं का जागरण

पिछले डेढ सौ वर्ष में की गई अपनी गलती को हम समझें। हमने अपने जीवन की जड काटी, जीवन के प्रवाह के मूल उद्गम में रोडे डालकर उसे बद किया, जीवन के केंद्र-बिदु को बदल दिया। अपने इतिहास को मिटाने तक की प्रबल इच्छा दिखाई देती है। क्या इससे प्रगति सभव है? यह इच्छा कितनी प्रबल है। इसके लिए एक घटना याद आती है। एक स्थान पर एक गीत गाया गया। उसमें अपने एक पूर्वपुरुष के पुरुषार्थ का स्मरण कर अपने मन में भी वैसी ही भावनाएँ जागृत करने का सदेश था। इस प्राचीन स्फूर्ति-केंद्र का वर्णन सुनते ही एक सज्जन बिगड उठे। उन्होंने कहा– 'इस सबको बद करो। हमको पुराना कुछ नहीं चाहिए। पुराने सारे इतिहास को मिटा दो, हमें नया इतिहास बनाना है'– ऐसे वाक्य किसी भी भावुक हृदय को और विशेषत तरुण हृदय को मोहित कर आकृष्ट करने के लिये पर्याप्त हैं। परतु तनिक विचार करें। जिसको अपनी परपरा का

ज्ञान नहीं, जिसको अपनेपन का अभिमान नहीं तथा जिसे तेजस्वी बनने की इच्छा नहीं, वह संसार में क्या करेगा?

अपनी प्राचीन परंपरा की अवहेलना करने के कारण आज भारतीय आत्मा का हनन हो रहा है। चारों ओर चलनेवाले कार्य में राजनीतिक तत्त्व हो सकता है, किंतु उसमें सच्ची भारतीयता नहीं है। क्या इन चलनेवाले प्रयत्नों में हमारा आत्माभिमान जागृत रहेगा? जिसमें चैतन्य नहीं, वह तो मुर्दा है। मुर्दे पर कपड़े डालने से कुछ नहीं होगा। उसे खड़ा करके हाथ में डंडा देकर भव्य स्वरूप भी दे दिया तो भी वह मनुष्य नहीं बन सकेगा, उसमें सामर्थ्य का निर्माण नहीं हो सकेगा। जीवन-रस संजीवनी डालने से ही वह मनुष्य बन सकेगा। जब शरीर के अंदर आत्मा का प्रवेश होगा, तभी उसमें जीवन संभव होगा। आज इस जीवन की ओर किसका ध्यान है? आज तो परानुकरण करके राजनीति को जीवन का केंद्र बनाकर केवल ऊपरी साज-शृंगार किया जा रहा है। इस प्रकार आत्मा की अवहेलना करने पर और भी अधःपतन होगा, दुर्बलता बढ़ेगी, आक्रमण बढ़ेंगे और हम रोएँगे। ऐसी दशा में प्राचीन परंपरा का आत्मसाक्षात्कार न होने तथा गौरवभावपूर्ण सांस्कृतिक दिव्य शैली से अनभिज्ञ रहने के कारण अपने आपको समाज का मार्गदर्शक कहने तथा समझनेवालों का उपदेश भी यही है कि राजनीतिक 'कोट' के लिए अपना शरीर कटवा दो।

आज हम पूर्णतया आत्मविस्मृत हैं। अपनेपन का कुछ भी ज्ञान नहीं है, इसके स्थान पर परायों की पूजा हो रही है। प्रत्येक कुल का एक कुल-देवता होता है। कोई राम को, कोई भवानी को और कोई शंकर को अपना इष्टदेव मानता है। यदि कभी कोई भूल से भी अपने इष्टदेव को छोड़कर अन्य देव की पूजा करता है तो उसके कुल को हानि पहुँचती है। यदि कुल-देवता के स्थान पर कहीं किसी भ्रष्टात्मा की, भूत-पिशाच की आराधना होने लगे, तब तो विनाश की कल्पना भी असंभव है। आज हमने अपने जीवन में राष्ट्र के आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक परंपरागत कुल-देवता की पूजा-अर्चा छोड़कर पाश्चात्यों के राजनीतिक पिशाच का अधिष्ठान किया है। यदि यह इसी प्रकार बना रहा तो हमारी संपूर्ण पूर्व-परंपरा का नाश होकर स्वकुल भी विनष्ट हो जाए तो कोई आश्चर्य नहीं।

स्वातंत्र्य क्यों

अपने भावात्मक जीवन के स्थान पर आज लोगों के सम्मुख अभावात्मक जीवन की कल्पना है। रचनात्मक कार्यक्रम के स्थान पर

प्रतिक्रियात्मक पद्धति के पूर्ण ज्ञाता तथा अत्यत ओजस्वी भाषण करनेवाले एक सज्जन ने एक बार कहा था– 'अब तो एक ही काम बचा है और वह है अंग्रेजों को बाहर निकाल देना।' परतु इसके बाद क्या होगा– इसकी उन्हें कल्पना तक नहीं थी।

ऐसे सज्जनों से उनके भविष्य के विषय में कोई पूछ बैठता है तो वे कैसे-कैसे उत्तर देते हैं– इस सबध में कुछ उदाहरण याद आते हैं। सन १९२१ के आदोलन में स्कूल से निकाले हुए लोगों के लिए राष्ट्रीय विद्यालय, तिलक स्कूल आदि खोले गए थे। उसमें कई प्रसिद्ध नेता अध्यापक रह चुके हैं। ऐसे ही एक विद्यालय में 'स्वतत्रता' शब्द कई बार सुनने के कारण एक विद्यार्थी ने कौतूहलवश अपने आचार्य से पूछा, 'आजादी के बाद क्या होगा?' आचार्य सिर खुजलाते हुए थोडी देर बाद बोले– 'होगा क्या, आज हम सडक के बाईं ओर से चलते हैं, तब दाईं ओर से चलेंगे।' कैसी सुदर कल्पना है आजादी की! एक और उदाहरण सुनिए। सन् १९४२ में पौरुष प्रकट करनेवाले एक नेता का एक दिन व्याख्यान हुआ। उन्होंने आज की स्थिति की कटु आलोचना करते हुए कहा, 'आज आजादी कहाँ है? आजादी तो तब होगी, जब हम खुशी से थप्पड मारकर पुलिस को बाहर कर सकेंगे और कोई कुछ न कह सकेगा।' ऐसे ही विचार हैं, जो लोगों के मस्तिष्क में चक्कर काटते रहते हैं। अपने वास्तविक जीवन के आधार पर भावी जीवन का चित्र न खींचने के कारण हमारा भविष्य कोरा पडा है, जिसमें समय-समय पर लोग मनमाना रग भर देते हैं। एक अतिश्रेष्ठ महापुरुष ने तो यहाँ तक कह डाला – 'अंग्रेज बाहर चले जाएँ, फिर चाहे अफगानिस्तान का अमीर आकर राज्य करे या हैदराबाद का निजाम स्वेच्छाचार करे, हमें खुशी ही होगी।'

प्रेरणाकेंद्र भारत के हो

इन सब विचित्र कल्पनाओं का कारण है स्वरूप का, अपनेपन का अज्ञान, अपनी परपरा की जड को काटना, प्रतिक्रियात्मक भावना का होना तथा परानुकरण करना। अपने वास्तविक जीवन का ज्ञान हुए बिना जो कार्य किया जाता है, वह अधे के इधर-उधर भटकने के समान है। उससे वास्तविक प्रगति सभव नहीं है। अपनी जड काटकर ससार में कौन बढ पाया है? प्रतिक्रिया के आधार पर किया हुआ कार्य क्षणिक होता है। उसमें स्थायी भाव नहीं होता तथा प्रतिक्रिया के नष्ट होते ही क्रिया समाप्त होकर कार्य भी नाश को प्राप्त होता है। समान आपत्ति के सिद्धात के आधार पर

स्थायी राष्ट्रीय-जीवन का निर्माण कैसे हो सकता है? वह जीवन तो अधिक-से-अधिक आपत्ति रहने तक ही रह सकता है, आगे नहीं। परानुकरण से स्वप्रतिभा का लोप ही होता है। लट्टू की टाँग (Central Pivot) को केंद्र में ही रखना होता है। यदि वह केंद्र लट्टू के बाहर हुआ तो लट्टू घूम नहीं सकता। वर्तुल से बाहर यदि केंद्र हुआ तो वर्तुल काल्पनिक ही होगा। भारतीय जीवन का केंद्र भारत के बाहर रखा जाएगा तो यह जीवन चल नहीं सकता। उस जीवन के सबंध में भारतीयत्व का चाहे कितना ही डिंडिम बजाया जाए, फिर भी उसमें 'भारतीयत्व' नहीं रहेगा। इस प्रकार बाहर से स्फूर्ति प्राप्त करने की वृत्ति अभारतीय तथा अराष्ट्रीय है।

आज की स्थिति तो अवांछनीय है। आज तो लोगों का स्फूर्ति-देवता, उनके आशाकेंद्र तथा उनका ध्येयवाद भारत के बाहर है। चारों ओर उनकी प्रणालियों का, उनके जीवन का, उनकी समाज रचना का तथा उनके ही शब्दाडंबर का जाल फैला हुआ है। हमसे भी लोग कई बार पूछ बैठते हैं कि 'आपके यहाँ कौन-सा वाद (ism) है।' प्रश्नकर्ता स्पष्ट ही यूरोप के विचारों से आक्रांत रहता है तथा अपने जीवन को भी यूरोपीय जीवन के संबंध में पढ़े हुए किसी वाद की चौखट में कसना चाहता है। अपना भी कोई तत्त्व है, अपनेपन का भी कोई श्रेष्ठत्व है, जिससे आदर्श जीवन निर्मित हो सकता है, इसकी वह कल्पना तक नहीं कर सकता।

कितना आत्मविस्मरण है। कितनी गौरवशून्यता है? अपनी ताकत से आकाश को रोकनेवाला दूसरों से भीख माँगे? दूसरों के धन, दूसरों की संपत्ति की उन्नति का प्रयत्न करे और स्वयं भिक्षावृत्ति स्वीकार करे? संसार को गुरुवत चारित्र्य सिखानेवाले भारत को प्रत्येक वस्तु के लिये 'भिक्षा देहि' का उच्चार करना पड़े? कितना अधःपात है।

नहीं, यह कभी नहीं होगा। हमारे सामने अपने पूर्व-पुरुषों के उज्ज्वल चरित्र हैं। स्वप्न में दान करने के कारण अपना संपूर्ण राज्य विश्वामित्र को अर्पित करनेवाले हरिश्चंद्र की कथा से कौन परिचित नहीं होगा? वही हरिश्चंद्र जब दान-दक्षिणा चुकाने के लिए अपने पुत्र और पत्नी सहित काशी को रवाना हुए तो ऋषि विश्वामित्र ने उनकी अग्निपरीक्षा लेने के लिए मार्ग में अत्यंत भीषण मरुस्थल का निर्माण किया। चारों ओर जलरहित बालुकामय प्रदेश और ऊपर से सूर्य का प्रखर ताप। जिस राजपरिवार ने कभी जमीन पर पैर नहीं रखा था, वही इस भीषण प्रदेश से पैदल चला जा रहा था। तप्त बालू से झुलसकर पैरों में छाले पड़ गए

तथा प्यास से कठ सूख गया। राजकुमार रोहिताश्व अत्यत व्याकुल हो उठा। एकाएक उन्हें एक हरा-भरा स्थान दिखाई दिया। तृषा से क्लात रोहिताश्व उधर दौड पडा, राजा और रानी भी पीछे-पीछे पहुँच गए। वहाँ मालूम हुआ कि प्यासे पथिकों को पानी पिलाने के लिए प्याऊ लगी हुई है। हरिश्चद्र ने रोहिताश्व को पानी पीने से रोक दिया। जिसके पूर्वज अपने पुरुषार्थ के बल पर स्वर्ग से जह्नु की जघा को विदीर्ण कर तथा शकर की जटाओं में से निकालकर गगा को पृथ्वी पर लाए थे, वह इस प्रकार पराए दान का पानी पीए? यह उसको शोभा नहीं देता। इससे उन पूर्वजों के नाम पर कलक का टीका लगाना है। इसी प्रकार जिनके पूर्वजों ने दुनिया भर को ज्ञानामृत का पान कराया हो, वे ही आज भीख माँगकर गदी नाली का पानी पीए, यह क्या हमें शोभा देता है?

राष्ट्रीयत्व का बोध अनिवार्य

इन सपूर्ण अराष्ट्रीय प्रवृत्तियों को नष्ट कर राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ उत्पन्न कर इस विशाल एव पुरातन राष्ट्र के जीवन को चिरतन सामर्थ्य से युक्त कर उसको गौरवशाली बनाने के लिए ही हमारी यह प्रवृत्ति है। हम अपने राष्ट्र की आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं। अपने राष्ट्रीयत्व को जीवित रखना चाहते हैं। उसे बलशाली एव वैभवशाली बनाना चाहते हैं। भारतीय राष्ट्रीयत्व का विचार राजनीतिक अधिकारों का विचार नहीं है। उसका प्रखर अभिमान लेकर हम अपने राष्ट्रीय जीवन की अधिष्ठात्री जननी का आह्वान करें, उसी की पूजा करें। सास्कृतिक उच्च सिहासन से माँ को नीचे उतारकर उसके स्थान पर राजनीति की वारागना का अधिष्ठान कदापि न करें। उक्ति है- 'वारागनेव नृपनीतिरनेकरूपा'— राजनीति तो वारागना के समान क्षण-क्षण में अपने हाव-भाव बदलती रहती है। दिन-प्रतिदिन उसका रग बदलता है। माँ को घर से निकालकर वारागना को स्थान देने से हमारी कभी उन्नति नहीं हो सकती। उससे तो विलासप्रियता बढेगी, अध पात होगा और सब प्रकार से दौर्बल्य उत्पन्न होगा। हम राजनीतिकता के इस व्यभिचार से दूर रहना चाहते हैं। यहाँ तो वारागना के दर्शन तक में पाप है। जो कुछ है माता की पूजा के लिए है। नि स्वार्थ भाव से, भक्तिपूर्ण हृदय से उसके चरणों में सर्वस्व को अर्पण करने की एकमात्र अभिलाषा है।

हम परायों से प्रतिभा माँगकर अपनी जीवन-रचना करना नहीं चाहते। हमारी प्रतिभा अपनी है। उसीसे हम अपने सगठन का, अपनी

जीवन-प्रणाली का निर्माण करेंगे। जिस प्रणाली में हमारा मान-बिंदु हमारा रहे, परिपूर्ण भारतीयता का रहे तथा प्राचीन भारतीय परंपरा का अजस्र प्रवाह प्रवाहित होता रहे, वही प्रणाली राष्ट्रीय है। उसी से समाज के दोष और दैन्य नष्ट होंगे। हमारे कार्य की यही विशेषता होनी चाहिए। हमने अपने सामने परम आदरणीय ध्वज को रखा है। यह ध्वज हमारी आत्मा का स्वरूप है। उसी की विशेषताओं को प्रकट करता है। यह अनादिकाल से आई हुई परंपरा का प्रतीक है। इसके धागे के एक-एक सूत्र में अनंत इतिहास छिपा हुआ है, इसके रंग की एक-एक छटा में आत्मयज्ञ की दिव्य ज्वाला दिखाई देती है। इसके नीचे खडे होकर पूर्वजों की अनेक पीढियों ने आत्मसमर्पण का पाठ पढा है। जिनको इसका ज्ञान नहीं है तथा जो इसके गौरव को नहीं समझते, जो इसके एकात्मता के संदेश को नहीं सुन पाते तथा इसमें राष्ट्र की आत्मा का प्रतिबिंब नहीं देखते, वे इसमें परिवर्तन करने, इसमें जोड-तोड करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसे प्रयत्न आत्मघातक हैं, पैर काटकर लकडी का पैर लगाने के समान है। हम यह नहीं होने देंगे। हमारी स्फूर्ति का केंद्र तो प्राचीन काल से चला आ रहा यह राष्ट्र-ध्वज ही है। भारत के जीवन को स्पष्ट करनेवाले, भौतिकवाद को हटाकर त्यागमयी संस्कृति का स्मरण करानेवाले इस ध्वज को हम श्रद्धा की दृष्टि से देखें। यह भारतीयत्व का चिह्नस्वरूप है। इसीलिये यह गौरवमय है, हमारे लिए वंदनीय है। इसपर आघात न होने पाए, इसका गौरव दिनप्रति दिन बढता ही जाए, यही ध्येय हमारे सामने है।

हमने किसी परकीय समाज के महापुरुषों को अपना स्फूर्तिदाता नहीं माना है। हमारे आदर्श छत्रपति शिवाजी महाराज हैं। भारतीय आदर्शों का पालन, यहाँ की संस्कृति, धर्म तथा सभ्यता की रक्षा और विकास के निमित्त प्रयत्न करनेवालों की, जो एक परंपरा अनंतकाल से चली आ रही थी, उसी दिव्य प्राचीन परंपरा के प्रवाह को श्री शिवाजी महाराज ने आगे बढाया था। उन्होंने अपने पुरुषार्थ और नीतिज्ञता से जिस साम्राज्य का निर्माण किया, उसका अप्रतिहत सामर्थ्य परकीय सत्ता के आने तक था। इस शक्ति-निर्माण के द्वारा उन्होंने प्राचीन परंपरा के प्रवाह को हमारे काल से कुछ दिन पूर्व तक लाकर छोडा। वहाँ से उस प्रवाह को उठाकर आगे बढाना है। ऐसे शिवाजी हमारे आदर्श हैं मैजिनी या वाशिंगटन नहीं मार्क्स या स्टालिन नहीं। भिखमंगों के समान रोटी का सवाल रखकर, मानवता की निकृष्ट कल्पना रखनेवालों को हमने स्फूर्तिदाता नहीं माना।

परकीय सस्कार नष्ट हों और प्रादेशिक पटल छिन्न-भिन्न होकर राष्ट्रीय जीवन हृदय में आए, इस दृष्टि से अपने लिए गो-ब्राह्मण-प्रतिपालन का व्रत लेनेवाले शिवाजी ही आदर्श हैं। गो-ब्राह्मण हमारे धर्म और सस्कृति के तत्कालीन प्रतीक थे। अत गो-ब्राह्मण-प्रतिपालन का अर्थ है– अपने धर्म और सस्कृति की रक्षा कर प्रखर जीवन का निर्माण करना। शिवाजी ने यह जीवन-निर्माण किया। कुछ लोग अपने विकृत विचारों को अपने पूर्वजों पर लादने का प्रयत्न करते हैं। इसीलिये कोई समाज के शोषित वर्ग का पोषक सिद्ध कर उन्हें कम्युनिस्ट सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, तो कोई प्रतापगढ के किले पर उनके द्वारा अफजलखाँ की बनाई हुई कब्र का हवाला देकर उन्हें हिंदू-मुस्लिम ऐक्य का कर्ता मानता है। हम उनकी वास्तविक भावनाओं की ओर से क्यों आँखें मूँद लेते हैं? सच तो यह है कि अपनी बुद्धि को गुलाम बनाकर स्वातत्र्य-सूर्य की ओर देखनेवाले चमगादड और उलूक उस सूर्य का दर्शन नहीं कर सकते और न वे उसके प्रखर प्रकाश को सहन कर सकते हैं। उसके लिए तो महान बलशाली गरुड चाहिए। शिवाजी ने स्वय कहा था कि 'मैं अपनी प्राचीन परपरा की निर्मिति के लिए हूँ। स्वधर्म श्रेष्ठ हे। इसकी रक्षा हो।' यह कहकर अपनी परपरा की जीवनधारा को अखड प्रवाहित कर जिस शिवाजी ने समाज में जीवन-रस उत्पन्न किया, उसको कौन अन्यथा कह सकता हे? वही शिवाजी हमारा आदर्श है।

उसी के व्रत को निभानेवाले हम अपने हृदय की परपरा को जागृत करने में ही श्रेष्ठत्व मानकर, उसके विचारों से अपने हृदय को भरें। इस परपरा में अमित सामर्थ्य था। बडे-बडे शक्तिमान इसके सामने झुके, तनिक भी दु साहस नहीं कर सके। ऐसा पराक्रम करनेवाली परपरा का हम साक्षात्कार करें। इसी परपरा के अमृत से सिंचित भावना से परिपूर्ण तेजस्वी सामर्थ्य निमाण करने के लिए ही हमारा प्रयत्न है।

पौरुषत्व का साक्षात्कार

आज जब हम अपने पूर्वजों का नाम लेते हैं तो लोग हमें प्रतिगामी आदि शब्दों से पुकारते हैं। यदि अपने पूर्वजों का नाम लेना, उनके माग पर चलना, उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त करना प्रतिगामीपन है तो हम प्रतिगामी ही हैं। अपने पिता का नाम बताने में शर्म न करते हुए गोरव का अनुभव करना हमारा प्रतिगामीपन है, तो हम प्रतिगामी ही सही। हम तो जानते हैं कि अपने अतीत से अलग होकर कोई भी जी नहीं सकता। अपनी ही गलती के कारण समाज-वृक्ष से अलग होकर ससार में थपेडे खाते हुए लोग जब प्रगति की सोचते हैं तो उन्हें कहीं ठिकाना नहीं मिलता। हम 'मूले

कुठाराघात' की नीति के परिणामस्वरूप उत्पन्न भयकर वातावरण को नष्ट कर अपनी परपरा को जागृत कर, अपने पूर्वजों की ज्योति को प्रज्ज्वलित करें। प्राचीन एकता का आह्वान करते हुए भारतीयता के अधिष्ठान पर, प्राचीनता के गर्भ से जीवन-रस खींचते हुए राष्ट्र-वृक्ष की शाखाओं को पल्लवित करें। हमारे राष्ट्रीय जीवन की आधारभित्ति आध्यात्मिक है, सास्कृतिक है। उसको हम शुद्ध स्वरूप में पहचानें। राजनीति को आध्यात्मिक रग देकर स्वार्थसाधन की प्रवृत्ति से हम बचें। पौरुष-शून्यता के कारण पढता-पूर्ण जीवन व्यतीत करना आध्यात्मिक जीवन नहीं है, वह तो कायरता है। भारतीयत्व की चरम अभिव्यक्ति तो गीता के बाद के उस अर्जुन में हुई, जो सामने पडने पर पहले प्रणाम कर गुरुजनों पर भी बाण-वर्षा कर आत्मरक्षा कर सका। पराक्रम से पीछे पैर न खींचनेवाला, धर्म-अधर्म, कर्म-अकर्म का सच्चा ज्ञान रखनेवाला अर्जुन सदैव भारत के कर्मयोगियों का आदर्श रहा है।

जब हम सच्चे पौरुष का साक्षात्कार करेंगे, तभी अपने भाग्य को बना सकेंगे। हृदय की श्रद्धा तथा अपने बाहुबल में विश्वास रखकर पशु को भी मनुष्य बनाकर छोडेंगे, ऐसी निश्चयात्मक शक्ति को धारणकर कार्य करें। अपने पूर्वजों का स्मरण करते हुए उनके प्राचीन जीवन को उद्दीप्त कर अपनी सुप्त श्रद्धा को जागृत करें। अपने ही कार्य के आधार पर अपनेपन के भाव से अनेक हृदयों को गूँथकर अपने मानबिंदु के चारों ओर एक अभेद्य शक्ति का वलय खडा करने का कार्य करे। अपने प्रखर एव कठोर राष्ट्रवाद के लिए आत्मीयत्व को जागृत करें तथा उससे उत्पन्न सत्ता से उस प्रबल सामर्थ्य एव ऐहिक जीवन का निर्माण करें, जिसमें भ्रष्टाचार न हो, पूर्वजों के साथ अप्रामाणिकता न हो और जीवन के महान एव शाश्वत तत्त्वों के साथ व्यभिचार न हो। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र से दासत्व वृत्ति को दूर कर माता की सेवा के लिए आसेतु हिमाचल वह शक्ति निर्माण करें, जो निरतर बढती जाए जिसमें बाह्यारोपों के कारण विकार उत्पन्न न हो तथा अनेक आदोलनों से विश्व के डाँवाडोल होने पर भी जो अटल रहकर शोभा को प्राप्त करे।

४ राष्ट्रोत्थान का सही मार्ग

(६ अगस्त १९४७, अहमदाबाद)

मेरा आज यहाँ आना आकस्मिक हुआ है। जिस प्रात से होकर मैं यहाँ आया हूँ, वहाँ अपने हिंदू बाधवों की अतीव दु खकारी स्थिति बनी हुई है। अपने से अलग किए गए अपने बधुओं की दर्दभरी कथा हम भूल नहीं

सकते, इसलिए उसका उल्लेख करना आवश्यक है। आज सर्व दूर लोग बहुत आनंदित दिखाई दे रहे हैं, परंतु अपने करोड़ों हिंदू बांधवों को मुसीबतों में, दुःख की खाई में ढकेलकर आनंद मनाना सर्वथा अनुचित है, ऐसा मैं समझता हूँ।

हिंदू समाज दुःखग्रस्त है

सीमावर्ती प्रांतों में रहनेवाले अपने बंधुओं की आज दीन, हीन, लाचार अवस्था हो गई है। जिन नेताओं पर विश्वास रखकर वे लोग निश्चिंत बैठे थे, उन्होंने उन लोगों को दुःख में ढकेल दिया। उस अपार दुःख को हृदय में धारण कर मैं अपना नियोजित प्रवास कर रहा हूँ। परंतु इस परिस्थिति में मैं प्रसन्नता का अनुभव नहीं कर सकता। वह मेरे लिए असंभव है। देश के नेताओं के बारे में मैं टीका-टिप्पणी करना नहीं चाहता। उनके बारे में मेरे मन में विपरीत भाव हैं, ऐसी भी बात नहीं है, परंतु एक बात निश्चित है कि वर्तमान परिस्थिति में मुझे प्रसन्नता नहीं है। प्रथम प्रसूति में पुत्र को जन्म देकर माता की मृत्यु हो गई हो, उस समय घर के लोग आनंद उत्सव नहीं मनाते। परिवार पर एक असीम दुःख की छाया छा जाती है। मुझे ऐसा एक प्रसंग याद है कि एक गृहस्थ के घर पुत्र जन्म हुआ। परंतु कुछ ही समय बाद गृहस्वामी की मृत्यु हो गई। बालक माता की गोद में था, परंतु माता के हृदय में आनंद नहीं था। उसका जीवनस्वामी उसे अकेला छोड़कर चला गया था। उसका जीवन सर्वस्व नष्ट हुआ था। उस माता के लिए जीवन अर्थशून्य, रसहीन हो गया था। उस माता के समान आज मेरी अवस्था है। अपना और अपने अखिल हिंदू समाज का संबंध उस आर्य पति-पत्नी जैसा है। अपने बंधुओं का यह वियोग मेरे लिए असह्य घटना है। इस भाव को व्यक्त करते समय मुझे तनिक भी संकोच नहीं है। संपूर्ण हिंदू समाज की ओर हम एकात्मता की दृष्टि से देखते हैं। वह दुःखग्रस्त है— ऐसा जब हमें दिखाई देता है, तब असह्य वेदना होती है।

हमसे बिछुड़े हुए, दुःखी, पीड़ित और चिंताग्रस्त अपने असंख्य बंधुओं को आश्रय और आधार-स्थान की आज अत्यंत आवश्यकता है। अपने पर प्रेम करनेवाले, संकट के समय सहयोग देनेवाले, अपनी दुरवस्था देखकर अस्वस्थ होनेवाले और अपना पुनरुद्धार करने में प्रयत्नशील अपने [illegible] में हैं ऐमा विश्वास उनमें निर्माण होना चाहिए। भारतवर्ष [illegible] समाज हमारे दुःखों को भूला नहीं है, वह सुसंगठित,

कुठाराघात' की नीति के परिणामस्वरूप उत्पन्न भयकर वातावरण को नष्ट कर अपनी परपरा को जागृत कर, अपने पूर्वजों की ज्योति को प्रज्ज्वलित करें। प्राचीन एकता का आह्वान करते हुए भारतीयता के अधिष्ठान पर, प्राचीनता के गर्भ से जीवन-रस खींचते हुए राष्ट्र-वृक्ष की शाखाओं को पल्लवित करें। हमारे राष्ट्रीय जीवन की आधारभित्ति आध्यात्मिक है, सास्कृतिक है। उसको हम शुद्ध स्वरूप में पहचानें। राजनीति को आध्यात्मिक रग देकर स्वार्थसाधन की प्रवृत्ति से हम बचें। पौरुष-शून्यता के कारण षढता-पूर्ण जीवन व्यतीत करना आध्यात्मिक जीवन नहीं है, वह तो कायरता है। भारतीयत्व की चरम अभिव्यक्ति तो गीता के बाद के उस अर्जुन में हुई, जो सामने पडने पर पहले प्रणाम कर गुरुजनों पर भी बाण-वर्षा कर आत्मरक्षा कर सका। पराक्रम से पीछे पैर न खींचनेवाला, धर्म-अधर्म, कर्म-अकर्म का सच्चा ज्ञान रखनेवाला अर्जुन सदैव भारत के कर्मयोगियों का आदर्श रहा है।

जब हम सच्चे पौरुष का साक्षात्कार करेंगे, तभी अपने भाग्य को बना सकेंगे। हृदय की श्रद्धा तथा अपने बाहुबल में विश्वास रखकर पशु को भी मनुष्य बनाकर छोड़ेंगे, ऐसी निश्चयात्मक शक्ति को धारणकर कार्य करे। अपने पूर्वजों का स्मरण करते हुए उनके प्राचीन जीवन को उद्दीप्त कर अपनी सुप्त श्रद्धा को जागृत करें। अपने ही कार्य के आधार पर अपनेपन के भाव से अनेक हृदयों को गूँथकर अपने मानबिंदु के चारों ओर एक अभेद्य शक्ति का वलय खडा करने का कार्य करे। अपने प्रखर एव कठोर राष्ट्रवाद के लिए आत्मीयत्व को जागृत करें तथा उससे उत्पन्न सत्ता से उस प्रबल सामर्थ्य एव ऐहिक जीवन का निर्माण करें, जिसमें भ्रष्टाचार न हो, पूर्वजों के साथ अप्रामाणिकता न हो और जीवन के महान एव शाश्वत तत्त्वों के साथ व्यभिचार न हो। इस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र से दासत्व वृत्ति को दूर कर माता की सेवा के लिए आसेतु हिमाचल वह शक्ति निर्माण करें, जो निरतर बढती जाए, जिसमें बाह्यारोपों के कारण विकार उत्पन्न न हो तथा अनेक आदोलनों से विश्व के डाँवाडोल होने पर भी जो अटल रहकर शोभा को प्राप्त करे।

४ राष्ट्रोत्थान का सही मार्ग

(६ अगस्त १९४७, अहमदाबाद)

मेरा आज यहाँ आना आकस्मिक हुआ है। जिस प्रात से होकर मैं यहाँ आया हूँ, वहाँ अपने हिंदू बाधवों की अतीव दु खकारी स्थिति बनी हुई है। अपने से अलग किए गए अपने बधुओं की दर्दभरी कथा हम भूल नहीं

सकते, इसलिए उसका उल्लेख करना आवश्यक है। आज सर्व दूर लोग वहुत आनदित दिखाई दे रहे हैं, परतु अपने करोडों हिंदू बाधवों को मुसीबतों में, दु ख की खाई में ढकेलकर आनद मनाना सर्वथा अनुचित है, ऐसा मैं समझता हूँ।

हिंदू समाज दु खग्रस्त है

सीमावर्ती प्रातों में रहनेवाले अपने वधुओं की आज दीन, हीन, लाचार अवस्था हो गई है। जिन नेताओं पर विश्वास रखकर वे लोग निश्चित वैठे थे, उन्होंने उन लोगों को दु ख में ढकेल दिया। उस अपार दु ख को हृदय में धारण कर मैं अपना नियोजित प्रवास कर रहा हूँ। परतु इस परिस्थिति में मैं प्रसन्नता का अनुभव नहीं कर सकता। वह मेरे लिए असभव है। देश के नेताओं के बारे में मैं टीका-टिप्पणी करना नहीं चाहता। उनके वारे में मेरे मन में विपरीत भाव हैं, ऐसी भी बात नहीं है, परतु एक बात निश्चित है कि वर्तमान परिस्थिति में मुझे प्रसन्नता नहीं है। प्रथम प्रसूति में पुत्र को जन्म देकर माता की मृत्यु हो गई हो, उस समय घर के लोग आनद उत्सव नहीं मनाते। परिवार पर एक असीम दु ख की छाया छा जाती है। मुझे ऐसा एक प्रसग याद है कि एक गृहस्थ के घर पुत्र जन्म हुआ। परतु कुछ ही समय बाद गृहस्वामी की मृत्यु हो गई। बालक माता की गोद में था, परतु माता के हृदय में आनद नहीं था। उसका जीवनस्वामी उसे अकेला छोडकर चला गया था। उसका जीवन सर्वस्व नष्ट हुआ था। उस माता के लिए जीवन अर्थशून्य, रसहीन हो गया था। उस माता के समान आज मेरी अवस्था है। अपना और अपने अखिल हिंदू समाज का सवध उस आर्य पति-पत्नी जैसा है। अपने बधुओं का यह वियोग मेरे लिए असह्य घटना है। इस भाव को व्यक्त करते समय मुझे तनिक भी सकोच नहीं है। सपूर्ण हिंदू समाज की ओर हम एकात्मता की दृष्टि से देखते हैं। वह दु खग्रस्त है– ऐसा जब हमें दिखाई देता है, तब असह्य वेदना होती है।

हमसे विछुडे हुए, दु खी, पीडित और चिताग्रस्त अपने असख्य वधुओं को आश्रय और आधार-स्थान की आज अत्यत आवश्यकता है। अपने पर प्रेम करनेवाले, सकट के समय सहयोग देनेवाले, अपनी दुरवस्था देखकर अस्वस्थ होनेवाले और अपना पुनरुद्धार करने में प्रयत्नशील अपने बाधव भारतवर्ष में हैं ऐसा विश्वास उनमें निर्माण होना चाहिए। भारतवर्ष में स्थित हमारा समाज हमारे दु खों को भूला नहीं है, वह सुसगठित,

सामर्थ्यसपन्न है और हमारी भलाई के लिए सतत प्रयत्नशील है, ऐसा विश्वास उनमें पैदा करना हमारा काम है।

सघनिर्माता की चेतावनी

जिस समय राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ की स्थापना हुई थी, उस समय सघ के निर्माता ने हिंदू समाज की ऐसी विपरीत अवस्था होनेवाली है, ऐसा भविष्य-कथन किया था। अपने देश के बारे में इस प्रकार का भयानक चित्र किसी ने उस समय खींचा होता, तो उसपर कोई विश्वास नहीं करता। किंतु, आज हम उस स्थिति को प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं। एक भू-भाग पर रहनेवाले लोगों में कभी-कभी एकता की ऊपरी लहर दिखाई देती है, परतु इस एकता की लहर के नीचे भारी विष छिपा हुआ है, इसकी पहचान हमें अनुभव से आज हो रही है। पू डाक्टर साहब ने यह बात बाईस वर्ष पूर्व बताई थी। वह आज सत्य सिद्ध हुई है। ऐक्य की भ्रामक कल्पना के कारण हमें सकटों का सामना करना पड़ा— यह आधुनिक इतिहास के अभ्यास से हम समझ सकते हैं।

प्रादेशिक राष्ट्रवाद की कल्पना भ्रममूलक

एक प्रदेश में रहनेवाले एक राष्ट्रीय, यह प्रादेशिक राष्ट्रवाद की कल्पना भ्रममूलक है। यह तो सकट की प्राथमिक अवस्था है— ऐसा मैं समझता हूँ। इस सत्य को पू डाक्टर साहब ने अति स्पष्ट रीति से प्रतिपादित किया था। उस समय लोगों ने उन्हें 'पागल' कहा, क्योंकि डाक्टर साहब की विचारप्रणाली उन्हें बिलकुल प्रतिगामी स्वरूप की लगती थी। परतु डाक्टर साहब का भविष्य-कथन आज सत्य सिद्ध हुआ है। फिर भी आज लोग मानते हैं कि जो हुआ सो हुआ, अब सब ठीक हो जाएगा। लोगों का यह सोचना भी भ्रमपूर्ण ही है। जिसके हृदय में हिंदुत्व के बारे में चिंता, प्रेम और स्वत्व का अभिमान है, वह तो मन में आगामी सकट की कल्पना कर, अपने सगठन के काम पर लक्ष्य केंद्रित करे, ऐसी चेतावनी देना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

श्रद्धा की भावना की महत्ता

आज लोग हमें हमारे नाम से पहचानते नहीं। हम वास्तविक रूप से हिंदू अथवा भारतीय हैं परतु दुनिया में और अपने देश की राजनीति में हमें 'गैर-मुसलमान'— इस नकारात्मक नाम से पहचाना जाता है। अपने देश को The rest of India नाम से ही जानते हैं। हर एक हिंदू इसका अपने हृदय में

बराबर विचार करे। क्या अपने धर्म, परपरा और सस्कृति पर श्रद्धा रखना अधार्मिक कृत्य है? वास्तविक रीति से तो परपरा ओर सस्कृति पर श्रद्धा, धर्म का परिचायक है। अपने सस्कारों में जो श्राद्ध सस्कार है, उसके पीछे इस श्रद्धा की भावना ही प्रकट होती है। अपने पूर्वजों का स्मरण कर, उन्होंने निर्माण की हुई सास्कृतिक परपरा में श्रद्धा रखना यही तो श्राद्ध-विधि का तत्त्व हे। श्रद्धा की ऐसी महत्ता को यदि हम भूल जाएँ तो वह महान पाप होगा। जो समाज ऐसा पाप करता है उसका पतन होता है और जो इन पापों से मुक्त रहते हैं, वे अनेक झझावातों के सामने भी टिके रहते हैं।

अपनी परपरा अत्यत श्रेष्ठ है, उज्ज्वल है और उसमें नितात श्रद्धा रखना एक सद्‌भावना है, जो हमें व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय में निर्माण कर सपूर्ण समाज में जागृत करना चाहिए। अन्यथा 'जैसी करनी वैसी भरनी', 'इस हाथ दे, उस हाथ ले' कर्म का यह अटल सिद्धात त्रिकालाबाधित है। अपने पातकों की मीमासा करते हुए एक श्रेष्ठ पुरुष ने कहा था कि बिहार का भूचाल केवल निसर्ग के नियम के अनुसार नहीं हुआ है, वह तो अपने पातकों का परिणाम है ओर वह पातक, याने अपनी अस्पृश्यता की भावना। यह कार्य कारण-मीमासा ऐसे एक श्रेष्ठ पुरुष की हे जो स्वय अतींद्रिय दृष्टि रखने का दावा करते हैं। यदि यह मीमासा सत्य मानें, तो इससे सहस्र गुना अधिक विश्वास हमें दूसरी मीमासा पर भी करना पडेगा कि हमने अपने पूर्वजों की स्मृति नष्ट की, उनसे प्रदत्त सास्कृतिक देन और समाज के प्रति अपना कर्तव्य हम भूल गए, परिणामस्वरूप आज की दुर्दशा देख रहे हैं। यह कार्य-कारणभाव तो प्रत्यक्ष हम अनुभव कर रहे हैं। इसके लिए अतींद्रिय दृष्टि की आवश्यकता नहीं है।

भारत-विभाजन पापो का ही फल

एक बार यह भी कहा गया था कि चाहे मेरे शरीर के टुकडे हों, परतु भारतमाता के टुकडे नहीं होंगे, हम विभाजन मान्य नहीं करेंगे, परतु वह हो गया। यह अपने पापों का ही फल समझना चाहिए। अपना यह प्रथम कर्तव्य है कि अपनी परपरा के प्रति प्रखर श्रद्धा, परम आदर-भाव निर्माण करें। आज भी अपनी उज्ज्वल सस्कृति के प्रतीक कुछ महापुरुष भारतवर्ष में हम देखते हैं। परतु उनके प्रति श्रद्धा का भाव लोगों के मन में नहीं दिखता। लगता है कि हिंदू अकेला ही ऐसा समाज है जहाँ अपनी परपरा के प्रति श्रद्धा रखना मानो पाप माना जाता है। दुनिया में अन्य समाज अपने गत इतिहास को भूलते नहीं। रूस जैसा देश भी नहीं भूलता।

वह भी अपने सव महापुरुषों के प्रति आदर रखता है। रूस के एक प्रतिष्ठित लेखक के साहित्य में 'अपने पूर्वजों के चरित्र का अभ्यास करो', 'परपरा का अभिमान रखो', 'हमने कोरिया को एक वार पराजित किया था, फिर से पराजित करेंगे'— ऐसे कई वाक्य पढने को मिलते हैं। रूस की विजय का रहस्य है, उसका अपनी परपरा का अभिमान, जवकि लोगों की मान्यता है कि रूस ने अपनी परपरा का विच्छेद किया है।

राष्ट्र के स्वातत्र्य का प्रथम चरण अपने पूर्वजों के प्रति अभिमान रखना है, न कि रूस, अमरीका, इग्लैंड आदि अन्य देशों की विचारधाराओं का अभिमान। जव प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्त्व को भूलकर राष्ट्र-कल्याण को ही ध्येय के रूप में सामने रखता है, तभी राष्ट्र का उत्थान होता है।

राष्ट्र हित मे सर्वस्वार्पण करने की वृत्ति

शिवाजी महाराज के जीवन का एक प्रसग वडा ही उद्वोधक है। एक वार शिवाजी जव छोटी सी फौज के साथ थे, तभी शत्रु ने उनको घेर कर चारों ओर खाइयॉ खुदवाई और उनको अगार से भर दिया। शिवाजी महाराज उलझन में पड गए कि खाई को कैसे पार करें। इतने में कुछ सैनिक अगार पर सो गए। ये सैनिक अनपढ थे, परतु राष्ट्र के लिए सर्वस्व अर्पण करने की वृत्ति उनमें थी। अपनी तरक्की, अपना स्वार्थ, व्यक्तिगत आशा-आकाक्षा का तनिक भी मोह उनमें नहीं था। ऐसी असामान्य त्यागवृत्ति के कारण ही तव स्वातत्र्य का दर्शन हुआ और भारत का ध्वज पुन सिघु नदी के पार लहराने लगा था।

राष्ट्र के लिए सर्वस्वार्पण करने की वृत्ति आज हमें दिखाई देती है क्या? कितने ही लोग राष्ट्र के प्रति उदासीनता रखते हैं। मैं टीका-टिप्पणी नहीं करना चाहता, परतु इतना तो कहूँगा कि ऐसी वृत्ति के कारण हमें सच्चा स्वातत्र्य प्राप्त नहीं होगा। स्वातत्र्य नि स्वार्थी वलिदान के ऊपर ही आधारित होगा। शत्रुओं ने गर्जना की कि हम इस भूमि को रक्त से स्नान करवाएँगे, तो अपने लोगों में भय उत्पन्न हुआ। यह भय, हमारे अदर शक्ति और आत्मविश्वास की कमी वताता है। समाज में एकता का सूत्र नहीं है यह सिद्ध करता हे। समाज को सुसगठित करने के लिए स्वाभिमान की वृत्ति हममें निर्माण होनी चाहिए। अमरीका, जर्मनी या रूस के सिद्धातों का पानी सींचने से भारतीय सस्कृति का वृक्ष जी नहीं सकेगा। देश में आज ऐसी स्थिति है कि एक दूसरे से बिलकुल भिन्न सिद्धात भी कोई व्यक्त करता है, तो उसको अनुयायी मिल जाते हैं। यह सव राष्ट्र-भक्ति के अभाव

को ही सूचित करता है। दुनिया के लोग यह कहकर अवश्य हँसते होंगे कि मातृभूमि का विभाजन होने के बाद भी हिंदुस्थान के लोग कितने प्रसन्न हैं।

संघ ही एकमेव उपाय

हमारे देश को राजकीय सत्ता प्राप्त हुई है। इस सत्ता का उपयोग हमें अपने दु खग्रस्त बांधवों की पीडा दूर करने के लिए करना चाहिए। उनकी रक्षा कर, सभी को एक सूत्र में गूँथकर आसेतु हिमाचल हिंदू समाज में एकसूत्रता रहे ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। अपने गाँव, धन– सब कुछ लूटा गया, स्त्रियाँ भगाई गई, तो भी हम पर कुछ असर हुआ दिखाई नहीं देता। यह कैसी विचित्र बात है। क्या हमारे कोई मानबिंदु हैं ही नहीं? अनादिकाल से चलते आए अपने अनेक मानबिंदु हैं, उनके प्रति श्रद्धा जागृत करनी होगी। अपने हृदय में पूर्वजों का रक्त बहता है, गटर का पानी तो नहीं? अपने बांधवों का रक्षण हो, उनको शांति व स्वास्थ्य मिले और उनका जीवन भव्य बने– यह देखने की जिम्मेदारी अपनी है, यह हमें कभी भी भूलना नहीं चाहिए। इसके लिए अपने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अलावा और कोई मार्ग नहीं है।

अपने को चारों ओर से संकटों ने घेरा है। परंतु अभी भी अपने बडे-बडे लोग सब प्रश्न हल हो गये हैं– ऐसी कल्पना में मग्न रहते हैं। वे कहते हैं कि पाँच साल में भारत एक होगा। कोई कहता है कि अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति का दबाव अपनी इच्छाओं को फलीभूत करेगा। कोई कहता है कि राजनीति में दाँवपेंच खेलने से अपना काम होगा। आर्थिक समस्या से भयभीत होकर पाकिस्तान बनानेवाले फिर से शरणागति स्वीकार करेंगे। इस प्रकार की कल्पना में लोग मस्त हैं। इन कल्पनाओं में मुझे तनिक भी विश्वास नहीं है। जिनमें पौरुष है, वे आर्थिक समस्या के लिये कभी भी शरणागति स्वीकारेंगे नहीं। वे तो साम्राज्य बढाने का प्रयास करेंगे। सन् १९३५ में कम्यूनल अवार्ड जब दिया गया तो बडे-बडे लोग कहते थे कि यह Award इतना विचित्र है कि पाँच वर्षों में ही मुसलमान उसे बदलने का विचार करेंगे। परंतु मुसलमानों की माँगें बढती ही गईं और आज देश के विभाजन का समय आया है।

सामर्थ्य का आविष्कार

पाँच वर्षों में ऐक्य निर्माण करना हो तो उसके लिए भी प्रयत्न करना होगा। अपना सामर्थ्य बढाना होगा। भारत की समर्थ शक्ति से हाथ

मिलाए बिना अपना कुछ चलेगा नहीं, ऐसी प्रतीति प्रतिपक्षी लोगों के मन में उत्पन्न करनी चाहिए। नि स्वार्थ वृत्ति से अपने जीवन-सर्वस्व की बाजी लगा कर अपने इस हिदू-समाज को एकसूत्र में लाना सघ का ध्येय है। हिदुओं में सुव्यवस्थित सगठन कर व्यक्ति का व्यक्तित्व राष्ट्र की आकाक्षा में विलीन करना और शुद्ध सात्विक सामर्थ्य का आविष्कार करना सघ का कार्य है। अपने राष्ट्र को बलवान बनाने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। सामर्थ्य के बिना हम दुनिया के सघर्ष में टिक नहीं सकेंगे। अखिल भारत का विशाल क्षेत्र हृदय में रखकर अखिल हिदू समाज की सघ चिता करता है। हमें यह पूरा विश्वास है कि इसके बिना अपने राष्ट्र के उद्धार का अन्य कोई मार्ग नहीं है।

卐 卐 卐

५ बालस्वयसेवको का दायित्व

(सन् १९४७ के नागपुर के बाल शिविर में भाषण)

हम सब हिदू हैं। आज अपने समाज की अत्यत दीन अवस्था है। अपने समाज को नाना प्रकार के सकटों का सामना करना पड रहा है। इन सकटों में से हमें रास्ता निकालना है। केवल ईश्वर की प्रार्थना करने से यह नहीं होगा। हमें अपने समाज में सगठित शक्ति निर्माण कर, उसके बल पर सारी दुनिया को अपने पराक्रम-पौरुष का परिचय देना है। इसके लिये हमें अथक परिश्रम करना पडेगा। अपने आद्य सरसघचालक बचपन से ही सोचा करते थे कि हम 'हिदू' इस विशाल देश के स्वामी होकर भी मुट्ठीभर विदेशी लोगों के गुलाम क्यों बने? सघ-स्थापना के पूर्व उन्होंने विभिन्न आदोलनों और सस्थाओं में भाग लिया था। अन्य बडे-बडे नेताओं के कथन पर विश्वास रखकर उन्होंने उनके साथ कार्य भी किया। परतु उन कार्यों का अनुभव लेने के पश्चात् उन्होंने उन सभी सस्थाओं का परित्याग किया और सघकार्य समाज के सामने रखा।

तुम लोग बाल स्वयसेवक हो भावी काल के राष्ट्र के आधारस्तभ हो। हम लोग सारी दुनिया को अपने सामने नत-मस्तक करने की बात करते हैं क्योंकि हमारे पूर्वजों ने अपने पराक्रम से यह कर दिखाया था। हमें स्मरण है कि एक समय अपना भगवा ध्वज काबुल के पार फहरता था। इस छोटी आयु में भी तुम देशकार्य कर सकते हो। अपने इतिहास के एक श्रेष्ठ महापुरुष शकराचार्य ने ८ वर्ष की आयु में ही अपने लक्ष्य और

कर्तव्य के बारे में विचार किया था। उस समय की परिस्थिति अत्यंत विकट थी। आज के समान उस समय यातायात के साधन नहीं थे। इधर-उधर घने जंगल थे, जिनमें हिंस्र पशु, लुटेरे और हत्यारे संचार करते थे। शंकराचार्य अकेले थे और उनके विचारों का विरोध करनेवाले असंख्य लोग थे। ऐसी अत्यंत प्रतिकूल परिस्थिति में भी शंकराचार्य ने जीवन के शेष २४ वर्षों तक पूरे भारतवर्ष की पैदल यात्रा विभिन्न संकटों का सामना करते हुए की, अनेक विद्वान पंडितों को अपने विचारों के अनुकूल कर उन्हें अपना शिष्य बनाया। आजकल लोग कहते हैं कि अपना देश बहुत विशाल है, इसमें अनेक भेद हैं, इसलिए संपूर्ण देश का विचार न करते हुए हमें प्रांतों का ही विचार करना चाहिए। वे ऐसा इसलिए कहते हैं, क्योंकि उन्हें शंकराचार्य के समय का विस्मरण हो गया है। ८ वर्ष की आयु के स्वयंसेवकों को संघ में 'बाल स्वयंसेवक' कहा जाता है। वे अपने सामने शंकराचार्य के बचपन में किए गए दृढ निश्चय तथा उसके बाद उनके द्वारा किए गए अभूतपूर्व कार्य का आदर्श रखें।

शंकराचार्य का उदाहरण अति प्राचीन लगता होगा, इसलिए छत्रपति शिवाजी का उदाहरण रखता हूँ। प्रत्येक स्वयंसेवक को शिवाजी का चरित्र ध्यानपूर्वक पढना चाहिए। शिवाजी के पिताजी शहाजी बीजापुर के दरबार में एक बडे सरदार थे। एक दिन वे शिवाजी को बीजापुर के दरबार में ले गए। दरबार में शिवाजी ने निर्भयता से कहा कि 'यह हमारा बादशाह नहीं है, इसलिए मैं उसे सलाम नहीं करूँगा।' ८-९ वर्ष की आयु में उनके द्वारा भरे दरबार में तेजस्विता प्रकट की गई। उस छोटी आयु में उन्हें सम्यक् ज्ञान था कि अपना-पराया कौन है। बाद में वे पुणे में रहने लगे। वहाँ उन्होंने मावला मित्र एकत्र किए। मावला लोगों का संगठन धीरे-धीरे बढता गया और कुछ दिनों बाद उसका स्वरूप इतना प्रचंड हुआ कि दिल्ली के बादशाह को उसका भय लगने लगा। उसने इस शक्ति को नष्ट करने के अनेक प्रयास किये, परंतु वे सब विफल हुए। बादशाह के मामा शाइस्ताखान ने भी पुणे में आकर शिवाजी को नष्ट करने का प्रयास किया, परंतु उसे अपना पुत्र और अपनी उँगलियाँ गँवाकर वापस जाना पडा। हमें ध्यान रखना चाहिए कि शिवाजी ने अपने जीवन में जो महत्त्वपूर्ण कार्य किए उनका बीजारोपण ८-९ वर्ष की आयु में ही हुआ था।

ये दो उदाहरण आँखों के सामने रहने पर हम क्यों सोचें कि छोटे होने के कारण हम कुछ भी नहीं कर सकते। हम इस जीवित हिंदू-समाज

और सुदृढ आधाररतम वनने की पात्रता मैं अपने में पैदा करूँगा और इसके लिए सारे कार्यक्रम अत्यत अनुशासन से करूँगा।'

ᗒᗒᗒ

६ सघकार्य ईश्वरीय कार्य है

(१८ जनवरी १९४८, पजाब)

हमने अपनी सस्कृति अपने जीवन की आत्मा भारतीयता को ठुकराया। उसका यह विपैला फल निकला। इतिहास से ही समाज के जीवन की परीक्षा होती है। यह इतिहास का कटु सत्य है कि अपनी सामाजिक आत्मा का हनन करने के कारण ही हमें आज का दुर्दिन देखना पडा। परतु लोग तो कहते हैं कि इतिहास को भूल जाओ। भूल जाने से गलतियाँ तो हटेंगी नहीं। आज की अवस्था हमारी विजय की नहीं, पराभव की है। हम समझ लें कि गलती के पश्चात उसे ठीक करने से ही यश मिल सकेगा। इसमें सकोच करना ठीक नहीं। 'लोग क्या कहेंगे? अब तक मैं जो कुछ मानता आया हूँ, उसे कैसे छोडूँ?' यही हम सोचते रहे, तो कहना पडेगा कि हममें वैयक्तिक अभिमान कूट-कूटकर भरा है और हम राष्ट्र की सेवा के भाव से खडे नहीं हैं। हृदय से गलती मान कर राष्ट्र की आत्मा को पहचानते हुए हिंदुस्थान तथा हिंदू समाज को बलशाली बनाने का रास्ता चुनना ही पडेगा।

हमें सर्वथा भिन्न शुद्ध भारतीयता के आधार पर अपना सगठन स्थापित करना है। मार्ग के कष्टों से हम डरते नहीं हैं। हमने परमात्मा से यह प्रार्थना कभी नहीं की कि हमारे पथ में काँटे न आएँ। हम तो यही प्रार्थना करते हैं कि हमारा सगठन इतना दृढ हो कि वह सारे कष्टों का निवारण कर सके। कोई तथाकथित नियम न होते हुए भी यह बढता हुआ कार्य परमात्मा की स्फूर्ति के आधार पर खडा है। शुद्ध सगठन का साक्षात्कार हमारे हृदय में लिखा हुआ है। हम तो केवल भारत की ही उपासना करते हैं और हमारा विश्वास है कि जो भारत की उपासना करेगा, वही भारत के गौरव को प्राप्त करेगा।

मुझे इतिहास का वह दिन स्मरण हो रहा है, जब छत्रपति शिवाजी के पश्चात् महाराष्ट्र में रघुनाथराव पेशवा हुए। आज से केवल एक सौ नब्बे वर्ष पहले (सन् १७५८) में रघुनाथराव पेशवा ने अपनी विजयशक्ति के भरोसे सेना के साथ, रावी, झेलम व सिन्धु को पार किया और अपना

विजयी भगवाध्वज काबुल में जाकर फहराया। क्या दृश्य था। रघुनाथराव छत्र लगाकर सिंहासन पर बैठा है। उसके सामने काबुल का अमीर हाथ बाँधे, गिडगिडाता हुआ कह रहा है— 'अफगानिस्तान के दक्षिण भाग पर आप अधिकार करें, मैं अपने लिए केवल उत्तरी भाग रखता हूँ। पर इसके बदले उत्तर से होनेवाले आक्रमणों से आप मेरी रक्षा करें।' उस समय, अर्थात् आज से केवल १६० वर्ष पहले अफगानिस्तान का विभाजन किया गया। आज उस शिवाजी को, जिसके अनुयायियों ने काबुल जाकर अपना झडा गाडा, पथभ्रष्ट कहनेवाले हम लोगों ने क्या प्राप्त किया? अपनी पराजय स्वीकार कर अपनी ही मातृभूमि का हमने अपने ही हाथ से विभाजन किया है। अपने देश के टुकडे कर स्वय हमने एक बडा भाग परायों को सौंप दिया है। इसपर भी हम अपनी ही पीठ ठोंकते हैं कि हमने कैसी अद्वितीय विजय प्राप्त की है।

हमने अपने पूर्वजों को भुला दिया, अपने पवित्र कार्य को अपने हाथ से छोड दिया और इस प्रकार माता के स्थान पर अन्य किसी को बिठाकर उसकी पूजा की। परतु दूसरों के पैरों से लताडे जाने के बाद अब रोने से क्या होता है? अब सगठन कार्य ही एक रास्ता है। इस रास्ते पर चलकर, जब यह आबाल-वृद्ध हिंदू समाज अपनी भारतीयता के आधार पर स्वाभिमान के साथ खडा हो जाएगा, तब अपनी जेब से खोई हुई चीज को फिर से प्राप्त कर वह इस राष्ट्र को वैभवशाली बनाने में अवश्य सफल होगा।

ि ि ि

७ प्रथम गणतत्र दिवस

(२६ जनवरी १९५०, नागपुर)

आज हमारा अपना सविधान कार्यान्वित हुआ है। ब्रिटिश राज्य मडल से हमारे सबध की अतिम कडी भी टूट गई और ब्रिटिश शासन के प्रतीक ताज के स्थान पर अशोक चक्र स्थापित हो गया है। हम अब नैतिक या राजनैतिक किसी भी दृष्टि से उनसे बँधे हुए नहीं हैं। अब हम अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतत्र हैं।

आज २० वर्ष के लबे और सतत सघर्ष के बाद हमने अपने ध्येय की प्राप्ति की है। रावी के तट पर २० वर्ष पूर्व औपनिवेशिक स्वराज्य को ठुकराकर पूर्ण स्वतत्रता का प्रस्ताव हमारे आज के प्रधानमत्री प जवाहरलाल नेहरू द्वारा उपस्थित किया गया था और काग्रेस ने उसे स्वीकार किया था।

उसके बाद प्रतिवर्ष २६ जनवरी को हम यह दिन 'स्वतन्त्रता दिवस' के रूप में मनाते रहे, किंतु हमारे चारों ओर विदेशी प्रभुत्व बना रहा।

आज का अवसर हार्दिक आनद का अवसर है और हमें इस बात के लिए हर्ष होना चाहिए कि यह हमारा महान सौभाग्य है कि हम अपने देश के इतिहास की ऐसी शुभ घडी पर उपस्थित हैं। हर्ष तो हमें अवश्य मनाना चाहिए, किंतु वह हर्ष और आनद चहल-पहल बनकर ही समाप्त न हो जाए। देशभक्तों और बलिदानियों ने स्वतत्र, सुखी और समृद्ध भारतमाता का जो उज्ज्वल चित्र अपने सम्मुख रखा था, उसके कुछ भाग सत्य सृष्टि में परिणत हो गए हैं, किंतु फिर भी चित्र अभी अधूरा है।

उस चित्र को पूर्ण करने के लिए हमें सविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों से उत्पन्न उल्लास के साथ ही देश के सम्मुख उपस्थित समस्याओं का भी विचार करना चाहिए। हमारे बीच में करोडों बेघर, बेकार, दु खी तथा निर्वासित बधु हैं। दरिद्रता और दीनता की समस्याएँ चारों ओर खडी हैं। उन्हें सुलझाने के लिए हमें प्रत्येक अधिकार के साथ जुडा हुआ उसका अनिवार्य कर्तव्य स्मरण रखना चाहिए।

आज का दिन सहस्रों वर्षों की तपस्या का ही परिणाम है। जब भारतीय असतोष के जनक लोकमान्य तिलक की मृत्यु के पश्चात् यथार्थवादियों का यह देश निराशा और शोक से सतप्त था, तब गाँधी जी अपने साधु जीवन सहित सम्मुख आए और उन्होंने जनता के अत करण को नए साहस और नए विश्वास से भर दिया, जिसके परिणामस्वरूप स्वतत्रता की प्राप्ति हो सकी।

स्वतन्त्रता के बाद हमारे यहाँ गृहकलह न होने का कारण यही है कि हमारी विजय गौरवमय सघर्ष एव त्याग के पश्चात् प्राप्त हुई है।

'त्याग, त्याग और अधिक त्याग', 'प्रयत्न, प्रयत्न और अधिक प्रयत्न', आज यही हमारे नारे होने चाहिए। जब तक हिंदू सभ्यता को जीवन प्रदान करनेवाली सस्कृति का शक्ति-स्रोत यथापूर्व प्रवाहित नहीं होगा, तब तक हमारी समस्याओं का मूल कारण दूर नहीं होगा। सपूर्ण शक्ति लगाकर हमें सस्कृति की पवित्र जीवनधारा को अखड रखना है, उसी से उत्थान की प्राप्ति हो सकेगी।

८ कश्मीर को स्व-निर्णय का अधिकार घातक

(१५ फरवरी १९५०, कानपुर)

पहले के प्रांतों को अब राज्य कहा जाता है। यह स्वयं निर्णय से निश्चित हुआ है। इस स्वयं निर्णय के द्वारा एक कुटुम्ब के स्थान पर अनेक कुटुंबों की भावना दृढ की जाती है। यद्यपि आज केंद्रीय सरकार कुछ प्रबल दिखती है, किंतु इस स्व-निर्णय के कारण कभी दुर्बल नहीं होगी, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

हमारे विधान में आत्म-निर्णय का अधिकार मान्य किया गया है। इस अधिकार को मानने का मेरी समझ में तो कोई कारण नहीं है। हमारा देश एक न होता तो श्री शंकराचार्य कश्मीर जाकर एक ऊँचे गिरि-शृंग पर शिव-मंदिर की स्थापना कैसे कर पाते। कश्मीर भारत का ही अंग है। 'भारत' शब्द का नामोच्चार करते ही उसमें कश्मीर का अंतर्भाव अपने आप ही हो जाता है, किंतु आज उस कश्मीर को स्व-निर्णय का अधिकार दिया जाता है। जनमत होने की कल्पना मेरी समझ में आती है। देह के किसी एकाध अवयव के विषय में संपूर्ण देह को निश्चय करना चाहिए। किसी अंग का आपरेशन करने का विचार उतना भाग ही करेगा या संपूर्ण शरीर? कश्मीर के विषय में निर्णय करना है तो सबको मिलकर करना चाहिए। एकाध प्रांत के भविष्य के विषय में क्या सारे राष्ट्र का मत लेना उचित नहीं है? फिर भी काश्मीर को स्व-निर्णय का अधिकार देने का घातक निर्णय किया गया।

भाषावार प्रांत-रचना का प्रश्न भी ऐसा ही है। मैं भाषानुसार प्रांत-रचना के विरुद्ध नहीं हूँ। किंतु चेन्नै के विरुद्ध आंध्र, असम के विरुद्ध बंगाल हों, इस बात के विरुद्ध अवश्य हूँ। सुविधा के लिए भाषा के आधार पर प्रांत बनाना पृथक बात है और उसके लिए जिद करते हुए दूसरे का रक्त बहाने को सिद्ध हो जाना दूसरी बात है। मुंबई प्रांत के एक बड़े नेता हैं। उन्होंने अपने भाषण में कहा कि 'यदि हमारी इच्छा के अनुसार हमारा प्रांत नहीं बना, तो हम पडोसी प्रांत के निवासियों के रक्त की नदियाँ बहा देंगे।' उनके भाषण को पढकर मैं सोचता रहा कि जब विभाजन के काल में सचमुच में रक्त की नदियाँ बह रही थीं और हजारों बंधु-भगिनी-माताएँ पीडित थीं, तब इस महापुरुष के मन में कोई क्षोभ नहीं हुआ। अब मुंबई को इधर-उधर रखने के प्रश्न पर रक्त की नदियाँ बहा देने की बात हो रही

हैं। मैं इसके ही विरुद्ध हूँ। ऐसी प्रवृत्ति हममें नहीं होनी चाहिए, क्योंकि इससे आपसी द्वेष की भावना बढती है और राष्ट्र के टुकडे-टुकडे हो जाते हैं।

एकात्म राष्ट्रभाव का पोषण

संविधान बनाते समय अपने 'स्वत्व' को, अपने हिंदूपन को विस्मृत कर दिया गया। उस कारण एकसूत्रता की यह वृत्ति न रहने से देश में विच्छेद उत्पन्न करनेवाला संविधान बनाया गया। हममें एकता का निर्माण करनेवाली भावना कौन सी है, इसकी जानकारी न होने से ही यह संविधान एकत्व का पोषक नहीं बन सका।

आसेतु हिमाचल एक देश, एक ही संस्कृति, एक राष्ट्र, यह भाव प्रस्थापित करना आवश्यक है। राष्ट्रहित में व्यक्तिहित समाविष्ट होकर राष्ट्रहित की उपासना सर्वोपरि जानकर उसमें संलग्न रहने का सद्भाव जगाना आवश्यक है। इस निमित्त उचित वायुमंडल बनाने के लिए भाषा, पंथ, जाति आदि विच्छेदकारी भावनाओं का निर्माण करनेवाली स्वायत्त या अर्धस्वायत्त प्रदेश-रचना का सर्वथा त्याग करना होगा। एक देश, एक राष्ट्र तथा एक ही राज्य की एकात्म शासन रचना स्वीकार करनी होगी। जनतांत्रिक पद्धति से चुने हुए देशभर के लोकप्रतिनिधियों की एक ही संसद हो, एक ही मंत्रिमंडल हो, जो देश की शासन-सुविधा के अनुकूल विभागों में अधिकारी की देखरेख में प्रत्येक विभाग का कार्य चलाए। तभी एकात्म-राष्ट्रभाव का पोषण एवं संवर्धन होगा तथा विच्छेदकारी दुर्भावों को पनपने के लिए अवकाश नहीं मिलेगा। समस्या से निदान का एक मार्ग यह भी हो सकता है।

९ कार्य का अधिष्ठान

(लखनऊ, फरवरी १९५०)

हमें ज्ञात है कि अपना संघकार्य २५ वर्ष पूर्व प्रारंभ हुआ। एक सज्जन ने पत्र लिखा है कि आप लोग पहले कहा करते थे कि हमारा 'जुबली' करने का विचार नहीं है। अब आप क्या करनेवाले हैं? वह सज्जन कदाचित् यह समझते हैं कि यदि जुबली नहीं मनाई गई तो अस्वाभाविक होगा। जुबली करने का जिन्हें शौक है, वे करें। हमें वह शौक नहीं है। डाक्टर जी कहा करते थे अपने को जुबली नहीं मनानी है। यह सोचकर

दु ख होता है कि उनकी कल्पना को हम लोगों ने पूर्ण नहीं किया है। उसके कारण का मैं उल्लेख नहीं करूँगा, किंतु यह सत्य है कि उनकी कल्पना अभी अधूरी है। प्रश्न यह है कि इतने कार्यकर्ताओं के होते हुए उनकी अपेक्षा क्यों पूर्ण नहीं हो पाई? कोई कहेगा कि २२ वर्ष विपरीत अवस्था में व्यतीत हुए हैं और चारों ओर से विरोध ही किया गया है। किंतु वास्तविकता यह है कि जितनी अधिक विपरीतता होती है, उतना ही अधिक परिश्रम होता है, सकटों में ही सपूर्ण कर्तृत्व लगाकर उन पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है। बाह्य परिस्थिति की विपरीतता से ध्येयनिष्ठा जागृत होकर अत करण का दृढ निश्चय कार्य में उमड पडना चाहिए। यह विपरीत परिस्थिति क्यों है? इस प्रकार का प्रश्न खडा होकर, परिस्थिति की विपरीतता आगे बढने की प्रेरणा देने का कारण होना चाहिए। क्या इस प्रकार के निश्चय पर पहुँचने के मार्ग में कोई बाधा है? बाधा तो सदैव अत करण के निश्चय की दुर्बलता ही रहती है। भिन्न-भिन्न प्रचार प्रणालियों के सम्मुख वह दुर्बल निश्चय और भी ढीला हो जाता है और फिर निश्चय को कृति में लाने की क्रिया बद हो जाती है।

परिवर्तन का नाम प्रगति नहीं

परिस्थिति में ऊपरी परिवर्तन देखकर लोग कहते हैं कि अब कार्य की क्या आवश्यकता है? परकीय सत्ता तो अब चली गई और यदि बाहर से आई हुई विचार-प्रणाली के अनुसार कार्य चले तो आपत्ति का कोई कारण नहीं है। जब इस प्रकार के प्रश्न खडे किए जाते हैं तो बडा आश्चर्य होता है। किंतु प्रश्न पूछते हुए प्रश्नकर्ता की अकर्मण्य वृत्ति रहती है। एक पौराणिक का उदाहरण स्मरण आता है। एक राजा विचित्र प्रकार के प्रश्न पूछा करता था और उनका समाधान न होने पर समाधान करने आए विद्वान को बदीगृह में डाल देता था। एक पौराणिक अधिक पढा-लिखा नहीं था, किंतु बडा चतुर था। उसका आगे क्या हुआ— यह मैं नहीं बताता, किंतु उस प्रकार के उल्टे-सीधे प्रश्न करते हुए लोग यह नहीं सोचते कि उसके साथ जो कर्तव्य आवश्यक है, वह है या नहीं? एक दिन जलपान के एक कार्यक्रम में एक सज्जन ने पूछा कि 'प्राचीनकाल से प्रचलित वर्णाश्रम धर्म के पालन के सबध में आप क्या करते हैं। मैंने इसपर उनसे पूछा 'क्या आप उसका पालन करते हैं?' उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया। इस प्रकार के निरर्थक प्रश्न करने की आदत हो जाती है। विशेषकर पढी-लिखी जनता में। उसके लिए जो कुछ पाश्चात्य से आया हुआ है वह

प्रगतिशील है, और जो कुछ अपना है वह पुराना है, त्याज्य है, प्रतिगामी है। जब मैं पहले-पहले यहाँ आया था तो एक प्रोफेसर ने पूछा था कि 'आपका वाद (Ism) क्या है?' मैंने प्रतिप्रश्न किया-- 'इस प्रश्न का अर्थ क्या है?' उन्होंने कहा कि 'आजकल ससार में अच्छे-अच्छे वाद चलते हैं जैसे साम्यवाद, समाजवाद, प्रजातत्रवाद। उनमें आप का वाद कोन सा हे?' मैंने इसपर उनसे फिर प्रश्न किया 'किसी वाद ने अभी तक अतिम सत्य कहा है क्या? क्या उसके बाद मनुष्य की बुद्धि नहीं चल सकती?' उन्होंने इसका कोई सीधा उत्तर नहीं दिया किंतु यह कहा कि इन वादों में जितना है, उतना ही ठीक है और यदि उनमें से किसी एक को न अपनाया गया तो कार्य चलना कठिन है। इसपर मैंने कहा तो फिर हमारा 'सघवाद' (Sanghism) है। आप विद्वान हैं और यह बात आप कुछ दिनों बाद लडकों को पढाएँगे। इसलिए हम इन भिन्न-भिन्न विचारप्रणालियों की चिंता न करें। बाहर से आइ हुई विचारप्रणालियों का प्रभाव बढने पर यह विचार आता है कि यही विचारप्रणाली चले। फिर आर्थिक और सामाजिक विषमता के प्रश्न खडे हो जाते हैं। इस प्रकार का कोई 'वाद' अपनाए बिना कार्य नहीं होगा, ऐसा अत करण में आदोलन उठने लगता है। इन सारी प्रणालियों में जो मूलभूत दोष हैं उसका हम विचार नहीं करते।

उदाहरण के लिए तथाकथित समानता का दावा करनेवाले साम्यवाद के बारे में सोचें। उसके प्रणेता ने कहा था कि जिन देशों में औद्योगिक प्रगति होगी वहाँ मेरे सिद्धात का प्रचार होगा और क्राति होगी। किंतु वस्तुस्थिति यह है कि जो देश औद्योगिक दृष्टि से उन्नत थे, वहाँ यह विचारधारा नहीं पहुँच सकी। इग्लैड, अमरीका और जर्मनी में उसका प्रभाव न जम सका। पराभूत जमनी में कुछ काल के लिए उसका प्रभाव बढा, पर प्रखर राष्ट्रवाद ने उसे समाप्त कर दिया। इसके विपरीत क्राति हुई एक कृषिप्रधान देश में, जहाँ राजा था, सामत थे और औद्योगीकरण बिल्कुल नहीं था। जिस सिद्धात के प्रणेता का सारा भविष्य पहले ही धडाके में समाप्त हो गया, क्या उसका युक्तिवाद ठहर सकेगा? स्पष्ट है कि उसका आधार ही गलत है और उसी से सब गडबड होती हे। कम्युनिज्म ने आधार-स्वरूप मनुष्य के दो प्रकार बताए हैं-- एक निधन और दूसरा धनवान, एक अधकार और दूसरा प्रकाश। किंतु वास्तविकता यह नहीं हैं। समाज में एक क्रम है। इस प्रकार उसका मूलभूत सिद्धात ही गलत है, निष्कर्ष ही गलत है। फिर उसका परिणाम या भविष्य-कथन केसे ठीक हो

सकता है? इसलिए उसके बाद के अधिकारियों ने अपने अनुयायियों से कहा कि अपने मत का मडन मत करो, दूसरों का खडन करो। उनकी बुराइयों का विशाल स्वरूप दिखा कर लोगों को भडकाओ। यह लेनिन जैसे व्यक्ति द्वारा प्रचारकार्य में कार्यकर्ताओं को दिया हुआ आदेश है। मुझे उसके सबध में कुछ नहीं कहना। किंतु हम वास्तविकता को ध्यान में रखकर अपना भावात्मक दृष्टिकोण देखें।

सुख का मूलाधार आत्मीयता

हम देखेंगे कि मनुष्य को सुखी करनेवाली किसी भी प्रणाली का मूलाधार आत्मीयता के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता। किंतु इन विचार-प्रणालियों में उसका कहीं पता भी नहीं है। उसी से दलगत स्वार्थ, मनुष्य-हत्या, युद्ध-पिपासा, साम्राज्य-लालसा उत्पन्न होती है। एक व्यक्ति अथवा परिवार के अधिकार तथा सम्मान को बढाने के लिए साम्राज्य बनाए जाते हैं। मनुष्य-मनुष्य की सहायता करे इसके लिए आत्मीयता के अतिरिक्त और कारण हो भी क्या सकता है? इसके अतिरिक्त अन्य कोई मूलाधार नहीं है।

यदि यह आत्मीयता नहीं है और सबका पशु-जीवन ही है तो स्वय खाकर दूसरे को न खाने देने की वृत्ति से समाज कैसे चल सकेगा? आत्मीयता के अभाव में यदि मनुष्य भी पशु जेसा व्यवहार करे तो इसमें क्या आश्चय? हम विचार करें कि वह सत्य कौन-सा हे, जिसके अनुसार मनुष्य मनुष्य को खाता नहीं, प्रेम करता है। इसका विचार अपनी सस्कृति में हुआ है। यह अति प्रतिभाशाली लोगों की सस्कृति है, जिसमें सब प्रकार के प्रयोग किए गए हैं। आज हम लोग जिन्हें जनतत्र और गणतत्र कहते हैं, उन सबके प्रयोग हमारे यहॉ मिलते हैं।

अभी मैंने एक लेख पढा था जिसमें अपने सविधान में भारतीयत्व को सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। उसके लिए ऐतरेय उपनिषद्, शुक्रनीति और चाणक्य के अर्थशास्त्र से प्रमाण देकर उसकी भारतीयता सिद्ध करने की चेष्टा की गई है। प्रयोग को आदर्श समझने की यह स्थिति अत्यत हास्यास्पद है। विदेशों में अच्छे पशु उत्पन्न करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं। गाय-बैलों पर प्रयोग होता है, किंतु मनुष्य पर प्रयोग कहीं नहीं होता। इसकी हिम्मत यदि किसी ने की है तो भारत ने की है।

पूर्व पुरुषों ने देखा कि कुछ लोग दैवी गुणों से युक्त तथा प्रखर

बुद्धि से सपन्न हैं और यदि उन लोगों की सतान समाज में बढ़ी तो सारा समाज ऊँचा उठेगा। विवाह के बाद प्रथम सतति बुद्धिमान तथा प्रखरता से पूर्ण पुरुष द्वारा हो। नियोग की पद्धति का यह प्रयोग साहस, धैर्य तथा अभ्यासु वृत्ति के साथ अपने लोगों के द्वारा सपन्न हुआ। अभी भी कुछ प्रांतों में यह प्रचलित है। इस प्रकार के छोटे-मोटे प्रयोग अपने यहाँ पूर्वकाल से होते रहे हैं। उनसे अपनी सस्कृति को दृष्टि प्राप्त हुई कि मनुष्य-मनुष्य का सबध आध्यात्मिक अधिष्ठान पर ही हो सकता है। इसके साथ यदि यह भी विचार रहा कि सपूर्ण समाज परमात्मा की अभिव्यक्ति है, एक ही प्राण से प्रणीत, एक ही चेतना से चैतन्यवान तथा एक ही स्फूर्ति से स्फूर्त है। सब राष्ट्र पुरुष के अगभूत हैं। यदि यह विचार स्थायी अनुभूति के नाते जागृत रहा तो एक दूसरे के सुख को बढाने और दुख को घटाने में सहायक होकर, स्नेह एव सहयोग की भावना रखते हुए ऐहिक जीवन में सुख के भागी बनने का सफल प्रयत्न कर सकते हैं। यह सिद्धात अपनी सस्कृति ने सब के सामने रखा। इस आध्यात्मिक भूमिका को एक बार समझकर, उसके अनुसार यदि हमने कार्य किया तो छोटे-मोटे 'वाद' निस्सार प्रतीत होंगे, क्योंकि उनका यह लक्ष्य ही नहीं है। वे समाज के भौतिक सुख की ओर ही इगित करते हैं, जबकि हमारा ध्येय आध्यात्मिक उन्नति भी है। अन्य सब विचार-प्रणालियाँ ऐहिक जीवन तक ही सीमिति हैं। हमारे यहाँ उसे लाँघकर आध्यात्मिक उन्नति का विचार करनेवाली व ऐहिक सुख को न भूलनेवाली अपनी ही सस्कृति है। अन्य विचारधाराओं से यह विचार-प्रणाली अधिक श्रेष्ठ व मूलगामी है, इसलिए स्थायी है। इसे यदि हम समझ लें और दूसरों के प्रभाव को दूर कर सकें तो लाभ होगा।

जीवन जड़ वस्तु नहीं

आज अपने सामने आध्यात्मिक अधिष्ठान न रहने के कारण ही समाज में सुख नहीं है। यदि आध्यात्मिक दृष्टि न रही तो बुराई होना निश्चित है। स्वार्थ उत्पन्न होगा और सुख-शाति का विनाश होगा। यदि वह न रही तो एक दूसरे के लिए श्रद्धा कहाँ से होगी, एक दूसरे के लिए जीवन की बाजी लगाने की वृत्ति कहाँ से उत्पन्न होगी? अनाध्यात्मिक भूमिका के द्वारा समाज में परस्पर प्रेम होना कठिन है। आजकल जिसे समाजवाद कहा जाता है उसको कार्यान्वित करने में, आध्यात्मिक दृष्टिकोण के अभाव के कारण तानाशाही उत्पन्न हो रही है। अपने दल की सत्ता को बनाए रखने तथा उत्पादन के साधनों पर नियत्रण रखने की वृत्ति बलवती हो गई है।

धन और राजकीय सत्ता जिसके पास एकत्र हुई, वह अपना स्थान तभी छोड सकता है जब समाज के प्रति प्रेम हो। वह नि स्वार्थ तभी हो सकता है, जब उसका अधिष्ठान आध्यात्मिक हो। इस प्रकार अन्य विचार-प्रणालियों के परिणामस्वरूप तानाशाही होना स्वाभाविक है, जिसे कोई भी अच्छा नहीं मानेगा। कोई भी उसकी आकाक्षा रखकर शायद उसे चिरजीवी रखने का प्रयत्न नहीं करेगा। जिनका अधिष्ठान ही अनाध्यात्मिक है, वे सब अपने-अपने स्थान से च्युत हो जाते हैं। यदि दृष्टिकोण आध्यात्मिक है तो 'वाद' का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। वह अपने आप ही डगमगाते हुए गिर जाएँगे?

विचार-प्रणाली का अधिष्ठान स्पष्ट हो

राष्ट्र को एक पुरुष के रूप में देखना, उसके अवयव के नाते एक चेतनता का अनुभव करना और उस चेतनता से प्रेरित होकर सपूर्ण समाज को सुखी करने का प्रयत्न करना ही राष्ट्र को चिरत्त्न सुख प्रदान करता है। यह 'वाद' वास्तव में समाज को स्थायी सुख देने में समर्थ है। हमने अपने सामने विचार रखा है कि समाज को एकरूप देखेंगे। प्रत्येक व्यक्ति विराट राष्ट्रपुरुष का घटकावयव होने के कारण समानरूप से महत्त्वपूर्ण है। प्रत्येक की श्रेष्ठता एक समान है। प्रत्येक को परमात्मारूप मानकर, परमात्मा का अश समझकर, उसकी सेवा करते हुए दु ख दूर करेंगे। ऐहिक जीवन को पूर्ण करते हुए आध्यात्मिक जीवन की ओर अग्रसर हो सकेंगे। इसके लिए समाज-रचना कैसी होगी? राज्य की कल्पना क्या होगी? यह विचार बाद में होगा। सर्वप्रथम अधिष्ठान स्पष्ट होना आवश्यक है। पहले हम यह देखें कि एकात्मता के निमाण का प्रयत्न होता है या नहीं? उसे जगाने के बाद जिस 'वाद' द्वारा समाज को ऐहिक सुख से पूर्ण करने में सफल हो सकेंगे, करेंगे। राजतत्र, प्रजातत्र, समाजवाद— सब भिन्न-भिन्न प्रयोग हैं। जिसका जैसा उपयोग होगा करेंगे। यह मार्ग मात्र हैं और 'साधनाना अनेकता' के अनुसार समाज को सुखी करने में भिन्न-भिन्न मार्गों को समन्वयात्मक एकात्मता की दृष्टि से देखते हुए, उनके लिए विद्वेष, स्पर्धा आदि उत्पन्न न कर, क्योंकि वह साध्य नहीं साधन हैं, योग्य कृति का सपादन करेंगे। एक बार यदि यह आध्यात्मिक एकात्मता जागृत हो गई, यदि अतर-दृष्टि से आसेतु हिमाचल फैले हुए विराट राष्ट्रपुरुष का परमात्मस्वरूप के नाते साक्षात्कार कर लिया तो फिर समाज, राज्य अथवा अर्थरचना कोई भी क्यों न हो उसकी चिता करने का कारण नहीं है।

मनुष्य का जीवन साँचे में ढलकर नहीं चलता। जब साइकिल जैसी छोटी चीज में भी प्रगति हो सकती है, तब समाज-रचना के संबंध में प्रगति स्वाभाविक ही है। जीवन में प्रगति और परिवर्तन दोनों होते हैं और कभी-कभी जैसा कि आजकल हो रहा है परिवर्तन को प्रगति का नाम देने का मोह होता है। परिवर्तन प्रगति का साधन मात्र है और सब साधनों को सफल बनाने की जड अध्यात्मवाद को जागृत कर उसका अनुभव करना है। यही वास्तविक महत्त्व की बात है। इसलिए हम अपने कार्य में भिन्न-भिन्न विचार प्रणालियों का विवाद न खडा करते हुए किंतु सबके प्रति समान भाव रखकर, उनका विद्वेष न करते हुए यह ध्यान रखें कि प्राचीनकाल से चले आनेवाले राष्ट्र को जो हिंदू समाज है, शक्तिशाली पुरुष के नाते खडा करेंगे। उसके लिए जीवनसर्वस्व को समर्पण कर देने की वृत्ति रखेंगे अन्यथा जीवन को अपूर्ण समझेंगे। टीका-टिप्पणी करनेवाले बहुत हैं, हम उनकी ओर न देखें। अपने मन में अविचल भाव रखें और समान सुख का अधिष्ठान सामने रखकर काम में लगें। ऊपर की मरहम-पट्टी करने से अधिक लाभ नहीं होगा अंतःकरण की शुद्धि आवश्यक है। यह समझकर हम अपने कार्य को आगे बढाएँ। समस्त अवयवों के परस्पर समीकरण का, उन्हें एकात्मता प्रदान करने का हमारा महान कार्य है, उसे पूरा करने के लिये आगे बढें।

व्यक्तिगत व्यवहार लक्ष्य के अनुकूल

आज अपने समाज का चित्र क्या है? उसका विचार करते समय अपने सामने दुःख, दैन्य और आत्मविस्मृति का क्षोभकारक चित्र खडा हो जाता है। जब अपनी ही विचारधारा के आधार पर समाज का दुःख दूर हो सकता है, तब यह विचार उठता है कि क्या उस अधिष्ठान को प्रभावी बनाने के लिए जीवन का सर्वस्व देने की आवश्यकता नहीं है? परिवार के जीवनयापन की आवश्यकता को कम कर, व्यक्तिगत जीवन से ऊपर उठकर हम समाज का विचार करें। मैं तो कभी यह सोच भी नहीं सकता कि हजारों लोग भूखे, नंगे फुटपाथों पर पडे रहें और हम परिवार में सुख का जीवन व्यतीत करें। मैं व्यक्ति-व्यक्ति को सुखी करूँगा, चरित्रसंपन्न बनाऊँगा और प्रखर राष्ट्रजीवन उत्पन्न करूँगा, यह संकल्प अंतःकरण में उत्पन्न होना चाहिए।

पर्याप्त परिश्रम की कमी के कारण हम अपने व्यवहार-बर्ताव द्वारा

जैसा एकात्म व्यापक और परिपूर्ण रूप प्रकट करना चाहिए, वैसा नहीं कर रहे हैं। इसलिए एकात्म भाव से ईश्वर की सेवा के रूप में बड़प्पन की भावना न रखते हुए, व्यक्ति-व्यक्ति को हृदय में स्थान देते हुए, संपूर्ण समाज के दुःख को दूर करने का सामर्थ्य उत्पन्न करना होगा। 'वाद' का क्या करना है, पहले मनुष्य को मनुष्य के नाते पहचानें। पहले मनुष्य में मनुष्य के प्रति एकात्मता उत्पन्न करें। दृढ, सुसगठित, सबल तथा सामर्थ्यसंपन्न राष्ट्रजीवन का निर्माण करें। उसके विराट रूप का अनुभव करें। ध्येय के सम्मुख व्यक्ति के नाते सोचने की आवश्यकता नहीं है। पेट तो कुत्ते, बिल्ली भी भर लेते हैं। उसमें कुछ विशेषता नहीं है। अपने सुख को कम करते हुए, दूसरे के सुख को वृद्धिंगत करने के लिए, यह एकात्मभाव नगर-नगर, गाँव-गाँव, घर-घर और हृदय-हृदय में उत्पन्न करेंगे तो राष्ट्रजीवन में सुख, शांति और समाधान की स्थापना होगी और वह विश्व के सम्मुख गौरव से खड़ा रहेगा। इस दृष्टि से हम अपने जीवन का विचार करें। यदि इस कार्य के निर्माता की इच्छा अभी तक पूरी नहीं कर सके तो अब करें। मेरा व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन पीछे रहेगा और हम सुदृढ एकता का अधिष्ठान सामने रखते हुए दुखियों के संबंध में एक दर्द लेकर चलेंगे तो देखेंगे कि समाज को सुखी बनाने का कार्य हम पूरा कर लेंगे। इसके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है। आध्यात्मिक अधिष्ठान को सामने रखकर, उसे प्रतिदिन के अपने जीवन में लाने का कार्य हम कर रहे हैं। विशुद्ध भारतीय जीवन-प्रणाली के प्रचारक के नाते तेज उत्पन्न करते रहें तो थोडे ही काल में भारत चैतन्यमय हो जाएगा, तेजस्वी राष्ट्रवृत्ति उत्पन्न होगी, भव्य दिव्य राष्ट्रपुरुष गर्व और गौरव के साथ अपना मस्तक उठाकर खडा रहेगा और ऐसा दृश्य दिखाई देगा कि असीम आत्मीयता से भरे हुए समाज के एक-एक घटक के सुख के लिये सहस्रावधि व्यक्ति सर्वस्व का समर्पण कर रहे हैं। यह अनुपम, स्फूर्तिदायक दृश्य उत्पन्न करने के लिए मैं इस राष्ट्रकार्य में योग देने के लिए आप सबका आह्वान करता हूँ।

१० समय के आह्वान को स्वीकारें

(२२ फरवरी १९५०, प्रयाग)

आजकल जीवन की बहुत सी प्रणालियाँ प्रचलित हैं जिन्हें अंग्रेजी में 'ISM' (वाद) के नाम से जाना है। उनके संबंध में मैं कुछ नहीं कहूँगा।

मैंने तो सम्पूर्ण भारतवर्ष की परिक्रमा कर के कुछ देखा है वह आपके सम्मुख रखूँगा।

प्रांत राष्ट्र शरीर के अंग हैं

हमने तो अनादिकाल से इस भारत-भूमि की माता के रूप में वन्दना की है। इसके प्रति हमारे अन्तःकरण में आदर का भाव इतना तीव्र रहा है कि जब मनुष्य सबेरे उठता है तब सबसे पहले इस भूमि को हाथ लगाकर उसका वन्दन करता है और फिर कहता है कि हे देवि समुद्र तेरा वसन और पर्वत तेरे स्तनमंडल के समान हैं। मैं तुझ पर पैर रख रहा हूँ इसके लिये मुझे क्षमा कर।

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे॥

इसी प्रकार नदियों का पावित्र्य सारे भारतवासियों के लिये समान है और दक्षिणवासी भी स्नान करते समय गंगाजी का आह्वान करता है। यदि पूर्वकाल में यह एकात्मता की भावना न होती तो जगद्गुरु शंकराचार्य दक्षिण से उत्तर में न आते और न भारत की चारों सीमाओं पर अपने मठों की स्थापना ही करते। इस प्रकार यह सारी भूमि हमारी है, इसके कण-कण का हम पर अधिकार है। तब फिर अलग-अलग राज्यों के लिए हम क्यों लड़ रहे हैं। सारे प्रांत तो इस राष्ट्र-शरीर के अंग हैं। एकात्मता का यह भाव आसेतु हिमाचल फैले हुए भारतीय समाज में जागृत करना हम सबका कार्य है।

समाज की अवस्था भयंकर

आज यदि हम अपने समाज की दशा पर दृष्टिपात करें तो बड़ी भयंकर अवस्था दिखाई देती है। ८० प्रतिशत समाज न तो पढ़ना-लिखना जानता है, न अपना भला करना और न चालाक लोगों से उसे अपनी रक्षा करनी आती है। उसमें केवल धर्म का थोड़ा-बहुत भाव बाकी रह गया है जिसके कारण हृदय की शुद्धता और थोड़े-बहुत अच्छे संस्कार बच गए हैं। किंतु इसके साथ पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ दैन्य और दारिद्र्य भी है जिसकी कल्पना भी असह्य है। अभी-अभी मैं आसाम होकर आया हूँ। वहाँ प्राकृतिक सौंदर्य तो इतना है कि इच्छा होती है कि वहीं कुटिया डालकर पड़े रहें। किंतु साथ-साथ ऐसा भीषण दारिद्र्य भी है कि अन्तःकरण

व्यक्तियों को सप्ताह में तीन-चार बार भी भर पेट साधारण भोजन मिल जाए तो बडी बात है। असम की भूमि उपजाऊ नहीं है, ऐसी बात नहीं है। वह बडी ही उत्कृष्ट भूमि है, सारे नैसर्गिक साधनों से परिपूर्ण है। फिर भी उस प्रात का यह हाल है। देश के हर हिस्से में इसी प्रकार की दशा है और हम लोग इतने स्वार्थी हो गए हैं कि सडक के किनारे भूख से मरनेवाले की सहायता तक नहीं करते। बडे-बडे सिद्धात केवल बोलने भर के लिए हैं। ऊँचे-ऊँचे आदर्शों की हम बातें करते हैं। 'धर्म' केवल चदन लगाने और घटा बजाने भर में रह गया है। धर्म तो उसे कहते हैं, जिसमें समाज की धारणा होती है और जो व्यक्ति के जीवन को उदात्त और विशाल बनाता है। लोग 'रिलीजन' को बडा खराब कहते हैं, किंतु जो 'रिलीजन' का भाषातर धर्म करता है, वह दोनों को ही नहीं जानता। धर्म के दो अर्थ हैं— व्यक्ति का विकास और समाज की सुव्यवस्था। 'यतोऽभ्युदय नि श्रेयससिद्धि स धर्म ।' जिससे इस जीवन में परिपूर्ण सुख और परलोक में शाति मिलती है वही धर्म है। परलोक होता है या नहीं— यह तो मरने के बाद ही मालूम होता होगा, किंतु नि श्रेयस का जो अर्थ मैं करता हूँ, वह यह है कि किसी प्रकार की परिस्थिति पर निर्भर न रहते हुए, अपने ही बल पर सुखी रहने की शक्ति ही नि श्रेयस है। परिस्थितिनिरपेक्ष रहकर निरतर सुखी रहना ही अलौकिक आनद है। वही धर्म है जो सपूर्ण समाज को व्यवस्थित रखता है। आजकल समाज-व्यवस्था के तरह-तरह के नियम चले हैं। किंतु मनुष्य का जीवनक्रम बाह्य नियमों से नहीं, अपने ही नियमों से चलता है। ऐसे समाज को धारण करनेवाले धर्म का भी आजकल अनादर किया जाता है। इसलिए समाज की धारणा के लिए जिन गुणो की आवश्यकता होती है— उनका आज अभाव है। जो लोग बुद्धिमान ओर कर्तृत्ववान हैं, उनमे कुछ गुण अवश्य रहने चाहिए। उनका निचोड यदि एक शब्द मे रखें तो वह गुण है त्याग। इस शब्द में ही एक प्रकार से भारतीय सस्कृति की व्याख्या निहित हे। हमारा तो विश्वास है कि सपूर्ण समाज में एकता ही नहीं, एकात्मता हे। यह सब आत्मा का ही रूप है। हम मातृभूमि को ही परमात्मा मानते हैं।

अर्थ और काम धर्मपालन से ही

मनुष्य के शरीर में अनेक कोशिकाएँ (सेल्स) हैं। वे असख्य जीवाणुओं से बनी हैं। वे जीवाणु अपने जीवन को नष्ट करके मनुष्य के शरीर को स्वस्थ रखते हैं। इसी प्रकार हमारा समाज भी करोडों व्यक्तियों

से बना है। इस समाज के साथ एकात्मता का अनुभव करते हुए हम करोडों नगे-भूखे लोगों की सेवा करने के लिए व्यक्तिगत सुख को ठोकर मार दें, यही धर्म की भावना है। व्यास ने कहा है कि जिस अर्थ और काम की तुम्हें अभिलाषा है, वह धर्म-पालन से ही मिलेगा। आजकल अर्थ के आधार पर समाज-जीवन का निर्माण करने के विचार चल रहे हैं। इसी को 'प्रगति' कहा जाता है। ऐसे तो मैं भी प्रगतिवादी हूँ और सब प्रकार की अज्ञानजन्य रूढियों के प्रति सदा से विद्रोही रहा हूँ। किंतु मेरे विचार से आजकल की प्रगति की कल्पना दोषयुक्त है। आजकल पूर्वकाल के विचारों का निरादर करना ही प्रगतिशीलता कही जाती है। यह प्रगति की कालक्रमानुसार कल्पना समय के तत्त्व पर आधारित है। जो कुछ बाद में होता है, वही प्रगति की दिशा का निर्धारण करता है। इस दृष्टि से देखें तो मनुष्य जीवन में मृत्यु सबसे बाद में होती है, तब क्या मृत्यु की अवस्था को प्रगति मानेंगे?

नर से नारायण बनना है

हम तो यह मानते हैं कि जड से ऊँची अवस्था चेतन की है और पशु जीवन से अधिक उत्कृष्ट जीवन मनुष्य का है। डार्विन का विकासवाद भी, चाहे वह पृणाश में ही सत्य क्यों न हो, यही सिद्ध करता है। किंतु हमारे यहाँ डार्विन के बहुत काल पूर्व से ही यह विश्वास चला आ रहा है। यह किसी के कहने से नहीं, नित्य जीवन में अनुभव होनेवाला सत्य है। अंतर इतना ही है कि उसने किसी ग्रंथ में लिखा है। इति डार्विन इति हक्सले, इति मार्क्स, इति शंकराचार्य। इति श्रुति कहना मेरी दृष्टि से ठीक नहीं है। जिस जीवित-जागृत सत्य का मुझे प्रत्यक्ष अनुभव होता हे, मैं उसी पर विश्वास करता हूँ। जड पदार्थ से जीवनयुक्त, पशुत्व से मनुष्यत्व और मनुष्य जीवन से भी दैवी जीवन अधिक श्रेष्ठ है, यही विकास की दिशा है। जो मनुष्य में ईश्वरत्व को प्रकट करा सके, वही उत्कृष्ट है और जो उसका पशुभाव जागृत करे, वह प्रगति की दिशा के विपरीत है यह मैं मानता हूँ।

जडवाद से पशुभाव बढेगा

मार्क्स का दर्शन जडवाद पर आधारित है। यदि उसका ध्येय केवल संपत्ति का सम-वितरण करना ही है तो अच्छा है, मुझे मान्य है। क्योंकि उसमें मेरी तो कोई हानि नहीं, लाभ ही है। किंतु उसके तत्त्वज्ञान की प्रेरणा भौतिकवाद है। जड पदार्थवाद ही उसका दर्शन हे। उसकी दृष्टि में कुछ अणुओं के एक विशेष प्रकार के एकत्रीकरण का नाम जीवन है। किंतु यदि

एक विशिष्ट प्रकार का मोलेक्युलर अरेंजमेंट ही सब कुछ है, तो यह भी उतना ही निश्चित है कि कभी न कभी जब उस जीवन का अन्त हो जाता है, तब उन अणुओं का विघटन भी अवश्यमेव होता ही है। यही अंतिम स्थिति है। तब फिर मनुष्य को खिला-पिलाकर उसे अधिक मोटा बनाने की व्यवस्था करने के पीछे मार्क्सवाद क्यों पड़ा है? फिर व्यर्थ में ही आर्थिक व्यवस्थाओं से एक जड़ पदार्थ को संतुष्ट करने के उपाय क्यों किए जाते हैं। अपनी इन्हीं व्यवस्थाओं के अंत में मार्क्स ने राज्यसत्ता लुप्त हो जाने (विदरिंग ऑफ द स्टेट) की स्थिति की कल्पना की है। इसके अनुसार प्रत्येक मनुष्य उस राज्यहीन राज्य (स्टेट विदाऊट ए स्टेट) में एक दूसरे से प्रेम करता हुआ सुख-शांतिपूर्वक रहेगा। किंतु जड़वाद के पास इसका क्या सबूत है कि ऐसे समाज के लोग अपने स्वार्थ के लिए एक दूसरे को नहीं लूटेंगे? सब समाज सुख-शांति के लिए प्रयत्न करेगा, यह निश्चयपूर्वक कैसे कहा जा सकता है। मनुष्य की स्वार्थ बुद्धि शांति के बदले अशांति, सुख के बजाए दु:ख और प्रेम के बदले घृणा नहीं फैलाएगी, यह किस आधार पर कहा जा सकता है? मैंने सुना है कि बिल्ली अपने बच्चे को खाती है। एक बार समाचार-पत्र में मैंने पढ़ा था कि किसी देश में एक माता ने अपने नवजात बालक को खा डाला। उसपर जब अदालत में अभियोग चला, तब उसने बताया कि ऐसा उसने अपने बच्चे के प्रेम के कारण किया। मार्क्स की कल्पना के राज्यहीन समाज में लोग एक दूसरे से ऐसे ही प्रेम करने लगे तो उससे उनको कौन रोकेगा? इस अवस्था में मनुष्य में ईश्वरत्व का जागरण होगा या पशुभाव बढ़ेगा।

धर्म ही मार्गदर्शक

भारत में भी एक शासनहीन समाज-व्यवस्था का आदर्श सम्मुख रखा गया है। उसका आधार यह है कि केवल मनुष्य नहीं, सारे प्राणी एक परमात्मा के व्यक्त रूप हैं। जड़ता को न मानकर सब में एक चैतन्यमय जीवन के दर्शन हमने किए हैं। एकात्मता का अनुभव करते हुए सबकी सुख-साधना करना हमारे अंत:करण की स्वाभाविक वृत्ति बना दी गई है। जिस ब्राह्मी स्थिति को हमने आदर्श माना है, उसमें न राज्य होगा न शासन, न दंड।

पश्चिम के समान हमारा यह विश्वास नहीं है कि बाह्य नियमों से मनुष्य को मनुष्य बनाया जा सकता है। 'अंत:करण की स्वाभाविक दैवीवृत्ति ही मानवता का और मानवता में देवत्व का विकास कर सकती है।' धर्म पर

आधारित समाज एक-दूसरे की रक्षा करते हुए चलेगा, ऐसा हमारा विश्वास है। ऐहिक अभ्युदय और ईश्वरत्व का विकास-- यह हमारा भव्य चित्र है। इस भव्य चित्र का निर्माण मैं करूँगा, इसके लिए जीवन का क्षण-क्षण समर्पण कर दूँगा, यह हमारा सकल्प हो, यही वास्तविक प्रगति की दिशा है। मनुष्यता से पशुभाव और पशुभाव से जडता की ओर ले जाना प्रगति का सूचक नहीं हो सकता। इसको 'प्रगति' कहना तो ऐसा ही होगा जैसे पहाड के शिखर से गिरनेवाला कोई व्यक्ति कहे देखो, मेरी प्रगति कितनी तीव्र है। ऐसा कहनेवाले को हमें रोकना होगा। उसको रोककर बताना होगा कि देख' तू गलती कर रहा है।

आत्मविश्वासयुक्त बने

ससार में अध्यात्म-भाव का प्रसार करना यही हमारे जीवन का कर्तव्य है। जो अपना धर्म छोड बैठता है, उसका नाश होता है– ऐसा हमारे प्राचीन ग्रथों में कहा गया है। उसकी अवज्ञा करने के समान कोई दूसरा पाप नहीं है। हमारे ऊपर से परकीय शासन भले ही भौतिक रूप से समाप्त हो गया हो, किंतु बुद्धि की दृष्टि से हम अभी तक उनके दास हैं। जरा-जरा सी बात में हमारे लोग दूसरों का मुख ताकते रहते हैं। जैसे कुत्ता अपने मालिक का रुख देखकर ही काम करता है, वैसे ही हम भी यह सोच-सोचकर कि यूरोप क्या कहेगा, अमरीका क्या कहेगा, डरते हुए काम करते हैं। हर बात में परकीयों का अनुकरण करना हमने छोडा नहीं है, किंतु एशिया का, दुनिया का नेतृत्व करने की बातें करते हैं। जिसका स्वय का कुछ भी नहीं, अपनी स्वतत्र बुद्धि भी नहीं, वह दुनिया का नेतृत्व क्या खाक करेगा। दूसरे को देख-देखकर चलनेवाला किस मुँह से कहेगा कि 'आओ। हमारे पीछे चलो।' क्या हम अनुकरण करनेवालों के नेता बनना चाहते हैं? हमारा स्वय का जो कुछ है, जो ज्ञान की सपत्ति है, उसे भी यदि गवाँ बैठे, तो हमारा क्या शेष रह जाएगा।

प्राचीनकाल में हमारे राष्ट्र में इतनी तेजस्वी वृत्ति, इतना आत्मविश्वास था कि हमारे लोगों में यह कहने का साहस था कि 'जो हमारी समाजव्यवस्था को नहीं मानता, वह म्लेच्छ है।' कितने स्वाभिमानपूर्वक हम कहते थे कि पृथ्वी भर के मनुष्य हमारा आदर्श लेकर, हमसे सीखने आएँगे–

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मन
स्व स्व चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा ।
(मनुस्मृति २-२०)

किंतु आज हमारा यह आत्मविश्वास लुप्त हो गया है। आत्मवज्ञा से भरे हुए हम लोग दूसरों के अगुलिनिर्देशों पर चल रहे हैं। दूसरों की देखा-देखी हमने भी जडवादी आर्थिक दृष्टि से विचार करना सीख लिया है। जैसे हमारी निष्ठा, वुद्धि से दो हाथ नीचे उतर गई हो। यह प्रगति नहीं है। इसी का परिणाम है कि हम एकात्मता और त्याग का महान मत्र भूलकर स्वार्थ में लिप्त होकर सारे समाज में विच्छेद की प्रवृत्तियों को वढा रहे हैं। आपस में फूट की वृद्धि होने से पुन वैसा ही होना सभव है, जैसा जयचद द्वारा हुआ था।

हम सभी जीवनयुक्त, ज्ञानयुक्त तरुण हैं। ऐसी स्थिति हम नहीं आने देंगे, ऐसा हम निश्चय करें। हिरण्याक्ष के पशुभाव को नष्ट करने के लिए वराह अवतार हुआ था। उस वराह में भी पशुभाव था, इसलिए भगवान शकर ने उस वराह के भी दो खड कर दिए। इसी प्रकार हम भी पशुभाव को नष्ट कर तेजस्वी ईश्वरीय भाव प्रकट करें, यही हमारा निश्चय हो।

११ युवकों को आह्वान

(६ नववर १६५०, वगलोर)

अपना यहाँ का कार्य कैसा चल रहा है और उसकी कितनी प्रगति हुई है, यह देखने के लिए मैं वगलोर आया हूँ। केवल सख्या वढना प्रगति नहीं है। अपने सघ-विषयक आकलन में वृद्धि होना तथा पूर्ण विश्वास के साथ वह कार्य करने का अपना निश्चय अधिक दृढ होना, प्रगति का अर्थ है। केवल शाखा के कार्य पर ही मेरा ध्यान केंद्रित रहने का एक विशेष कारण है। उसे हर एक ने समझ लेना चाहिए। विगत तीन वर्षों में कुछ काल तक सघ पर प्रतिवध लगने से कार्य में रुकावट आई थी तथा प्रतिवध हटने के तुरत वाद सार्वजनिक कार्यक्रमों का ताँता लगा रहा। वगलौर में भी एक भव्य कार्यक्रम हुआ था। परतु सार्वजनिक कार्यक्रमों से सगठन का, विशेपत अपने जैसे सगठन का काय खडा नहीं हो सकता। अन्य लोग सगठन का कार्य क्यों नहीं कर सके? इसका सीधा कारण यह है कि उन्होंने सार्वजनिक कामों पर अधिक वल दिया। हम लोगों को सफलता मिली, इसका कारण यह है कि हमने सगठन पर वल दिया है। इस कार्य में हम लोग सफल हुए हैं। फिर भी आज देश की माँग को देखते हुए अपना सगठन-कार्य कम है।

हम स्वाभाविक रूप से राष्ट्र हैं

अनादिकाल से राष्ट्रधारणा से हम परिचित हैं। यह हमारी मातृभूमि है। हम अनुभव करते हैं कि यह जगज्जननी का रूप है। इसलिए हमें यह देश पूज्य है। हम यहाँ पैदा हुए हैं और हम उसके पुत्र हैं। परतु कुछ स्वार्थ से प्रेरित विद्वान आज यह कहते हैं कि अग्रेजों के यहॉ आने से पहले यह कभी भी एक राष्ट्र नहीं था। विदेशियों के सपर्क में आने के बाद ही हम लोगों में राष्ट्र-कल्पना का उदय हुआ। हमने राष्ट्रभक्ति के प्रथम पाठ उनके चरणों में बैठकर ही सीखे हैं। इसीलिए हमारे देश के बुद्धिमान लोग कहते हैं कि हम अब राष्ट्र बनाने जा रहे हैं। परतु यह प्रचार दुष्ट हेतु से किया जा रहा है।

ऐसे अपप्रचार से हमें भ्रमित नहीं होना चाहिए। अपने पूर्वजों ने इस भूमि के प्रति इतने नि सदिग्ध शब्दों में अपनी भक्ति प्रकट की है कि शायद ही ससार में अन्य किसी देश के लोगों ने इतनी उत्कट भक्ति प्रकट की हो। हम इस भूमि पर इतना प्रेम करते हैं कि यहॉ की धूलि का प्रत्येक कण, जल की प्रत्येक बूँद हमें पवित्र है

हमारी मातृभूमि के प्रति धारणा व निष्ठा एक होने के कारण हम स्वाभाविक रूप से एक राष्ट्र हैं। इसका परिचय क्या है? ससार इसे हिंदुस्थान कहता है। और भारत भी कहता है। हमारे आधुनिक नेतागण सविधान के निर्माता 'इडिया अर्थात भारत' कहते हैं। इसलिए मैं उनका बहुत आभारी हूँ। अन्यथा उन्हें 'इडिया' जो 'भारत' था कहने से कौन रोक सकता था। अपनी यह भूमि भारत या हिंदुस्थान है, इसकी पहचान क्या है? मैं लोगों को इसका बहुत सरल स्पष्टीकरण दिया करता हूँ— हम जानते हैं कि अपनी सस्कृति में किसी भी स्त्री को उसकी सतान के नाम से आदरपूर्वक पुकारने की रीति है। किसी भी स्त्री को अमुक की पत्नी कहकर पुकारने की अग्रेजी प्रथा है। अग्रेज किसी स्त्री को पुरुष के नाम से सबोधित करके, उसके पूर्व 'श्रीमती' उपपद लगाते हैं, लेकिन यह हमारी प्रथा नहीं है। हम कहते हैं 'वह रामू की मॉ है।' हम हमेशा स्त्री को उसकी सतान, पुत्र अथवा कन्या की माता कहकर सबोधित करते हैं। तदनुसार हमने इसे 'हिंदू की मॉ', 'हिंदुस्थान', 'भरत की मॉ', 'भारत' कहा है। जब किसी स्त्री को एक से अधिक सतान हों तब हम उसे उसकी बडी सतान या उसकी सतानों में से जो अधिक विख्यात हो उसके नाम से सबोधित

करते हैं। भरत सुप्रसिद्ध थे, इसलिए उसे जन्म देनेवाली यह भूमि भारत कहलाई। इसलिए यह हमारी माता है, हिंदुओं की माता है। परतु अव इस कल्पना को तिलांजलि दे दी गई है। 'साप्रदायिक' कहकर उसकी भर्त्सना की जाती है। अव तो सभी राष्ट्रीय वातें साप्रदायिक हो गई हैं। नेतागण मुसलमानों के त्यौहारों में शामिल हो सकते हैं, लेकिन हिंदुओं के नहीं। उनके मत से हिंदू साप्रदायिक है और अहिंदू निधर्मी है।

हिंदू राष्ट्र की एकात्मता की अनुभूति के अभाव में, राष्ट्रीयता के अग्रणी माने जानेवालों ने उच्च सवैधानिक स्तर पर हमारे देश को अनेक राज्यों में छिन्न-विच्छिन्न कर डाला है। पूर्ववर्ती शासन में जो केवल प्रात थे, उन्हें अव स्वायत्त राज्यों की प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। जो सपूर्ण शरीर एक सजीव इकाई था, उसके सिर, हाथ, धड काट दिए गए हैं और उसके जीवित रहने की अपेक्षा की जाती है। सवसे वडा सकट तो अभी आना वाकी हे। आज हम भले ही कहें कि वह व्यवस्था मात्र है, इससे कुछ विगडता नहीं। इस व्यवस्था के समर्थन में अनेक सिद्धात कहे जाते हैं। हमारी सघ-राज्य की कल्पना अमेरिका से उधार ली हुई है। अपना सपूर्ण सविधान इग्लैंड, अमेरिका और स्वीट्जरलैंड के सविधानों की खिचडी है। आत्मनिर्णय का अधिकार, पृथक् होने का अधिकार (इसका देश के सविधान में समावेश नहीं हे, परतु जो राजनेतिक दल सविधान बना रहे हैं, उनकी यह मूलभूत भूमिका है) और भाषाई प्रातरचना के विषैले सिद्धात से प्रतिवद्धता, इन तीनों वातों का एकत्र विचार करें तो स्पष्ट होगा कि अपना राष्ट्र अनेक सघर्षरत राज्यों में विभाजित हो जाएगा। इसके लिए प्रमाणों की कमी नहीं है। मुवई, महाराष्ट्र में सम्मिलित हो या गुजरात में, इसके लिये खींचतान हो रही है। काग्रेस के एक वडे नेता ने कहा कि यदि मुवई महाराष्ट्र में सम्मिलित नहीं हुई तो खून की नदियाँ वहेंगी। वे नहीं समझते कि ऐसा कहकर वे राष्ट्रविरोधी ओर देशभक्तिविरोधी कार्य कर रहे हैं। जिन्हें 'उच्च कोटि के नेता' कहा जाता है, वे ही विघटन का विष फैला रहे हैं ओर उसे सविधान की मान्यता से वल मिल रहा है। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए सर्वव्यापी, शक्तिशाली राष्ट्रीय भावना चाहिए।

हम लोगों के देशप्रेम पर टिप्पणी करते हुए एक सज्जन ने एक लेख लिखा था कि आर एस एस के लोग सिरफिरे देशभक्त हैं। ऐसा लगता है कि उक्त सज्जन को देशभक्ति असहनीय है। मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। क्योंकि जव वे देशसेवा कर रहे थे, तव उन्होंने अपना

'कैरिअर' बना लिया था। जहाँ तक भक्ति का प्रश्न है, उसमें वर्गीकरण नहीं है। भक्ति का अर्थ 'विभक्ति' नहीं है। जहाँ विभक्ति है वहाँ भक्ति नहीं। आत्मसमर्पण और किसी भी परिस्थिति में अडिग निष्ठा भक्ति है। यही सच्ची भक्ति है। कुछ लोग यह बर्दाश्त नहीं कर पाते। उन्हें थोडी-सी उष्ण, कुनकुनी और फिर ठडी पडनेवाली भक्ति चाहिए। जो भक्ति का सिद्धात भलीभाँति जानते हैं और साहस से भक्ति करते हैं, वे 'सिरफिरे' जैसे निरर्थक शब्दों से विचलित नहीं होते। हम उसी प्रकार की देशभक्ति निर्माण कर रहे हैं। सघ का मार्ग हमारे सामने है जो अपने सौभाग्य से अपने सस्थापक ने हमारे लिए निर्माण कर दिया है। उसके कारण एक बार फिर से कश्मीर से कन्याकुमारी तक अपना यह हिंदू-राष्ट्र है, यह श्रेष्ठ भावना जागृत हुई है और हम अपने महान राष्ट्र की एकात्मता का साक्षात्कार करने में सफल हुए हैं।

हम अपनी सपूर्ण शक्ति से यह ज्योति जगाएँ, उसे देशव्यापी व प्रखर बनाएँ। उस प्रकाश में सपूर्ण अज्ञानाधकार लुप्त हो जाएगा। वह प्रकाश दुनिया की समस्त आसुरी शक्तियों को चुनौती देगा, दृढ नींव पर अजेय खडा रहेगा और सपूर्ण दुनिया को सिद्ध कर देगा कि हम इस श्रेष्ठ राष्ट्र के सुपुत्र हैं। केवल इसी मार्ग से हम सफल हो सकते हैं। इसके सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं है। अन्य सस्थाएँ अपने-अपने ढग से कार्य कर रही हैं। उन्होंने हमें चुनौती देने का प्रयास किया है। हमने उसकी ओर दुर्लक्ष किया, यह हमारी प्रतिष्ठा के विरुद्ध है। एक बार एक जिले के स्वयसेवकों का सचलन देखने के पश्चात् (जहाँ मैं गया था व जिसमें बडी सख्या में लोगों ने भाग लिया था) एक सस्था ने हमें मात देने और लोगों को प्रभावित करने के उद्देश्य से हमसे भी बडी 'रैली' निकालने की चेष्टा की। सरकारी मदद और सभी उपलब्ध साधनों से वे इस कार्य में जुटे। उन्होंने अखबारों में छपवाया कि रैली में जानेवालों को मुफ्त भोजन मिलेगा, उनको कोई खर्च नहीं करना होगा। हम तो अपने सघ शिक्षा वर्ग में भी मुफ्त भोजन नहीं देते। उन्होंने घोषणा की कि चाहे जितने लोग आएँ उन्हें भोजन दिया जाएगा, इसके अलावा रेलभाडा तथा जेब खर्च भी दिया जाएगा। टिप्पणी में यह भी लिखा था कि तीन दिनों के कार्यक्रम में तीसरे दिन बूँदी के लड्डू की दावत दी जाएगी। लोग बडी सख्या में आए, परतु सबके रहने की व्यवस्था एक ही कमरे में की गई थी। जब मत्री, जिन्हें रैली के लिए आमत्रित किया गया था, सबको एक छोटे से कमरे में देखा तो

पूछा– यह सब क्या है? आप नहीं जानते व्यवस्था किस तरह की जाती है? आर एस एस की तरह व्यवस्था करें।' परतु वे यह कैसे कर सकेंगे? हमने अपना मार्ग स्वय बनाया है, जिसके एक तरफ गहरी खाई है और दूसरी ओर सीधी चट्टान। चट्टान से लगी सिर्फ एक पगडडी है, जिसपर केवल एक ही व्यक्ति एक समय चल सकता है, वहाँ अन्य लोगों के लिए स्थान नहीं है। यदि वे हमारी तरह सगठन करना चाहते हैं, तो उन्हें केवल हमारा अनुसरण करना होगा। यदि वे ऐसा नहीं करते, तो वे सफल भी नहीं हो सकते। हमारे पास यशस्वी कार्यपद्धति है।

नि स्वार्थ भावना व निष्ठा अनिवार्य

लोग हमारी कार्यपद्धति को न समझकर कहते हैं कि यह रहस्यमय है। जब मैं बनारस में था, तब एक बार मैंने एक छात्र को एक धार्मिक ग्रथ खरीद लाने को कहा। विद्यार्थी उसे ले आया, लेकिन वह काफी फटा-पुराना था। इसलिए मैंने उसे अच्छी प्रति लाने को कहा। उसने वह ग्रथ कुछ समय के लिए घर पर रखा। लेकिन वह गायब हो गया। उसने सब किस्सा सुनाया। मैंने कहा कोई बात नहीं, आप मुझे दूसरी प्रति ला दें। मैं दूसरी प्रति के दाम दे दूँगा। उसने दूसरी प्रति खरीदी। परतु दूसरे दिन, गायब हुआ ग्रथ उसी मेज पर पडा मिला। विद्यार्थी ने बताया कि एक बदर उसे ले गया था, कुछ देर बाद उसने वापस लाकर रख दिया। मैं सोचने लगा कि ऐसा क्यों हुआ होगा? मुझे लगा कि शायद बदर यह देखने के लिए ले गया हो कि उसके पूर्वजों ने क्या लिख रखा है उन्होंने कितनी प्रगति की है। ग्रथ को उलट-पलटकर देखने के बाद कुछ भी समझ में न आने के कारण उसने वह ग्रथ पुन वापस लाकर रख दिया। शायद यह समझकर कि मनुष्य के सभी व्यवहार बडे रहस्यमय हैं। तात्पर्य, लोग हमारी कार्यपद्धति इसलिए नहीं समझ पाते क्योंकि उसके लिए हिम्मत, भूखे पेट रहने की सिद्धता, नि स्वार्थ भावना और निष्ठा आवश्यक है। जिस महाशय ने स्वयसेवकों की देशभक्ति की आलोचना की थी, उसे स्वय प्रखर देशभक्ति की आवश्यकता है।

इस कार्य को करने का निश्चय करो लोगों के पास जाओ, उनसे सपर्क स्थापित करो और ऐसा दृढ सगठन बनाओ जो किसी भी परिस्थिति में भी अडिग रहे। कधे से कधा लगाकर काम करो। आगे बढो बढते ही रहो। समय व्यर्थ नष्ट मत करो। व्यक्ति-व्यक्ति को सुसगठित करो और सगठन से राष्ट्रनिर्माण करो। आपमें युवकोचित उत्साह, साहसवृत्ति, सकटों

से लडने और सफलता प्राप्त करने की शक्ति है। बढते जाओ, भविष्य उज्ज्वल है।

ऋ ऋ ऋ

१२ कलक धो डाले
(चेन्नै, दिसवर १९५२)

हाल ही में हमने गौ एव तत्सम गरीव पशुओं की हत्या पर पूर्ण प्रतिवध लगाने हेतु प्रस्ताव लाने के लिए सरकार के हाथ मजबूत करने हेतु हस्ताक्षर अभियान प्रारभ किया है। अपने में से ही कुछ उच्च-भ्रू लोगों में इस महत्तम विषय के प्रति उदासीनता दिखाई पडती है। इस भाग में सघ का काम अधिक न होने से, सभवत हस्ताक्षर अभियान को गति न मिली हो, तथापि साधारणत जनता में इसके प्रति सहयोग की भावना परिलक्षित होती है।

गोहत्या पर प्रतिवध क्यो?

सघ ने यह कार्य निष्काम भावना से हाथ में लिया है। हमें इसका कोइ श्रेय नहीं चाहिए और न ही लाभ। कई वार हमसे पूछा जाता है कि सघ ने यह काम अपने हाथों में क्यों लिया? क्या सघ अपने नित्य कार्यक्रमों, विचारों से दूर हो रहा है? जैसा कि विदित है कि सघ का मूल ध्येय राष्ट्रीय जागरण तथा उससे सवधित एव भावनिक एकात्मता जो कि कभी कम न हो सके, निर्माण करना है। इस सदर्भ में गो-सवर्धन एक महत्वपूर्ण विदु है जिसे ध्यान से प्रत्येक के मन पर अकित करना है।

यहीं कुछ लोग पूछते हैं कि सघ ने यह कार्य इतने विलव से क्यों अपनाया? कुछ इसे राजकीय व्यवहार कहते हैं। सौभाग्य से हम लोग इससे विचलित नहीं हुए। सौभाग्य से यह शब्द मैंने जोर देकर इसलिए कहा क्योंकि उपरोक्त विधानों से हम बहुत दूर हैं। टीकाएँ अनाहूत एव अप्रासगिक हैं, इसपर मैं अधिक नहीं बोलूँगा।

अव हमारी सरकार है। सविधान में गोवश-हत्या पर प्रतिवध का आश्वासन दिया गया है जो कि हमारी श्रद्धा एव भक्ति का विषय है। इस धारा में यह आदेश था कि जो सभी पशुओं को, विशेषत गायों को (दुधारी या सूखी) सरक्षण देगा। सारा देश आशावित था कि उनकी चिरवाछा भारत की ससद एव विधानसभाओं के सत्रों में पूरी होगी। किंतु कुछ हुआ नहीं।

उन्होंने गोहत्या-प्रतिबंध पारित ही नहीं होने दिया। अपितु कुछ राज्यों को, जो इसे पारित करना चाहते थे, भी रोका।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद यह अपेक्षा थी कि गोवंश विक्रय एवं वध पर संपूर्ण प्रतिबंध लगेगा। परंतु सबको प्रसन्न करने की नीति के कारण कुछ न हो सका। अतएव अधिकांश जनता की भावनाओं से सरकार को अवगत कराने हेतु हमने यह कार्यक्रम लिया है। यदि जनता इस प्रकार का विधेयक चाहती है तो स्वाक्षरी अभियान के माध्यम से उसे सरकार तक पहुँचाए। जो नहीं चाहते, उन्हें इसकी आवश्यकता हम समझाएँगे। यही हमारा कार्य होगा। बाकी सरकार का काम है। कुछ लोगों के मतों को लुभाने के लिए बहुसंख्य जनता की भावनाओं का अनादर कर लोकतंत्र की रक्षा नहीं हो सकेगी। हमें विश्वास है कि इस प्रकार का विधेयक संसद में निकट भविष्य में प्रस्तुत किया जाएगा। यह देखना है कि सरकार लोकतान्त्रिक है अथवा नहीं। यह सरकार की परख की घडी होगी।

हम जनमानस को जगाने का सौम्यतम मार्ग अपना रहे हैं। यह हमारे २७ वर्ष की कार्यप्रणाली के अनुरूप ही है। हम जनता में यही भावना जगाते हैं कि कन्याकुमारी से कश्मीर तक फैला यह स्थान हिंदुओं का है। हिंदू इस देश के राष्ट्रीय हैं। अनेकों शब्दों में हम यह दोहराते आए हैं। इसमें छिपाने की कोई बात नहीं है और न विषय को दुर्बोध बनाना चाहते हैं। साफ कहते हैं कि यह हिंदू राष्ट्र है। कुछ लोग हमसे सहमत नही हैं, किंतु वे भी इस सत्य को समझते हैं, पर उसे प्रकट रूप से कहने का साहस नहीं रखते।

आक्रामक कौन — आक्रांता कौन?

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद जब अंग्रेज यहाँ से चले गए तब कुछ बडे नेताओं ने, १२०० वर्ष पूर्व गजनी के आक्रमणों के शिकार ध्वस्त सोमनाथ के जीर्णोद्धार की बात सोची। यह ध्वस्त खंडहर, हमारी शक्तिहीनता एवं गुलामी की याद दिलाता था। वह हमारी स्वार्थ-लोलुपता, विघटित रहने की कुप्रवृत्ति तथा खंडित हिन्दू समाज का परिचायक था। जैसे ही देश की धुरी हमारे नेताओं के हाथ आई, कुछ नेताओं ने सोमनाथ मंदिर के पुनर्निर्माण का योग्य, समयानुकूल, स्वतंत्रता का प्रतीक रूप मानकर विचार किया। राष्ट्रपति सहित अनेक मान्यवर नेता वहाँ उपस्थित हुए। देश के अनेक भागों से पवित्र जल लाया गया तथा शास्त्रोक्त पद्धति से सारा संस्कार

हुआ। उस समय कुछ भाषण हुए, जिनका सार यही था कि सोमनाथ जीर्णोद्धार द्वारा अपमानास्पद गुलामी की हीन भावना का अंत किया गया है, जो विगत १२०० वर्षों से लाछनास्पद थी। उनका १२०० वर्षों की परकीय सत्ता का उल्लेख करने से क्या अभिप्रेत था? १२०० वर्ष कौन गुलाम था? हमारा यह देश किसका था? क्या यह मुस्लिम, ईसाई, पारसी आदि का मिश्रण था? क्या यही उनका अभिप्राय था? आक्रामक कौन थे? और आक्रमित कौन थे? पृथ्वीराज के बाद महमूद गौरी से लेकर मुगलों के राज तक जिन्होंने राज्य किया वे परकीय थे और जिन पर राज किया गया वे यहाँ के निवासी थे। हिंदू यहाँ का निवासी समाज था तथा अन्य आक्रामक थे, जो अब यहाँ के निवासी बन गए हैं। इतिहास यही सत्य बताता है। जो इस सत्य को प्रगट करने का धैर्य नहीं रखते, वे गोलमटोल भाषा से इसे और उलझा देते हैं।

हम सामान्य किंतु स्पष्टवादी लोग हैं, इसलिए हम सीधा सत्य बोलते हैं। एक समय श्री वेंकटराम शास्त्री ने मुझे 'Blunt' शब्द से संबोधित किया था। हम वैसा ही कठोर पर स्पष्ट बोलते हैं। हम जब कहते हैं कि यह हिंदू राष्ट्र है, तब दूसरों का यहाँ रहने का अधिकार भी मानते हैं, पर उन्होंने उचित आचार एवं यहाँ की जीवन पद्धति अपनानी चाहिए। यहाँ के वीर पुरुषों को स्वीकारना चाहिए, यहाँ के उत्सव-पर्वों में भाग लेना चाहिए तथा राष्ट्रीय सद्भाव रखना चाहिए। उन्हें प्रामाणिकता से यहाँ का नागरिक बनना चाहिए। वे अपने उपास्य की आराधना कर सकते हैं। हिंदुत्व इतनी विशाल मानसिकता का पर्यायी शब्द है कि जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-अपनी उपासना, पंथ, मतानुसार स्वयं के विकास की पूरी छूट ही नहीं, मान्यता भी है। किंतु उन्हें राष्ट्रीय जीवन के साथ समरस होकर हमारे साथ रहना चाहिए।

हम हिंदू सदा उदारवादी रहे हैं। कोई भी अन्य समाज यहाँ बस सकता है। अनेक वर्षों पूर्व पश्चिमी बर्बरता से घर-बार उजड़ जाने के कारण पारसी लोग धर्म, धर्मग्रंथ एवं पवित्र अग्नि की रक्षा करने हेतु सूरत के किनारे आकर रहने लगे। तब वहाँ के राजा यादवराम ने दोनों हाथ फैलाकर उनका स्वागत किया था। द्वारकापीठ के शंकराचार्यजी से उन्हें किस प्रकार अपनाया जाए, इसपर विचारविमर्श किया। केवल गोमांस-भक्षण न करें, यह शर्त देकर उन्हें अपना लिया गया। वे आज तक उस शर्त का पालन, अपने धर्म को सुरक्षित रखते हुए कर रहे हैं। दूसरी ओर

तथाकथित प्रगतिशील कहलानेवाले हिंदू स्वय को नियन्त्रित न रखकर गोमास-भक्षी बन गए है। मैं उन्हें सुशिक्षित नहीं मानता। अत जब अन्य धर्मावलबी हमसे मिलजुलकर रहना चाहते हैं तो उन्हें इस राष्ट्र की राष्ट्रीय मान्यताओं का पालन करना होगा, राष्ट्रीय धारा में सम्मिलित होना होगा। यह सत्य यदि हम मान्य करते है तो सारे प्रश्नों को सुलझाना कठिन नहीं है।

१३ शातिपूर्ण आदोलन का आदर्श

(दिल्ली, दिसम्बर १९५२)

आज का दिन अत्यत भाग्य का कहना होगा। जिस दिन भारतवर्ष की हृदयस्थली स्वरूप ऐसे प्राचीन राजधानी के शहर में भिन्न-भिन्न सस्थाओं के सचालकगण 'गो-सवर्धन' पर विचार करने के लिए एकत्र हुए हैं। आपसी मतभिन्नता के कारण छिन्न-विच्छिन्न हो चुके भारतवर्ष की दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

हमारे कार्य का प्रमुख आधार

सपूर्ण देश में गोहत्या बद हो– इसके समर्थक, जो आयु के अनुसार मताधिकार प्राप्त कर चुके हैं, ऐसे व्यक्तियों के हस्ताक्षरों की सख्यात्मक जानकारी आपके समक्ष प्रस्तुत ही है। हस्ताक्षरों को एकत्रित करने के लिए चार सप्ताह का समय निश्चित किया गया था। प्रत्येक कार्य अत्यत प्रामाणिकता से करने की अपनी जो पद्धति है, उसी के अनुसार कार्य करनेवाले स्वयसेवकों ने हस्ताक्षर एकत्रित किए हैं। अन्यथा इस प्रकार के काम तो लोग घर बैठे ही कर लेते हैं। वह तरीका हमारा नहीं है और न हम उसे अपनाने की इच्छा रखते हैं। ये हस्ताक्षर सघ के स्वयसेवकों ने अपना दैनदिन कार्य नियमित रूप से करने के साथ-साथ एकत्रित किए हैं। शाखा ही हमारे कार्य की शक्ति है, प्रमुख आधार है। शाखा की उपेक्षा करके अन्य कार्य करने पर मेरा विश्वास नहीं है। जड काटकर वृक्ष को पल्लवित करने की कला मुझे ज्ञात नहीं है। जड है तभी वृक्ष है यह पहचानकर ही हम जडों में पानी देने पर विश्वास रखते हैं। इसी कारण शाखा की ओर से ध्यान न हटाकर हमने ये हस्ताक्षर एकत्रित किए हैं।

जिन्होंने स्वय हस्ताक्षर दिए और हस्ताक्षर एकत्रित करवाने में सहयोग दिया है, उनका मैं ऋणी हूँ। वास्तव में जिसकी रक्षा का यह प्रयत्न है उस गोमाता की भारतीय जीवन-परपरा सदैव ऋणी है व आगे भी रहेगी।

मेरे पहले के अनेक वक्ताओं ने गोहत्या-बदी के सबध में अत्यत तर्कशुद्ध व्यावहारिक विचार आपके समक्ष प्रस्तुत किए हैं। कुछ वक्ता तो अग्नि की लपटों की तरह उग्र होकर बोले हैं। मन पर जितना तेज आघात होगा, उसी के अनुरूप भाषा की तीव्रता भी स्वाभाविक है। उन्होंने जो भी विचार व्यक्त किए हैं, उसका कारण परिस्थिति ही है, अन्यथा उनके मन में किसी के प्रति कोई द्वेष नहीं है। इसके अतिरिक्त वे राजनीति से दूर रहते हुए भी अछूते नहीं हैं, इस कारण उनका प्रत्येक प्रश्न की ओर राजकीय दृष्टि से देखना स्वाभाविक ही है। गोहत्या-बदी के प्रश्न को वे इसी दृष्टि से देखते हैं। उसमें मुझे कोई एतराज नहीं है, परतु मैं व्यक्तिगत तौर पर गोहत्या-बदी आदोलन को राजकीय दृष्टि से नहीं देखता। इस हस्ताक्षर सग्रह के समय में मुझे जो अनुभव आए हैं, वे मैं आपके समक्ष प्रस्तुत करता हूँ।

गोपाष्टमी के मुहूर्त पर यह कार्यक्रम हमने अपने हाथ में लिया। उसके थोडे ही दिनों पश्चात् हमारे प्रधानमत्री ने ऐसा कहा कि गोहत्या-बदी आदोलन एक राजनीतिक चाल है। गोहत्या-बदी आदोलन को एक राजनीतिक चाल कहा जाएगा, इसकी मुझे कल्पना भी नहीं थी।

वह कार्य करते समय अनुभव आया कि भारतीय सस्कारों को और दृढ करने के लिए भारतीय मानबिंदुओं का सरक्षण होना अत्यत आवश्यक है, उसके बिना इस राष्ट्र की उन्नति होना सभव नहीं। गोमाता भारतवर्ष का सर्वश्रेष्ठ मानबिंदु है, उसकी हत्या सभी के लिये लाछनास्पद है, शर्मनाक है, वह हमें बद करनी ही चाहिए। बहुताश नागरिकों को यह विचार जँचता है कि राष्ट्रीयत्व का ढोंग रचानेवाली काग्रेस, उसके अध्यक्ष व उनके अनुसार चलनेवाली सरकार, ये हिंदू व मुसलमान— दोनों को अलग-अलग रखने का कार्य कर रही है। स्वय प नेहरू राष्ट्रीय एकता के आडे आ रहे हैं। यह वास्तव में एक दुर्भाग्य की बात है।

दूसरा ऐसा अनुभव आया कि मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि सभी धर्मावलम्बी लोगों ने इस कार्यक्रम को समर्थन दिया। लेकिन जब प नेहरू ने विरोध किया, तब उनके मन की भावना हुई कि हिंदू समाज से दूर रहने

में अब कुछ भी आपत्ति नहीं है। जो मुसलमान प्रारंभ में हस्ताक्षर देने के लिये तैयार थे, उन्हें भी लगा कि हिंदुओं से अलग रहने में ही उनका फायदा है। ऐसा उन्होंने स्पष्ट कहा भी।

मुख्य धारा से अभिन्न नहीं

इस विचार के पश्चात् भी लाखों समझदार मुसलमानों ने अपने हस्ताक्षर दिए। वे जानते हैं कि यदि हमें भारत के नागरिक बनकर रहना है तो यहाँ की राष्ट्रीय जीवन-पद्धति से एकरूप होकर रहना चाहिए। भारत-भूमि पर अनादिकाल से रहनेवाले हिंदू जीवन से अलग होकर रहना असभव है, यही सोचकर उन्होंने स्वय के हस्ताक्षर दिए हैं।

उनकी यह धारणा केवल स्वाभाविक ही नहीं वरन् आवश्यक भी है। अमरीका का ही उदाहरण लें— यदि कोई भारतीय वहाँ का नागरिक बनकर कहने लगे कि 'अमरीका का स्वतन्त्रता दिवस उत्सव मेरा न होकर विजयादशमी ही मेरा राष्ट्रीय उत्सव है या वाशिंगटन को राष्ट्रपुरूष न मानकर मैं रामकृष्ण को ही अपना राष्ट्रपुरुष मानूँगा', तो यह बात वहाँ के लोग पचा सकेंगे क्या? ऐसा कहनेवाला व्यक्ति वहाँ का नागरिक बनकर रह सकेगा क्या?

जिस लोकतत्रीय राज्य शासन व्यवस्था की बहुत प्रशसा की जा रही है, उस प्रणाली में भी, देश के प्रत्येक सप्रदाय को राष्ट्रीय -जीवन पद्धति से समरस होकर राष्ट्रीय समाज के विचारों से सामजस्य बनाकर रहना अत्यत आवश्यक है।

स्वराज्य अर्थात् गौ-रक्षण

हमने यह हस्ताक्षर आदोलन राजनैतिक दॉव-पेंच सोचकर हाथ में नहीं लिया है। आतरिक प्रेरणा से यह कार्य करने के लिए उद्यत हुए हैं। परतु अपनी कही जानेवाली सरकार यदि श्रद्धा का मूल्य न जानकर, इस कार्य को यदि राजनीतिक दॉव-पेंच कहती है तो इस सरकार को हम अपनी कैसे कहें? अपने देश के सपूर्ण समाज के बुद्धिजीवी तथा चितनशील व्यक्तियों को गोहत्या पर सपूर्ण बदी हो, ऐसा लगता है। आचार्य विनोबा भावे कहते हैं—'सबै भूमि गोपाल की।' लेकिन मैं ये जानना चाहता हूँ कि यह भूमि गोपालों की है या गौ-हत्यारों की।

हमारा यह कार्य नया नहीं है। महर्षि दयानद जी ने भी यह कार्य

अपने हाथ में लिया था। क्या उन्होंने भी राजनीतिक दॉव-पेंच की दृष्टि से यह कार्य किया था? मुझे इस सबध में लोकमान्य तिलक के जीवन का एक प्रसग याद आता है। वे एक बार नागपुर आए थे। नागपुर तो गौ-रक्षण सभा का जन्मस्थान है। तिलक जी के यहॉ आने पर गौ-रक्षण सभा के सचालक उनके पास गए और गो-रक्षण सभा के लिए उनकी सहायता मॉगी। लोकमान्य जी ने उत्तर दिया-- 'शिवाजी महाराज ने गो-रक्षण के लिए कोई गो-रक्षण सस्था स्थापित नहीं की थी।' वैसे देखा जाए तो लोकमान्य जी ने जीवन पर्यत इस कार्य में सहयोग दिया था, परतु गौ-रक्षण सभा के कार्यकर्ताओं को ऐसा उत्तर देने के पीछे उनका अभिप्राय था कि जब तक गौ-भक्षकों का शासन नष्ट नहीं होता, तब तक गौमाता की रक्षा करना कैसे सभव है? गौ-भक्षक शासकों को सपूर्ण निर्मूल या विनाश करनेवाले महाराज शिवाजी को इसी कारण से गौ-प्रतिपालक कहा जाता है। स्वराज, याने गौ-रक्षण-- यह सदा से हमारी धारणा बनी हुई है।

क्या यही स्वराज्य है?

हम जिस स्वतत्र राज्य में रह रहे हैं, वह क्या वास्तव में स्वराज्य है? इसका हमें गभीरता से विचार करना होगा। गौ-हत्या को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तरीके से प्रोत्साहन देनेवाली सरकार अपनी कैसे हो सकती है? चुनाव में वोट से जीतकर आ गए इसलिए आज की यह सरकार अपनी है-- यह कहना उचित होगा क्या? महारानी विक्टोरिया के सत्ताकाल में काग्रेस सहित सारी जनता अग्रेजों के राज्य का समर्थन करती थी, क्या इस आधार पर उस राज्य को स्व-राज्य कह सकते थे? उसी प्रकार हमारे मानबिंदुओं का अपमान जहॉ होता हो, ऐसे प्रचलित स्वराज्य को स्व-राज्य कहने में मेरा मन कतराता है। वास्तव में जब मानबिंदु की साम्राज्ञी गो-माता की रक्षा होगी व उसकी हत्या करनेवाले को, मानव-हत्या के सामन दोषी समझा जाएगा, उस दिन हमारा स्वराज हो गया ऐसा कहना उपयुक्त होगा।

उपद्रवियो को प्रोत्साहन

इस कार्यक्रम (गौहत्या बदी) का विरोध करते हुए प नेहरू ने कहा था कि "गौ-हत्या बद होने पर मुसलमान व अन्य गौ-मास खानेवाले लोग उत्तेजित हो उठेंगे, इसलिए गौ-हत्या बदी होना उचित नहीं है।" मैंने

जब यह वक्तव्य पढा तब मुझे दु ख के साथ आश्चर्य भी हुआ। कुछ थोडे से लोग चिल्लाहट करेंगे, इसलिए गो-हत्या बदी नहीं करें, अर्थात् गो-हत्या बदी की माँग करनेवालों को उपद्रव करने का निमत्रण देना ही नहीं है क्या? प नेहरू का यह भाषण अत्यधिक गैरजिम्मेदाराना है, उन्हें अधिक विचारपूर्वक बोलना चाहिए। उनका भाषण अप्रत्यक्ष रूप से उपद्रवियों को ही प्रोत्साहित करता है। इस कारण लोगों की यह धारणा बनेगी कि जो लोग चिल्लाहट या उपद्रव करेंगे, सरकार केवल उनकी ही बात सुनेगी। ऐसी भावना निर्माण करना देशभक्त को शोभा नहीं देता। उपद्रवियों को इस कार्यक्रम में कोई स्थान नहीं। हम तो शातिपूर्ण मार्ग से, नैतिक सामर्थ्य के सहारे गो-हत्या बदी करवा ही लेंगे।

कहाँ अशोक कहाँ नेहरू

इस काय के निमित्त प्रवास में एक बार मेरी एक साधु से भेंट हुई। उन्होंने मुझे कहा कि सरकार ने सम्राट अशोक का चक्र राष्ट्र चिह्न अपनाया है। अशोक के राज्य में गोहत्या होती थी क्या? यदि नहीं होती थी तो इस सरकार को भी गोहत्या बद करनी चाहिए अन्यथा अशोक चक्र को राजचिह्न से निकाल देना चाहिए। साधु महाराज के वक्तव्य के लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता नही है, वह तो एकदम स्पष्ट ही है।

आर्थिक समस्याओ का हौवा

कुछ दिन पूर्व साची में भगवान बुद्ध के दो श्रेष्ठ शिष्यों की अस्थियों की प्रतिष्ठापना का समारभ हुआ। उसमें हमारे प्रधानमत्री ने उत्साह के साथ भाग लिया था। परतु वहाँ से केवल छ मील दूर भेलसा (विदिशा) पहुँचते ही 'गो-हत्या जारी रहेगी' ऐसी घोषणा की। कहाँ श्रद्धेय गौतम बुद्ध का अहिसा का सदेश और कहाँ गो-हत्या जारी रखने की घोषणा। ऐसा विरोधाभास देखकर अत्यत हँसी आई। बहुत से लोग गोहत्या बदी की बात निकालते ही गो-रक्षण की समस्या उठाते हैं। मुख्य समस्या से सामान्य व्यक्तियों का ध्यान हट जाए इतना ही उनका उद्देश्य रहता है। स्वतत्रता की माँग करते ही अग्रेज कहते थे, पहले हिंदू-मुसलमान एक हो जाओ उसके बाद ही स्वतत्रता मिलेगी। उसी प्रकार यह कहना कि पहले गो-रक्षण की बात करो, बाद में गोहत्या बदी की बात करेंगे।

कुछ लोग आर्थिक प्रश्नों की चर्चा करते हैं। मैं इस समस्या को आर्थिक दृष्टि से नहीं देखता। मुझे भावनात्मक विचार से ही सरोकार है।

रोटी, कपडा, मकान दे नहीं सकते इसलिए नगे भूखे, निराश्रित लोगों को मार डालना चाहिए, यह बात जितनी असबद्ध है, उतनी ही चारे के अभाव में पशुओं की हत्या करने की बात भी असगत है। हर समस्या को आर्थिक दृष्टि से देखने का परिणाम यह हुआ है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष– इन चार पुरुषार्थों से युक्त पूर्ण मानव आज केवल 'अर्थ' की सोचवाला, एक चौथाई पुरुष ही रह गया है। आज गॉव-गॉव में अग्रेजी राज्य की दुहाई देनेवाले लोग मिलते हैं। स्वतत्रता की कीमत रोटी, कपडे की उपलब्धता से करने लगते हैं। रोटी के लिए रूस को बुलावा भेजने की सोचते हैं। जैसे रोटी के लिए अपनी आत्मा बेच देने में भी उन्हें कोई हिचक नहीं। यह मानसिकता राष्ट्र की दृष्टि से अत्यत घातक है। जिस प्रकार काम की प्रवृत्ति का अधिक विचार करने से अनाचार बढता है, उसी तरह केवल धन के सतत विचार से धनोपार्जन करनेवाला मनुष्य एक खिलोना बनकर रह जाता है। मनुष्य के सपूर्ण विकास के लिए धर्म ही आवश्यक है। धर्म से समाज की धारणा होती है।

साची में जिन भगवान बुद्ध के शिष्यों की अस्थियों के सामने घुटने टेककर प्रधानमत्री ने श्रेष्ठभाव प्रकट किए थे, उन भगवान बुद्ध ने भी 'धम्म शरण गच्छामि' ऐसा घोष किया था, न कि 'सेक्युलरिज्म शरण गच्छामि' का।

गौमाता एव स्वराज्य

जिसके रोम-रोम से अपने राष्ट्र की एकता प्रस्फुटित होती है, यदि उसका सरक्षण नहीं हुआ तो इस देश का उत्थान कैसे होगा? कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि जहाँ मातृभूमि के टुकडे हो गए, वहाँ गौमाता के टुकडे होते हैं तो उसमें आश्चर्य क्या? कहीं ऐसा ही सोचकर हम गौमाता की उपेक्षा तो नहीं कर रहे हैं? वस्तुत गौमाता एव भू-माता– ये हमारे राष्ट्र-जीवन के आधारस्तभ हैं। गाय की हत्या से अधिक पाप, दूसरा कोई हो नहीं सकता। इसी दृष्टि से यह कार्य हमने अपने हाथ में लिया है। धन की कमी होने के बावजूद पौने दो करोड लोगों के हस्ताक्षर एकत्र हुए हैं।

भारत में 'भारतीय स्वराज्य' की स्थापना किए बिना विश्राम नहीं लेंगे, ऐसा निश्चय करके आप लोग यहाँ से जाएँ। जो हमारे मानबिंदु हैं उनकी रक्षा करेंगे ही, चाहे पूरी दुनिया हमारा विरोध करे तो भी उस विरोध को ठोकर मारते हुए, उनकी रक्षा करेंगे और उसके लिये सपूर्ण देश

में ऐसी अजेय शक्ति निर्माण करेंगे कि जिसके सामने संपूर्ण विश्व नतमस्तक होगा और संपूर्ण मानव जाति के कल्याणकारी काम से असीम सम्मान का पात्र होगा।

卐 卐 卐

१४ कानूनन गोहत्या बंदी आवश्यक

(दिल्ली, अक्टूबर १९५३)

एक सज्जन ने मुझसे कहा, "भाई, यहाँ पर तो पहले मनुष्य का प्रश्न है, तुम गाय का प्रश्न लेकर बैठे हो। अरे, गाय तो आखिर गरीब पशु है, उसमें क्या बड़ी बात है? मनुष्य की रक्षा करो।"

मनुष्य भूखा और गाय की रक्षा! यदि गोहत्या ऐसे ही न रोका गया और सब प्रकार से गौ का रक्षण किया तो फिर न जाने गायों की संख्या कितनी बढ़ जाएगी? फिर वे मनुष्य के खेत में जाएँगी, अनाज खाएँगी, तब मनुष्य को खाने के लिए अनाज नहीं मिल सकेगा, तब आप गोवध की माँग करेंगे?

कम से कम पाँच सौ रुपया वापस मिलता है। इसे आर्थिक दृष्टि से लाभ कहोगे या हानि? आर्थिक दृष्टि से इस पहलू का विचार करें तो कहना पडेगा कि मनुष्य का खाना-पीना जिसपर निर्भर है, वह कृषि और वह कृषि जिसपर निर्भर है वह गोवश, सपूर्ण दृष्टि से सवर्धित होना आवश्यक है। उनके पोषण की चिता करना और गोवश की हत्या बद हो इसके लिए सब प्रकार के प्रयत्न करने की आवश्यकता है। सरकारी तौर पर कानून बनाकर, उसकी हत्या के लिए कडे दड का प्रबध करते हुए हत्या बद करना नितात आवश्यक है।

गोपाल की भूमि मे गोहत्या

कुछ लोगों का कथन है कि यहाँ पर बहुत अधिक पशुधन है। परतु जो लोग हिसाब-किताब जानते हैं, उनको पता है कि हिंदुस्थान एक गरीब देश है, जहाँ गोधन अत्यत कम है। गोपाल की भूमि में गोधन बहुत कम है। सबसे कम है ऐसा मैं कहूँ तो भी कोई आश्चर्य नहीं होगा। ऐसी अत्यत विपरीत परिस्थिति अपने यहाँ पर है। तो यह सोचना चाहिए कि गौहत्या बद कैसे हो। मैंने सुना है कि महायुद्ध के पूर्व जितना गोधन यहाँ पर था आज उसका केवल ४० प्रतिशत यहाँ बचा हुआ है। युद्ध में ६० प्रतिशत खा बैठे। आजकल डालर का जो पागलपन सबके सिर पर सवार है, इस कारण उसके लिए कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। गर्भिणी गाय तक मारी जाती हैं। कई लोग कहते हैं कि हम दुधारू गाय नहीं मारते। मैं ऐसा समझता हूँ कि जो गाय गर्भिणी हो जाती है, वह कुछ समय के लिए दुधारू नहीं रहती। कानून के इस छिद्र का सहारा लेकर उसको मारते हैं। कहते हैं कि गर्भिणी गाय के गर्भ में जो बछडा रहता है, उसका चमडा पहनने में बडा मुलायम होता है। नारी भी गर्भिणी होती है। उसके गर्भ का मास भी बडा मीठा होता होगा। उसको क्यों नहीं खाते? उससे तो काफी समस्याएँ हल हो जाएँगी। मनुष्य की लोकसख्या अपने आप कम हो जाएगी। 'परिवार नियोजन' वगैरह कुछ नहीं करना पडेगा। प्रतिवर्ष लगभग एक-डेढ करोड गोहत्या होती है। 'सबै भूमि गोपाल की' का नारा और गो हत्या। गोपालन करनेवाले देश में सब से कम गोधन। गोपालन करनेवाले देश में कानून बनाने की किसी की इच्छा नहीं होती, यह कितने आश्चर्य की बात है? इसलिए सब दृष्टि से विचार करने पर आर्थिक और उससे बढकर श्रद्धा की दृष्टि से भी गोहत्या बद होनी चाहिए। गोवध करनेवालों

में ऐसी अजेय शक्ति निर्माण करेंगे कि जिस
नतमस्तक होगा और सपूर्ण मानव जाति के कल्या
सम्मान का पात्र होगा।

१४ कानूनन गोहत्या बंदी आव

(दिल्ली, अक्टूबर १९५३)

एक सज्जन ने मुझसे कहा, "भाई, यहाँ पर ‹
प्रश्न है, तुम गाय का प्रश्न लेकर बैठे हो। अरे, गाय तो
है, उसमें क्या बडी बात है? मनुष्य की रक्षा करो।"

मनुष्य भूखा और गाय की रक्षा! यदि गोहत्या ‹
दिया और सब प्रकार से गौ का रक्षण किया तो कल न
सख्या कितनी बढ जाएगी? फिर वे मनुष्य के खेत में
खाएँगी, तब मनुष्य को खाने के लिए अनाज नहीं मिल सक
गोवध की माँग करेंगे?

कितना विचित्र तर्क है। ऐसे ही एक आदमी ने कह
हम लोग जो मछली खानेवाले हैं, मछली खाना छोड दें तो समु
मछलियाँ हो जाएँगी कि पानी की बूँद तक नहीं मिलेगी। है कि ॰
तर्क?

कुछ और लोगों ने कहा कि हाथी अगर प्राकृतिक रूप
रहे और जिस प्रकार वे अपना प्रजनन करते हैं, वैसा करते रहे त
वर्ष बाद इस पृथ्वी पर अन्य किसी प्राणी को रह
लिए स्थान ही नहीं बचेगा, इतने हाथी हो जाएँगे। पर हाथी तो हजा
से इस जगत् में विद्यमान हैं। उनकी सख्या कभी बहुत बढ गई हो-
देखनें में नहीं आया। इस प्रकार की विचित्र बातें हमारे यहाँ चलती

मैं तो समझता हूँ कि गौ एक ऐसा प्राणी है, जो जितना खाता
उससे अनेक गुना अधिक मनुष्य को वापस करता हे। दूध के रूप
उसके द्वारा विसर्जित किए जानेवाले पदार्थो गोबर-गोमूत्र इत्यादि के द्वा
मिलनेवाली खाद के रूप में और मृत्यु के उपरात चर्म और अस्थि के रूप
में वह अपने को वापस करती है। उसका यदि हिसाब लगाया जाए तो
कहना पडेगा कि गौ के ऊपर यदि किसी ने सो रुपया खर्च किए, तो उसे

भिन्न-भिन्न प्रकार के पाप-कर्मों से प्राप्त किया हुआ द्रव्य किसी परिवार या राष्ट्र की उन्नत नहीं कर सकता। गौ की हत्या कर उसके व्यापार से मिला हुआ यह डालर भारत को मिट्टी में मिलाकर इतना नीचे गाड देगा कि यदि परमात्मा भी उसको उठाने के लिए आए तो कठिन परिश्रम करना पडेगा। अत कुछ डालर भले कम मिलें, पर इसका मोह छोडना ही चाहिए।

निर्बंध की ही आवश्यकता

दूसरा भी एक उदाहरण है। हम लोगों को मालूम है कि 'हिंदू कोड' नाम का एक कानून है। मुझे उससे कोई मतलब नहीं है। मैं केवल हृदय-परिवर्तन के बारे में बोल रहा हूँ। कितने आग्रह से उसको कानून के रूप में बनाने के लिए प्रयत्न हुआ? उसे हृदय-परिवर्तन के ऊपर क्यों नहीं छोडते? वास्तव में तो वह प्रश्न ऐसा है कि जिसे हृदय-परिवर्तन पर, शिक्षा-दीक्षा आदि पर छोडना चाहिए। उसके बारे में कानून बनाने की जरूरत क्या थी? लोगों का हृदय-परिवर्तन करो, योग्य शिक्षा दो, फिर लोगों का सस्कारयुक्त जीवन उत्पन्न होगा, तब उसे कानून के द्वारा मान्यता दो। इधर-उधर के ऊटपटाँग विचारों को सर्वसामान्य जनता के ऊपर लादकर भारतीय जीवन के विनाश की यह सारी की सारी रचना है, उसे करने से मतलब क्या? इस दृष्टि से हम विचार करें कि जिस प्रकार हृदय-परिवर्तन के स्थान पर हिन्दू कोड बनाने की आवश्यकता पडी, उसी प्रकार गोवश की हत्या को सर्वथा समाप्त करने का कानून अवश्यमेव होना चाहिए।

लोग यह न समझें कि यह कार्य सघ ने प्रारभ किया है तो स्वयसेवक ही सब कुछ करेंगे। वे तो केवल प्रारभ करनेवाले हैं। कार्य जनता का, श्रेय जनता को, हमने तो केवल कार्यक्रम सामने रखा है।

१५ प्रबल राष्ट्रजीवन

(विजयवाडा, जनवरी १९५६)

गत हजार वर्षों की गुलामी के कारण भ्रष्ट हुए हमारे मन का सस्कारों द्वारा पुनर्जागरण और शुद्धीकरण करना आवश्यक है। इसीलिए पूरे देश में स्नेह और अनुशासन के आधार पर शक्तिशाली और अजेय सगठन खडा करते हुए उसे मातृभूमि और राष्ट्र के चरणों में समर्पित करने

के लिए कडा दड होना चाहिए। अपने यहाँ के बडे-बडे श्रेष्ठ पुरुषों ने कहा है कि गौ की हत्या और नर-हत्या एक बराबर है। तब नर-हत्या के लिए जिस प्रकार के दड का प्रावधान है, उसी प्रकार गोहत्या के लिए भी उतना ही दड होना चाहिए। ऐसा एक नियम बनाकर, सब प्रकार से गो-पालन, गो-सवर्धन, गो-रक्षण करने की एक विशाल योजना सरकार की ओर से सपूर्ण देश में होना आवश्यक है। यह कानून सपूर्ण गोकुल—गाय, बैल इत्यादि का वध रोकने के लिए आवश्यक है।

वैसे तो विधान में लिखा हुआ है कि गोहत्या-बदी के लिए राज्य सरकारें कदम उठाएँ। वह एक प्रकार से आज्ञार्थ है। परतु अपने यहॉ के जो छोटे-मोटे राज्य हैं, उनमें से कितने राज्यों ने इसका पालन किया? जो नियम बनाया गया उसको भी लोगों ने निकम्मा कर दिया। लेकिन ऐसा होना नहीं चाहिए। इसलिए समस्त भारतवर्ष में एक निर्बंध हो जाए तो ठीक रहेगा।

हृदय-परिवर्तन का विचित्र उपदेश

कुछ लोगों ने यह कहा कि गोवध पर निर्बंध लगाने के स्थान पर जो लोग कसाई अथवा बूचडखाने को गाय बेचते हैं, उन लोगों के अत करण में परिवर्तन लाना चाहिए। गौ का पालन करें, उसे कभी बेचें नहीं, ऐसा उनको समझाना चाहिए। यह बात तो बिल्कुल ठीक है, परतु गोरक्षा का प्रश्न उत्पन्न होते ही हृदय-परिवर्तन की सब लोगों को याद आती है, किंतु मद्यपान-निषेध का कानून बनाते समय हृदय-परिवर्तन की याद क्यों नहीं आती? पर उसके लिए कानून बनाया। उसके लिये भी हृदय-परिवर्तन पर्याप्त था। मगर ऐसा कहने से होता नहीं। यह अत्यत महत्त्व का विषय है, इसलिए कानून बनाने से ही वह जल्दी हल हो सकता है। उसके पश्चात् धीरे-धीरे हृदय-परिवतन होगा। तब तक कानून लादकर उससे सद्प्रवृत्त करने की आवश्यकता होती है।

तुच्छ डालर का पागलपन

श्रद्धा को सब प्रकार से मिट्टी में मिलाकर राष्ट्र-जीवन का उपमर्द कर इस घृणास्पद व्यापार से मिलनेवाले डालर के ऊपर थूकना भी महापाप है— ऐसा मैं समझता हूँ, स्पर्श करना तो दूर की बात है। इतना भीषण पैसा जो सपूर्ण राष्ट्रजीवन को बर्बाद करेगा। चोरी से लाया हुआ द्रव्य या

भिन्न-भिन्न प्रकार के पाप-कर्मों से प्राप्त किया हुआ द्रव्य किसी परिवार या राष्ट्र की उन्नत नहीं कर सकता। गौ की हत्या कर उसके व्यापार से मिला हुआ यह डालर भारत को मिट्टी में मिलाकर इतना नीचे गाड देगा कि यदि परमात्मा भी उसको उठाने के लिए आए तो कठिन परिश्रम करना पडेगा। अत कुछ डालर भले कम मिलें, पर इसका मोह छोडना ही चाहिए।

निर्बंध की ही आवश्यकता

दूसरा भी एक उदाहरण है। हम लोगों को मालूम है कि 'हिंदू कोड' नाम का एक कानून है। मुझे उससे कोई मतलब नहीं है। मैं केवल हृदय-परिवर्तन के बारे में बोल रहा हूँ। कितने आग्रह से उसको कानून के रूप में बनाने के लिए प्रयत्न हुआ? उसे हृदय-परिवर्तन के ऊपर क्यों नहीं छोडते? वास्तव में तो वह प्रश्न ऐसा है कि जिसे हृदय-परिवर्तन पर, शिक्षा-दीक्षा आदि पर छोडना चाहिए। उसके बारे में कानून बनाने की जरूरत क्या थी? लोगों का हृदय-परिवर्तन करो, योग्य शिक्षा दो, फिर लोगों का सस्कारयुक्त जीवन उत्पन्न होगा, तब उसे कानून के द्वारा मान्यता दो। इधर-उधर के ऊटपटाँग विचारों को सर्वसामान्य जनता के ऊपर लादकर भारतीय जीवन के विनाश की यह सारी की सारी रचना है, उसे करने से मतलब क्या? इस दृष्टि से हम विचार करें कि जिस प्रकार हृदय-परिवर्तन के स्थान पर हिन्दू कोड बनाने की आवश्यकता पडी, उसी प्रकार गोवश की हत्या को सर्वथा समाप्त करने का कानून अवश्यमेव होना चाहिए।

लोग यह न समझें कि यह कार्य सघ ने प्रारभ किया है तो स्वयसेवक ही सब कुछ करेंगे। वे तो केवल प्रारभ करनेवाले हैं। कार्य जनता का, श्रेय जनता को, हमने तो केवल कार्यक्रम सामने रखा है।

ॐ ॐ ॐ

१५ प्रबल राष्ट्रजीवन

(विजयवाडा, जनवरी १९५६)

गत हजार वर्षो की गुलामी के कारण भ्रष्ट हुए हमारे मन का सस्कारों द्वारा पुनर्जागरण और शुद्धीकरण करना आवश्यक है। इसीलिए पूरे देश में स्नेह और अनुशासन के आधार पर शक्तिशाली और अजेय सगठन खडा करते हुए उसे मातृभूमि और राष्ट्र के चरणों में समर्पित करने

का हमने निश्चय किया है। हमारी दैनंदिन शाखा, वहाँ होनेवाले शारीरिक कार्यक्रम, प्रार्थना, विचारों का आदान-प्रदान, ये सब बातें हमारे अंतःकरण को शुद्ध और मन को संस्कारित करने का एक मार्ग है। हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इन संस्कारों के आधार पर ही ध्येयसिद्धि हो सकती है। अन्य कोई पर्याय नहीं है।

लोग अब सोचने लगे हैं कि हमारे लिए बड़े-बड़े उद्योग खड़े कर आर्थिक शक्ति के रूप में उभरना असंभव नहीं है। यदि हम चाहें तो पूरे विश्व में सम्मान्य स्थान पाने की क्षमता रखते हैं। किंतु वे भूलते हैं कि सफल होने व दृढ़ता से खड़े रहने के लिए शुद्ध संस्कारों और प्रबल राष्ट्रजीवन की आवश्यकता है।

आज विश्व दो शक्तिशाली गुटों में बँटा है। एक का नेतृत्व रूस करता है तो दूसरे का नेतृत्व ऍंग्लो अमेरिकन गुट करता है। इन दो गुटों में दिखनेवाला तनाव दूर करते हुए विश्व-शाति प्रस्थापित हो, इसके लिए हमारे एक बड़े नेता विशेष प्रयास कर रहे हैं। इन प्रयासों से सह-अस्तित्व और पचशील का जन्म हुआ। एक दूसरे के साथ समझौता करना यह इसका सरल अर्थ है। मान लो, यदि यह कागजी समझौते विफल हुए और उनको अमल में लाने की किसी में क्षमता नहीं रही, तो क्या होगा? फिर विश्व में बढता तनाव कैसे दूर होगा? हम इन प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयास करें।

विश्व के वर्तमान सदर्भ से इन कागजी समझौतों के सह-अस्तित्व की ग्राह्यता मनवाने की कोई उपयोगिता नहीं है— यह मेरा विचार अनेक लोगों को स्मरण होगा। हमारे नेताओं की ये घोषणाएँ चुनाव जीतने के लिये उपयोगी हैं किंतु विश्व में दिखाई देनेवाला तनाव दूर करने के लिए पूर्णतया निरर्थक हैं।

'शातिपूर्ण सह-अस्तित्व' और 'पचशील' जैसे नारे तथा कागजी समझौते, जिनमें हमारे नेता दिन-रात उलझे हुए हैं, हमारे राष्ट्र के विरुद्ध विश्व के स्वार्थी लुटेरे देशों के गर्हित उद्देश्यों की पूर्ति में केवल छद्मावरण बनाने में प्रयुक्त होते हैं। जैसा हम जानते हैं कि पचशील सिद्धात के प्रति विश्वास-प्रदर्शन में चीन सबसे आगे है। यह कहकर चीन की अत्यधिक प्रशसा की जाती है कि पिछले दो हजार या उससे भी अधिक वर्षो से, जब से उसने बौद्धमत स्वीकार किया है, हमारा महान पडोसी और मित्र है।

हमारे नेताओं ने घोषणा की कि वे 'किसी भी मूल्य पर' चीन के साथ मित्रता बनाए रखने के लिए कृतनिश्चयी हैं। एक समय हमने इसी प्रकार से 'किसी भी मूल्य पर' इस देश के मुसलमानों की मित्रता सपादित करने का भी निश्चय किया था। राष्ट्र की अखडता और सम्मान की दृष्टि से हमें इसका कितना मूल्य चुकाना पडा, यह सर्वज्ञात है। चीन के सबध में भी वही दुहराया गया है।

दुश्चिह्नो की उपेक्षा

हम यह भूल गए कि पिछले कुछ वर्षों से प्राचीन बौद्धमतावलबी चीन बदल चुका है। रूसी जादूगर ने उसके शव में साम्यवादी आत्मा का प्रवेश करा, उसे एक दानव बना दिया है। उसका दानवी नृत्य अपनी सीमाओं पर हम देख रहे हैं। जब उसने तिब्बत को हडप लिया था, तब पडित नेहरू ने उसका हल्का-सा विरोध किया था। उसकी रुखाई के साथ भर्त्सना करते हुए चीन ने कहा कि वह उनके 'आतरिक मामले' में अपनी टाँग न अडाएँ। हमारे प्रधानमत्री इस राष्ट्रीय अपमान को चुपचाप पी गए। भारत और चीन के बीच शाश्वत मित्रता तथा भ्रातृत्व की ऐतिहासिक सधि के नाम पर की गई चीन की दोस्ती और पचशील की गरिमा बनाए रखने के लिए हम हर बार ऊँची कीमत चुकाते चले आ रहे हैं। उसपर जिस समय दो देशों के महान प्रधानमत्रियों के हस्ताक्षर हो रहे थे, उसी समय लद्दाख में चीन द्वारा बनाए गए फौजी रास्तों पर उनके सेनिकों से भरे ट्रक धडधडाते हुए हमारे हिमालय क्षेत्र के बडे भू-भाग पर कब्जा कर रहे थे।

गाँधीजी के शिष्य तथा प्रसिद्ध अर्थशास्त्री डा जे सी कुमारप्पा ने अपनी रूस और चीन की यात्रा के पश्चात् स्पष्ट चेतावनी दी थी कि चीन और रूस की दृष्टि में पचशील की सधि उस कागज के टुकडे के मूल्य के बराबर भी नहीं है, जिसपर वह लिखी गई है। परतु साम्यवादी चीन के आक्रमण के सर्वग्रासी भय के सुस्पष्ट चिह्नों के प्रति हमारे नेता आँखें बद कर स्वप्नलोक में विचरण करते रहे। हमारे देश में साम्यवादियों ने चीन के एक नए मानचित्र की प्रतियाँ बाँटी हैं, जिसमें हिमालय के लद्दाख, नेपाल, सिक्किम, भूटान, नेफा (आज का अरुणाचल) और तिब्बत से बाहर निकलती हुई चीन की आक्रामक मुट्ठी की पाँच उगलियों के पाँच प्रतीक तथा बर्मा के भाग चीन की सीमा के अतर्गत दिखाए गए थे। हमारी सरकार ने इन मानचित्रों के वितरण को रोका तक नहीं।

जब ख्रुश्चेव हमारे देश में आए थे, तब कश्मीर में उन्होंने कहा था

कि 'जब कभी तुम पर विपत्ति आए इन पहाडों की चोटियों पर चढकर सहायता के लिए पुकारो। दूसरी ओर से हम सदा तुम्हारी सहायता के लिए दोडकर आने को प्रस्तुत रहेंगे।' उस घोषणा का यह रहस्य हम न भूलें कि उनके अनुचर यहाँ हैं, जो कभी भी उन्हें सहायता के लिये पुकारेंगे।

इसके अतिरिक्त जब ख्रुश्चेव ओर बुल्गानिन का स्वागत सपूर्ण देश मे अभूतपूर्व जय-जयकार से हो रहा था और उन्हें विश्व-शाति के दूत के रूप में अभिनदित किया जा रहा था, उस समय हमारे देश में एक रूसी समाचार-चलचित्र प्रदर्शित हो रहा था। वह चलचित्र मास्को के दृश्य से प्रारभ होता है। उसमें व्याख्याकार घोषित करता है-'भावी ससार की राजधानी, मास्को'। मास्को को विश्व की राजधानी बनाने का क्या यह अर्थ नहीं है कि सपूर्ण ससार को रूस के अधीन होना पडेगा?

इन दिनों नेपाल मे जो चल रहा है, उसे उदाहरण के तौर पर देखें। आपने वहाँ के डा के आर सिग का नाम सुना होगा। कुछ महीनों तक होम्योपेथी का पत्राचार द्वारा अध्ययन करने के कारण उन्हें डाक्टर कहा जाता हे। साम्यवाद के नाम पर बगावत करने के कारण नेपाल सरकार उनको ढूँढ रही थी। वे भूमिगत हुए और चीन में चले गए। चीनी सरकार ने उन्हें आश्रय दिया। वास्तव में बगावत करनेवाले ऐसे लोगों को आश्रय देना शत्रुतापूर्ण कार्य माना जाता है, मित्रता या बधुभाव का नहीं। नेपाल और हम पुरातनकाल से परस्पर जुडे हुए हैं। इसीलिये नेपाल के विरुद्ध किया गया कोई भी शत्रुतापूर्ण कृत्य हमारे विरुद्ध कृत्य होता है। मुझे लगता है कि उनसे तीन या चार साल तक अच्छा व्यवहार करने की गारटी लेकर, किसी योजना से नेपाल वापस भेजा गया हे। यह ऐसा समाचार हे, जिसकी में अभी तक पुष्टि नहीं कर पाया हूँ कि चीन सरकार के दबाव के कारण उसे नेपाल में फिर से प्रवेश करने की अनुमति दी गई है और उसे स्वतत्रता से व्यवहार करने की छूट भी दी गई है। लेकिन उसने फिर से विद्रोह खडा किया तो स्वाभविक रूप से उसके पुराने मालिक, यानी चीन की मदद उसे मिलेगी। सभवत चीन की फौज भी नेपाल में प्रवेश करे तो कोई आश्चय नहीं होना चाहिए। क्योंकि इसके पहले कोरिया और तिब्बत में भी इसी प्रकार सेनाऍं भेजी गई थीं।

तिब्बत के सबध में उन्होंने कहा है कि वह उनका घरेलू मामला है। उन्होंने हमारी सरकार को कहा है कि वह बीच में न पडे। नेपाल के सबध में भी वे ऐसा ही कहेंगे। नेपाल में उस प्रकार का प्रचार भी किया

जा रहा है। वे कहते हैं कि इतिहास की दृष्टि से चीनी और नेपाली लोग एक ही वंश के हैं। चीन में प्रकाशित एक नक्शा भी चिंता का विषय है। उसमें नेपाल का कुछ हिस्सा चीन का बताया गया है। इसका अर्थ यह है कि नेपाल में उनका प्रवेश, अतिक्रमण नहीं माना जाएगा। वह सह-अस्तित्व के सिद्धांत का उल्लंघन भी नहीं माना जाएगा। वे कहेंगे– यह तो हमारा घरेलू मामला है। अब यह घरेलू मामला इच्छानुसार नक्शे पर पेन्सिल से एक छोटी रेखा खींचकर बताया जा सकता है। उसके लिए बहुत कुछ करना नहीं पड़ता। किंतु सवाल उठता है कि हमारे लोग क्या कर रहे हैं? 'किसी भी कीमत पर' इस पंचशील के मंत्र का केवल गुणगान ही करते रहेंगे? उनका तो किसी भी कीमत पर उसकी रक्षा करने का प्रण है। किंतु हमें कितनी कीमत चुकानी पड़ेगी– इसका कोई अंदाजा हमारे नेताओं को है? इसकी कितनी कीमत चुकानी पड़ेगी, यह मैं नहीं कह सकता। वे कह सकते हैं कि उस महान मित्रता के बदले में हमें बहुत कम कीमत चुकानी पड़ी। इसीलिए मैंने कहा है कि इस विद्यमान जगत् में सह-अस्तित्व का कोई अर्थ नहीं है। यह केवल मैं ही नहीं कह रहा हूँ, चीन और रूस का दौरा पूरा करने के बाद लौटे महात्मा गाँधी के अनुव्रती डा. कुमारप्पा भी कहते हैं। इसलिए इस विश्व में यदि हमें शांति और स्वाभिमानपूर्वक रहना है और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करनी है तो हमें आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से बलशाली बनना होगा। केवल शब्दों के उच्चार से या कागज के टुकड़ों के दस्तावेज प्रस्तुत करने से काम नहीं चलेगा। हर एक शब्द के पीछे शक्ति खड़ी करनी होगी। हमारा समाज सुसंगठित, बलशाली, अजेय है– यह विश्व को बताना होगा। उसके सिवाय अन्य कोई रास्ता नहीं है। हम प्रारंभ से कहते आए हैं कि हमारा राष्ट्रजीवन जागृत करना बहुत आवश्यक है। समस्या की ओर किसी भी दृष्टि से देखें, किंतु आवश्यक यही है। यदि हमारी राष्ट्रभावना मजबूत नहीं होगी तो हम रूस या अमरीका से 'किसी भी कीमत' पर मित्रता करने को विवश होंगे। तब फिर से गुलामी के शिकंजे में फँसना पड़ेगा। कभी-कभी मुझे लगता है, सबको लगता होगा कि हमारे कोई नेता उसी दिशा में प्रयास तो नहीं कर रहे हैं, अन्यथा वे भविष्य के संकट के संकेत और आक्रमण की अनदेखी नहीं करते।

卐 卐 卐

१६ राष्ट्र-प्रासाद का निर्माण

(३ मार्च १६५६ को जालधर मे सघ-कार्यालय 'सस्कृति-मदिर' के गृह-प्रवेश के अवसर पर हुआ भाषण)

जिस मकान में पिछले कई वर्षों से कार्यालय चला आ रहा है, वह मकान अपने स्वामित्व की वस्तु हुई और उसका कोई विशेष दिन देखकर गृह-प्रवेश का समारभ करना है और उसमें मुझे उपस्थित रहना है, ऐसा प्रात के अधिकारियों ने कहा। उनकी इस इच्छा से मैं यहाँ आया हूँ।

अनेक स्वयसेवकों तथा अपने कार्य से स्नेह रखनेवाले अन्य बधुओं ने इस कार्य में बहुत आत्मीयता के साथ सहायता की है और कुछ बडा व अच्छा स्थान अपने कार्य के लिये प्राप्त हुआ। जिसके हृदय में सघकार्य के प्रति प्रेम है, ऐसे प्रत्येक स्वयसेवक के मन में इससे प्रसन्नता है। सामान्यत मैं भी प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ। 'सामान्य' मैंने इसलिए कहा, क्योंकि जिस प्रकार का जीवन मुझे प्राप्त हुआ है, उसने किसी भी वस्तु का सचय अच्छा नहीं माना। सघकार्य में, कार्य के निमित्त जितना सग्रह करना आवश्यक होता है, वह तो हम करते ही हैं। किसी वस्तु का सग्रह करने से मन में सुख होता नहीं, होना भी नहीं चाहिए। इसलिए ईट, पत्थर, चूने से बने भवन की प्राप्ति से प्रफुल्लित होने की आवश्यकता नहीं, ऐसा मुझे लगता है। कभी-कभी ऐसा भी लगता है कि स्थान-स्थान पर अपने कार्यकर्ताओं को ईट-पत्थर के प्रति कहीं विशेष आकर्षण तो नहीं हो जाएगा? आज यहाँ आते हुए मार्ग में इसी प्रकार के समाचार सुनने को मिले। कई स्थानों पर जो कार्यालय अपने पास थे, अब उनकी पुनर्रचना के विचार आते हैं। कई स्थानों पर उनके लिए झगडे भी खडे होते हैं। इसमें धन, मन, समय का व्यय भी होता है।

आज प्रात काल ही गृह-प्रवेश का कार्यक्रम हुआ है और अब यह विचार इसलिए रखा है कि कहीं अपना इन बातों से कुछ प्रेम तो नहीं हुआ? कोई भव्य कार्यालय है, बडा मैदान अपने हाथ में है, १०-५ सस्थाएँ चली हैं, ऐसा मोह हृदय को पकडता तो नहीं? अपने लिए इन बातों का आकर्षण नहीं रहना चाहिए। अब कोई स्वयसेवक आग्रह करता है कि बैठक के लिए छोटा-मोटा स्थान हो जहाँ बैठकें, [illegible] तो मुझे समझ में नहीं आता कि स्वयसेवक [illegible] सब

 [illegible] ३

स्वयसेवक हैं। हमने सघकार्य को अपने हाथ में लिया है। क्या हमने सघकार्य को घर से बाहर निकाल दिया है? याने सघकार्य घर में नहीं गया, अपने अत करण का सर्वप्रमुख गुण वह नहीं बना? जैसे सडक पर चार व्यक्ति दिल बहलाने के लिए मिल लेते हैं, ऐसा ही सघकार्य का भी हुआ? घर में बैठक के समय थोडी-बहुत असुविधा होती हो, तब भी क्या व्यवस्था नहीं हो सकती? ऐसा प्रत्येक स्वयसेवक को सोचना चाहिए। 'अपना घर भी सघ का कार्यालय है'— यह विचार अत्यावश्यक है। तब कार्य करने की कुछ पात्रता हमारे में आई है, ऐसा समझना चाहिए। नहीं तो सघ बाहर ही रहेगा, घर में उसका प्रवेश नहीं हो सकेगा। घर में ही प्रवेश नहीं, तो हृदय में भी नहीं।' घर गए कि शाखा की बातें भूल गए। अगर हम सोचते हैं कि अपने मकान में सघ नहीं रहना चाहिए और उसका कार्यालय अलग ही रहना चाहिए फिर तो जैसे कोढी के लिए अलग मकान बना दिया जाता है, उसको उसी में रखा जाता है, वैसे ही क्या हम भी सघकार्य को अछूता रखना चाहते हैं? इसका मतलब यह है कि हमें इसके लिए दक्ष रहकर सोचते रहना चाहिए।

भवन-निर्माण व राष्ट्र-निर्माण एक समान

अब यह मकान है, अपने लिए उपयोगी है। उसके भिन्न-भिन्न अवयव हैं, याने ईट, पत्थर, चूना आदि सब एक-दूसरे से विशिष्ट रचना से जुडे हुए हैं। यदि इन ईटों का ढेर बनाकर, उसपर चूना-लकडी और लोहा डाल दिया जाए, तो वे ढेर मात्र बने रहेंगे। उसको कोई मकान नहीं कहेगा। जब एक मकान की रचना का विचार उत्पन्न होता है तो हम उसका एक मानचित्र बनाते हैं। सामग्री इकट्ठा करके एक अत्यत उपयोगी, सुखकारक, रक्षा करनेवाले गृह का निर्माण करते हैं। यदि इस प्रकार का विचार न हो और कोई अस्थायी मकान चाहिए, तो ईट के ऊपर ईट रखकर, घटिया चूना लगाकर एक छोटा-सा मकान खडा किया जाता है। ऐसा मकान अच्छी प्रकार से रक्षा नहीं कर सकता, सुखकारक भी नहीं होता, याने उपयोगी मकान नहीं होता।

इस राष्ट्रजीवन का निर्माण कर उसकी सुदृढ रचना के लिए ऐसा ही विचार करना होगा। राष्ट्र में आज समाज ढेर के समान है। अत उन्नति हो नहीं सकती। इसकी रचना करने की आवश्यकता है। प्रत्येक ईंट अपने-अपने स्थान पर रखी जानी चाहिए। यदि कोई बेढब हो, तो उसे ठीक आकार दिया जाना चाहिए। समाज के उत्कर्षपूण जीवन के लिए

हमारा ढेर के रूप में रहना लाभदायक नहीं हो सकता। इसकी सुरचना करना आवश्यक है। हमें प्रत्येक छोटी से बडी शाखा तक अपने-आपको एक सगठन में समझना, विचारों को ठीक आकार देना और सबको सगठन का सस्कार प्रदान करना है। इन सस्कारों के फलस्वरूप सबको सूत्रबद्ध रख सकें, यह अपनी शाखा का हेतु है।

ि ि ि

१७ प्रेरक शक्ति का अभाव

(त्रिवेंद्रम, अक्तूबर १९५७)

हमारे कई लोग स्वय को हिंदू कहलाने में बहुत सकुचाते हैं। वास्तव में हिंदू होना तो अत्यत प्रतिष्ठा का विषय है। विश्व के विभिन्न लोगों का इतिहास देखें तो ज्ञात होगा कि हिंदू अत्यत प्राचीन समाज है। अतिप्राचीन समय से हमारे विद्वानों व ऋषि-मुनियों ने सत्य का प्रतिपादन किया है, उसका अनुभव किया है, जो आज के कथित प्रगत युग में भी एक वाछित लक्ष्य माना जाता है। उनकी दूरदृष्टि और सत्य को खोजने की पद्धति हमें स्तभित कर देती है।

हम यह भी जानते हैं कि हमारे श्रेष्ठ पूर्वजों ने मनुष्य-मनुष्य के बीच सद्व्यवहार के उत्तम उदाहरण कायम किए हैं। रामचद्र जी को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहकर हमारे सम्मुख आदर्श उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है। बाल्यकाल से अपने माता-पिता, वरिष्ठजन, समवयस्कों, मित्रों, पत्नी, पुत्रों, यहाँ तक कि शत्रु तक के साथ कैसा व्यवहार किया जाए, इसका आदर्श उन्होंने प्रस्तुत किया। जनता के साथ स्नेह, उनका सफलतापूर्वक सगठन करने में और सभी प्रकार के आक्रमणों को समाप्त कर हिंदू धर्म की पुनर्स्थापना का अलौकिक कार्य उन्होंने किया। सभी उनका उच्चतम आदर्श मान्य करते हैं। दुनिया में इस स्तर का कोई व्यक्ति ढूँढने पर भी नहीं मिलेगा। ऐसे समाज में, ऐसी परपरा में जन्म लेने पर तो स्वय पर गर्व होना चाहिए।

अग्रेजों ने हमें जो इतिहास पढाया उसमें कहीं भी यह नहीं बताया कि हिंदू इस देश में कभी गौरवपूर्ण, सम्मानपूण जीवनयापन करता था। जब मैं छात्र था, तब प्राचीन युग को अधकारपूर्ण युग के रूप में पढाया जाता था। ऐसे राज्य थे जिनका परस्पर कोई सबध नहीं था। एक ऐसा युग था, जहाँ केवल उलझनें ही थीं, मारपीट ही थी। मुझे स्मरण है कि

इतिहास का कुछ इस प्रकार का विभाजन था, जैसे अधकारपूर्ण युग, फिर उसके बाद मुगल काल और फिर ब्रिटिश काल। हमें ऐसा कुछ भी नहीं पढाया गया, जो हिन्दू गौरवकाल का स्मरण कराए।

इससे हीनता का, न्यूनगडता का भाव बढता गया। पिछले ३०-४० वर्षों में कुछ ऐसी स्थितियाँ बनीं कि जो कुछ आत्मविश्वास स्वाभिमान हममें शेष था, उस पर भी आघात हुआ।

मोपला विद्रोह

आप सभी जानते हैं, कौन सी स्थिति थी कि इस देश में अंग्रेजों ने शासन शुरू किया और अपनी विशिष्ट पद्धति से साम्राज्य स्थापित कर लिया। देश की देशभक्त जनता एक विदेशी शासन को सहन नहीं कर पाई और विदेशी सत्ता को हटाने की कोशिश प्रारभ की। इस प्रयास में यह अनुभव हुआ कि ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति के आगे देशभक्त बहुत कमजोर हैं। उन्हें अपनी शक्ति को बढाना होगा। यह सोचकर कुछ लोगों ने विदेशों से सहायता लेने की सोची। कुछ लोग जर्मनी गए तो कुछ अन्यान्य स्थानों पर। हमारे कुछ मान्यवर नेताओं ने तो अफगानिस्तान के अमीर को आक्रमण के लिए आमत्रण दिया। आक्रमण होने की स्थिति में आतरिक विद्रोह के द्वारा सहायता का वचन दिया। उसे यह भी वचन दिया कि अंग्रेजों के हटने के बाद उसे यहाँ का सम्राट पद दिया जाएगा।

पता नहीं, लोगों ने यह सब कैसे सोचा। मुसलमानों को लगता था कि अफगानिस्तान का अमीर यदि अंग्रेजों के स्थान पर आ जाता है तो वे पुन एक बार यहाँ सत्ताधीश हो सकेंगे। इस प्रकार की विचारधारा से ही मलबार में मोपला विद्रोह ने जन्म लिया।

लेकिन हमारे देश के कम्युनिस्ट नेता इसे 'किसान-विद्रोह' के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं, विशेषकर तब से, जब से केरल में वर्तमान शासन आया है। हमारे कुछ मित्र जो स्वय को कम्युनिस्ट कहते हैं, उनकी यह धारणा बिल्कुल गलत है। इतिहास के तथ्य की ओर वे ध्यान दें। यह विद्रोह अत्यत सोच-समझकर किया गया था। एक मुस्लिम व्यक्ति को दिए गए आश्वासन की पूर्ति हेतु इसका जन्म हुआ था। इसी कारण स्थानीय मुसलमानों के दिमाग में यह आया कि वे पुन इस देश के शासक बनेंगे। उन्हें देश के बाहर से शस्त्र भी मिले। परतु उन्हें कल्पना नहीं थी कि अंग्रेज अधिक चतुर हैं। उन्होंने इस आदोलन के सूत्रधारों को पहले ही दबोच लिया। यह

जानकारी नहीं रहने से, दक्षिण के ये मुसलमान मित्र विद्रोह में उठ खडे हुए।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। पर हमारे केरल के कम्युनिस्ट नेतागण इस पर ध्यान नहीं देंगे, क्योंकि ऐसा करने पर केरल में सत्ता बनाए रखने के लिए ईसाई और मुसलमानों की युति तोडनी होगी। मोपलाओं को जीतकर उन्होंने यह युति तोडने की कोशिश की। मोपला विद्रोह को 'किसानों का विद्रोह' कहकर उन्हें जीतने की कोशिश की।

विकृत विचारों का परिणाम

पर हम जिस विषय की चर्चा कर रहे हैं, यह उनका मुख्य मुद्दा नहीं है। हमारे कुछ लोग कहते हैं कि अपने हितसबधों की रक्षार्थ सभी को बाहर से सहायता नहीं मिल पाई, इसलिए उन्होंने देश में रहनेवाली कुछ जातियों का एक सयुक्त मोर्चा बनाने का प्रयास किया। इसमें योजनापूर्वक किसी ने हिदू का उल्लेख तक नहीं किया। क्योंकि यह मान्य था कि हिदू तो यहीं के हैं। यह उनकी मातृभूमि है। अनतकाल से वह यहीं रह रहे हैं। इतिहास का महज पहला पृष्ठ ही 'हिदू इस भूमि के पुत्र हैं'— इसी के साथ खुलता है। अत प्रत्यक्ष रूप से हमारा उल्लेख नहीं किया गया। उल्लेख था मुसलमान, ईसाई, पारसी और यहूदी का। यहूदी बहुत थोडी सख्या में हैं, अत उनके बारे में अधिक नहीं कहा गया। उनपर विचार भी नहीं हुआ। पारसी प्राचीन समाज है। यद्यपि अल्पसख्या में हैं, पर शिक्षित है, धनी है, उद्योगशील है और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात है कि देशप्रेमी हैं। वे यह मान्य करते हैं कि उनका सरक्षण करनेवाली यह भूमि है। इसी के विकास के लिए ये कृतसकल्प हैं। इसके गौरव की रक्षा के लिये तत्पर हैं। शत प्रतिशत वे राष्ट्रीय हैं। उनसे किसी को कोई कष्ट नहीं है। उस समय के शीर्पस्थ नेताओं में उनमें से कुछ रहे हैं। दादाभाई नौरोजी फिरोजशाह मेहता ये सभी महापुरुष महान देशभक्त थे। उन्हें अपना बनाने का कोई प्रश्न ही नहीं आता। वे तो अपने ही थे।

फिर बचे ईसाई और मुसलमान। सन् १८५७ का स्वातत्र्य युद्ध कुचलने के लिए ईसाई मिशनरी सैन्य खडा करते रहे, ताकि अग्रेजों की सहायता की जा सके। पर जब काग्रेस के नाम पर आदोलन खडा हुआ तो उन्होंने (ईसाइयों ने) सोचा कि अपने असली रग में सामने आना ठीक नहीं होगा। इस प्रकार एक ओर वे अग्रेजों (विदेशी सत्ता) के साथ थे, तो दूसरी ओर देशभक्तों के स्वाधीनता सग्राम में बाधक बनने से बचते रहे।

उनमें से कई ने तो उसमें शामिल होने का वैसा आभास भी निर्माण किया था। उस समय यह मान लिया गया कि ईसाई चूँकि शिक्षित हैं, सुसस्कृत हैं, लोकतत्र से परिचित हैं, इसलिए अपने स्वाधीनता सग्राम में सहयोग देंगे और राष्ट्रभक्तों के मार्ग की बाधा नहीं बनेंगे।

फिर सवाल रहा मुसलमानों का। मुसलमानों का अपना इतिहास है। वे यहाँ आक्रामक बनकर आए और अपनी सत्ता कायम की। वे आज भी अपना साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखते हैं। एक तो तथ्यों को यथारूप स्वीकार करना चाहिए, वह यह कि वे आक्रामक हैं। उन्होंने हमारे मंदिर ध्वस्त किए बलात् धर्मातर किया। हर चीज, जो हिंदू की है, इस भूमि की है, उसका विरोध करते रहे। इस इतिहास को हमें समझना होगा। क्या इन लोगों को पिछला सब कुछ भुलाकर एकत्र आने के लिए कहा जाए? उन्होंने इस देश पर आक्रमण किया था। यह आक्रमण की स्थिति अब नहीं रही, क्या यह वे मान्य करते हैं? क्या वे यह स्वीकार करते हैं कि इस देश में रहना है तो इस देश की जो परपरा है, जो यहाँ का राष्ट्रीय प्रवाह है, उससे एकरूप होकर, एकात्म भाव से यहाँ रहना होगा? यदि यह निर्णय नेताओं और देशभक्तों द्वारा पहले लिया गया होता, तो आज की दुर्भाग्यपूर्ण घटनाएँ नहीं हुई होतीं। पर यह नहीं हुआ, सभवत इसलिए भी कि एक तीसरी शक्ति भी यहाँ थी–अग्रेज। वह मुसलमानों को अपना बनाना चाहती थी। उनमें फूटपरस्त भावनाएँ भडकाती रही। उनमें पुन साम्राज्य प्राप्त करने की आकाक्षा जागृत करती रही। कम से कम पृथक राज्य के स्वप्न दिखाती रही।

इस प्रकार मुसलमानों की हर तरह चापलूसी कर उनका स्तुतिगान कर, किसी भी रीति से क्यों न हो, उन्हें अपनी ओर खींचने की अग्रेजों की कोशिश रही।

अडिग रहे

ऐसी स्थिति में कुछ लोग मुसलमानों को अपने साथ लाने के लिए उनका लागूलचालन करने लगे। अपना इतिहास भुलाकर, अपने वीर पुरुषों को विस्मृत कर, स्वय को हिंदू न कहकर स्वाभिमान शून्य होकर हमारे नेता कहते हैं स्वय को हिंदू मत कहो। इससे मुसलमान लोगों में बेचैनी पैदा होती है। हमारे नेता तो यहाँ तक कह गए हैं कि चूँकि हिंदू-मुसलमान की एकता आवश्यक है सर्वाधिक सरल और निकट का मार्ग यही है कि सभी

हिंदू, मुसलमान बन जाएँ। मैं उस बैठक में था, जहाँ यह बात कही गई थी। नेताओं द्वारा यहाँ तक कहा जा रहा था कि स्वराज्य प्राप्ति के लिए, हिन्दू-मुसलमानों की एकता एक पूर्वशर्त है।

जब यह बात कही गई, उसी क्षण सारा आत्मविश्वास, स्वाभिमान, आत्मसम्मान विदीर्ण हो गया। किसी बाहरी आक्रमण से हिंदू समाज की इतनी हानि नहीं हुई, जितनी हिंदू नेताओं के इस कथन से हुई। ३०-४० करोड़ हिंदुओं का अस्तित्व नकारने से हुई। मैं समझता हूँ कि उस दिन हिंदू समाज को अपार क्षति पहुँची। समाचार-पत्रों में यह सब पढ़कर मुझे बेहद पीड़ा हुई। विशेषरूप से इसलिए अधिक क्योंकि मुझे ज्ञात था कि सरहदी सूबे से पश्चिमी सीमा क्षेत्र में अटक के पास, तत्कालीन भारत की सीमा और अफगानिस्तान की सीमा के बीच के तटस्थ क्षेत्र में रहनेवाली घुमन्तु जाति के लोगों ने एक सात-आठ वर्ष की अंग्रेज कन्या का जब अपहरण किया तो सारी ब्रिटिश शक्ति सक्रिय हो चुकी थी। वो यह नहीं कह रहे थे कि हमारी बच्ची लौटा दो। हम उसके ऐवज में कुछ रकम देने को तैयार हैं। उन्होंने सीधे बच्ची की माँग की और कहा कि अपहरणकर्ताओं को तहस-नहस कर डाला जाएगा। सारे शक्ति केंद्र सक्रिय हो उठे। एक-एक गाँव का एक-एक घर नष्ट किया गया। हजारों को कत्ल किया। भयकर आतक फैला दिया।

सात-आठ वर्ष की एक बच्ची की इज्जत का प्रश्न था। आत्माभिमान का प्रश्न था। और जिन लोगों का आत्माभिमान खो चुका है, वे कहते हैं कि छोटी बच्ची को लेकर क्यों परेशान होते हो? हमारे लोगों का यह कितना पतन है? लोग अपनी पहचान भूल गए स्वाभिमान भूल गए हैं। स्वय के नाम पर लज्जित हैं। अपनी वास्तविकता का परिचय देने में भी सकुचाते हें। ऐसे लोगों का निश्चित रूप से कोई भविष्य नहीं होगा। ऐसे लोगों पर किसी न किसी अहिदू का ही आधिपत्य होगा। हम यह अनुभव से जानते हैं कि पिछले हजार-बारह सौ वर्षो से यह अहिदू और कोई नहीं, मुसलमान ही रहा है। उसके बाद दूसरा अहिन्दू अग्रेज आया और अब जो हैं, वे हिदू है पर स्वय को हिदू नहीं मानते।

आज के सत्ताधीश अपने आपको 'धर्मनिरपेक्ष' कहते हें। वे इस तथ्य को विस्मृत कर रहे हैं कि उनका भी गौरवशाली इतिहास है श्रेष्ठ परपरा रही हे, जिसके आधार पर भविष्य उज्ज्वल होता हे। ऐसी स्थिति

में हमारा कर्तव्य है कि भय की इस भावना को हमें मिटाना होगा। दुनिया के सम्मुख खड़े होकर गर्व से कहना होगा 'मैं हिंदू हूँ।' यह कहने में कोई संकोच नहीं हो। दुनिया यदि कहे कि हिंदू समाज में बहुत से दोष हैं, तो कहना चाहिए कि दोष हों या न हों, यह हमारा अपना विषय है। हमें किसी का हस्तक्षेप मंजूर नहीं। हमारे काम में नाक मत डालो। अपने उत्थान में, अपने विकास में हमें आपके हस्तक्षेप की जरूरत नहीं है। आपकी स्वार्थपूर्ण सलाह भी हम नहीं चाहते। यह स्वाभिमानपूर्ण व्यवहार, जो हर प्रकार की न्यूनगंडता से रहित हो, प्रत्येक के हृदय में उत्पन्न करना है। यह पवित्र भाव प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में जागृत करना है कि वह यह कह सकें कि हम हिंदू हैं और हिंदू ही रहेंगे। कोई कहते हैं कि यह विचार, सांप्रदायिक है, संकुचित है। तब भी उसकी चिंता न करें। कहने का मतलब यह है कि लोग कहेंगे कि आप एक संकुचित विचारधारा पर काम कर रहे हैं, सांप्रदायिक कार्य कर रहे हैं। उनसे कहना होगा कि आप जो कुछ भी कहना चाहें कहें, परंतु हम जानते हैं कि यह हमारा हिंदू-समाज है, इसे जागृत करना है। गौरव के शिखर तक पहुँचाना है। जन्म से ही यह हमारा दायित्व है। इसके लिए हमें कार्य करना ही है।

राष्ट्रीय समाज हिंदू

मेरी समझ में नहीं आता कि हमें सांप्रदायिक क्यों कहा जाता है? यहूदी पारसी, ईसाई, मुसलमानों का सहयोग स्वाधीनता संग्राम में पाना भी है तो हम यह क्यों भूलते हैं कि हिंदू यहाँ का राष्ट्रीय समाज है। बाकी सभी बाहरी लोग हैं। वे यहाँ रहते हैं, इसलिए हमें उनकी सहायता लेनी चाहिए ताकि अंग्रेजों के विरूद्ध संयुक्त मोर्चा बनाया जा सके और उन बाहरी लोगों का अनुचित लाभ अंग्रेज नहीं उठा पाएँ– इसलिए यह जरूरी है, यह तो अत्यंत स्पष्ट है। आप लोगों को स्मरण होगा कि कुछ लोगों ने हमारे प्रधानमंत्री से पूछा था कि वे केवल हिंदुओं के लिए ही कानून क्यों बनाते हैं? मुसलमानों के लिए क्यों नहीं? विवाह विषयक, उत्तराधिकार विषयक जो भी कानून बने वे केवल हिंदुओं के लिए हैं। उत्तर मिला वे हमारे अपने हैं। आप समझ गए होंगे कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। पंडित नेहरू, जो यह कहते हैं कि दुर्भाग्यवश जन्म से वे हिंदू हैं, उन्हें भी कभी-कभी इसकी समझ आ जाती है।

आखिर राष्ट्र क्या है? क्या इसकी कोई परिभाषा है? संप्रदाय क्या

है? क्या इसकी कोई व्याख्या है? मैं तो खुलेआम कहता हूँ कोई सामने आकर इसकी व्याख्या बताए। दस साल बीत गए, पर किसी ने भी यह साहस नहीं दिखाया।

क्रांतिकार्य को ही लें। कैसे थे वे लोग? कैसा था उनका बलिदान? क्या जबर्दस्त ताकत थी उनकी? पर उनके सर्वोत्तम लक्ष्य साकार नहीं हो पाए। उनकी कई योजनाएँ थीं। अत्यंत कुशलता से उनका कार्य चलता था। पर किसी न किसी प्रकार कोई देशद्रोही उनका कार्य बिगाड़ जाता था और हाथ आती थी केवल असफलता। जब मनुष्य के सम्मुख इतना अपयश रहता है तो वह हताश हो जाता है। वह आशा की किरण खोजने लगता है। क्रांति कहाँ सफल रही, इसकी खोज वह करता है। उसकी नकल करना चाहता है। उस मार्ग पर चलकर कुछ सफलता प्राप्त भी कर लेता है। प्रथम महायुद्ध के बाद रशिया में क्रांति सफल रही थी। हालाँकि घटनाक्रम कुछ अलग था। परंतु क्रांतिकारी उन घटनाक्रमों में अंतर का अध्ययन करने का समय नहीं ढूँढ पा रहे थे। वे यही जानते थे कि वहाँ क्रांति हुई है। हम यहाँ भी क्रांति चाहते हैं। वहाँ यश मिला है, इसलिए हमें उसका ही अनुसरण करना चाहिए। वे यह समझ ही नहीं पाए कि वह अंतर्गत क्रांति थी। रूसियों के बीच आपसी क्रांति। अंतर्गत विषय होने से ही, सारी जनता ने साथ दिया था। यहाँ अंग्रेज थे। उस नीति को यहाँ इतनी लोकप्रियता नहीं मिल सकती, अपेक्षित यश प्राप्त नहीं हो सकता, यह तथ्य वे भूल गए। इस मूलभूत अंतर को वे समझ नहीं पाए। वहाँ सफलता मिली तो उसका अनुकरण करने की इच्छा हुई। हमारे प्राचीन संस्कृत साहित्य में कहा गया है कि 'जहाँ सफलता होती है, उसे निर्दोष माना जाता है।' तो उन्होंने इसे भी दोषरहित माना। जब हम किसी की प्रशंसा करते हैं, तो केवल घटना की ही नहीं करते, उसके लिए जिम्मेदार व्यक्तियों की भी सराहना करते हैं। यही नहीं तो उनकी विचारधारा की भी प्रशंसा करते हैं। इस प्रकार सफल क्रांति की स्तुति, क्रांति के नेताओं और उनकी विचारधारा की स्तुति में बदलती गई। अपने देश के कई क्रांतिवीरों को हमने कम्युनिस्ट बनते देखा। उनमें से अपवाद छोड़ दें तो कइ ने अपने कार्य की दिशा भी छोड़ दी। वे आज भी हैं, अपने ढंग के अत्यंत प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। पर उनमें कितना बड़ा परिवर्तन हुआ। एक समय के उत्कट देशभक्त आज रूस के आत्यंतिक प्रेमी बन गए। वे 'महान देशभक्त' थे पर अब 'पर-देशभक्त' हो गए। उसका एक ही कारण था कि अपने राष्ट्रजीवन पर आधारित प्रखर,

सकारात्मक दृष्टि नहीं थी। केवल विरोध भाव और दूसरों से प्रभावित विचारधारा रहने से वे रूस और रूसी प्रभुत्व के प्रशंसक बन गए। अपने देश को दासता के बंधन से मुक्त करने के लिए जिन्होंने संघर्ष किया, वे ही आज अपनी मातृभूमि को रूस के जाल में डाल रहे हैं।

प्रेरक शक्ति के अभाव में विदेशी विचारधारा का अनुसरण

हमारी इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थिति भी ऐसी ही है। वे अंग्रेजों को हटाने के लिए तो सिद्ध थे, परंतु कोई ठोस-सकारात्मक आदर्श उसके सामने नहीं था। वे भूल गए हैं कि वे हिंदू हैं। यही नहीं तो यह प्रचार भी कर रहे हैं कि 'हम हिंदू हैं, यह भुला दो। इधर-उधर के लोगों को गले लगाने का प्रयास करते रहे हैं। हमने देखा कि जब वास्तव में अंग्रेज गए तो कांग्रेस के प्रमुख नेता भी स्वयं को भारी कठिनाई में पाते थे। क्योंकि अब तक लोगों को प्रेरणा देने के लिए उनके पास मुद्दा था कि 'इन अंग्रेजों को यहाँ से हटाना है'। यह विरोध का भाव ही उनकी प्रेरणा थी। जब वे परिदृश्य से हट गए, फिर जनता को प्रेरणा देने के लिए क्या बचा? विशाल योजनाएँ सोची गई, पर उन पर अमल करने के लिये जनता में प्रेरणा ही नहीं थी। चारित्र्य का अभाव सर्वदूर दिखाई दे रहा था। मुझे एक घटना का स्मरण है। एक विभाग-प्रमुख ने भारी आर्थिक घपला किया था। उसे हटाकर दूसरा वहाँ नियुक्त किया गया। उसने भी वही किया। तीसरा लाया गया। घटनाक्रम वही दुहराया गया। सब एक से बढ़कर एक थे। इसके पीछे जनता के धन का उपभोग अपने लोगों को कराने की मनीषा थी।

इसका अर्थ यही है कि शीर्षस्थ लोग ही भ्रष्ट हैं। कोई चारित्र्य नहीं। भ्रष्टाचार निर्मूलन विभाग है। अब एक और विभाग स्थापित किया जा रहा है जो इस भ्रष्टाचार निर्मूलन विभाग का भ्रष्टाचार दूर करेगा।

समाजवादी तानाशाही

उन्होंने समाजवादी राज्य या समाजवादी पद्धति, जो कुछ भी कहें, सामने लाया। इसका काफी शोर मचाया गया। यह पद्धति दुनिया में कभी भी, कहीं भी सर्वोत्तम प्रमाणित नहीं हुई है। असल में इतिहास तो कुछ अलग ही है। यदि समाजवाद एक ही देश की सीमा में सीमित रहता है तो वह हिटलर या मुसोलिनी का समाजवाद हो जाता है और जब सीमाएँ लाँघता है तो रूसी अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्यवाद बनता है। ये दोनों प्रकार क्या

कहर ढाते रहे हैं, हम देख चुके हैं। जर्मनी में यह क्रूर पद्धति का समाजवाद रहा। यहूदियों को निकाल दिया गया। विरोधियों को कुचला गया। रूस ने भी यही किया। अन्य देशों में क्या हो रहा है हम देख रहे हैं। इसे लाने का कारण यही है न कि देश की सत्ता जिनके हाथों में है, उन्हें बेरोकटोक तानाशाही अधिकार मिलें? समाजवाद की आड़ में सत्तारूढ़ दल या सत्तारूढ़ नेता तानाशाही की ओर क्रमश बढ़ रहे हैं। उत्पादन के सारे साधन अपने हाथ में ले रहे हैं। मतलब, देश की जनता उनकी आज्ञाधारी बनी रहे। अपनी रोज की रोटी के लिए भी वह उनकी दया पर निर्भर रहेगी। विचार व कार्य का कोई स्वातत्र्य नहीं। पशुओं-सी गति होगी। विरोधियों को वे अपने मार्ग से हटा रहे हैं।

९-१० वर्ष पूर्व राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ पर प्रतिबध लगाया गया था। कहा गया कि महात्मा गाँधी की हत्या के लिए जो वातावरण बना वह सघ के कारण था। बड़ा विचित्र कारण था। कोई यह भी कह सकता है कि कांग्रेस ने ऐसा वातावरण बनाया, जिससे देश का विभाजन होने से उत्पन्न हुआ रोष ही महात्मा गाँधी की हत्या के लिए जिम्मेदार है। यह अधिक तर्कसगत लगता है। पर इस सगठन को कुचलने के लिए उन्हें तो कोई कारण ढूँढना ही था। मेरे पास जीवत प्रमाण हैं कि वो हमें कुचलना चाहते थे। महात्मा गाँधी की हत्या तो उन्हें एक बहाना दे गया, सरकारी रिपोर्ट भी यही कहती है। हर कोई यही कह रहा है।

एक पार्टी है जनसघ। हाल ही में बनी है। देश के कुछ भागों में वह कुछ लोकप्रिय भी हुई है। पजाब और कुछ अन्य स्थानों पर उसे लोकप्रियता भी मिली है। आर्य समाजियों का पजाब में कोई आदोलन चल रहा है और जनसघ के नेता जेलों में डाले जा रहे हैं। उन्हें यह कहकर कोडे मारे जा रहे हैं कि तुम जनसघ के हो, तुम हिंदी के समर्थक हो, कांग्रेस के विरोध में हो, इसलिए भुगतो। जर्मनी व रूस में विरोधियों के विचार-स्वातत्र्य, अभिव्यक्ति-स्वातत्र्य को कुचलनेवाली जो समाजवादी पद्धति अपनाई गई थी, वही यहाँ भी लागू हो रही है। क्या इसीलिए समाजवादी व्यवस्था उन्हें चाहिए? मैं यह निश्चित कहूँगा कि यह एक ऐसा आदर्शवाद है, जो व्यक्तियों के विकास में योगदान नहीं दे सकता, कोई प्रेरणा नहीं दे सकता। इसीलिए राष्ट्रजीवन में भी राष्ट्रीयता का बोध नहीं करा सकता। अपनी स्वय की कोई दृष्टि न होने के कारण यह नारा अपनाया गया। हमारे सस्थापक ने इस भवितव्य को अच्छी तरह समझा था। उन्होंने कहा

था कि इस प्रतिक्रियावादिता को छोडो। हिंदू से प्रेम करो, क्योंकि हम हिंदू हैं। मातृभूमि से प्रेम करो, क्योंकि हम उसकी सतान हैं।

हिंदू राष्ट्रवाद को साकार करना होगा

इतने सारे सकट सम्मुख रहते क्या विघटनवाद की केवल चर्चा करना उपयुक्त होगा? कदापि नहीं। क्या हम अपनी राष्ट्रीय चेतना को विस्मृत कर दें? क्या हम बाहरी प्रवाह में स्वय को बह जाने दे? हमें तो अपने राष्ट्र का सामर्थ्य अपने बल पर स्थापित करना हे। कभी-कभी हम कहते हैं कि सरकार सहायतार्थ आएगी। पर मैं किसी पर निर्भर रहना नहीं चाहता। सरकारें आएगी और जाएँगी पर जनता तो यही रहेगी। अत यह आवश्यक है कि एक सगठित, स्थायी स्वरूप बना रहे।

१८ नींव के पत्थर बने

(बगलौर, नवबर १९५७)

बगलौर एक श्रेष्ठ विद्या-केंद्र है। हमारे कार्यकर्ताओं ने बताया कि बुद्धिमान एव पूर्णत विकसित विचारों के विद्यार्थीगण यहाँ उपस्थित रहेंगे, यह जानकर मैं यहाँ आया हूँ। शिक्षा-केंद्र होने के कारण वह राष्ट्रोत्थान का प्रेरणा एव मार्गदर्शक केंद्र होगा यह अपेक्षा है।

मैं प्रारभ एक ऐसे व्यक्ति के विषय से करूँगा जो साधुपुरुष हैं तथा एक शिक्षा-सस्था के प्रमुख भी हैं। उस व्यक्ति के प्रति मुझे बहुत आदर है। उन्होंने अपना सपूर्ण जीवन दो बातों के लिये समर्पित किया है- परमसत्य ईश्वर का साक्षात्कार और मानवसेवा। वे केवल आध्यात्मिक विषयों के बारे में ही नहीं बोलते, किंतु अपने दैनदिन व्यवहार, परिस्थितियाँ तथा शिक्षा क्षेत्र एव राजनीति की विविध घटनाओं का परामर्श भी लेते हैं। इन दिनों अनेक लोगों की चर्चा का विषय एक ही रहा हे, वह है राजस्थान के छात्रों की हडताल। उन साधु महात्मा ने मुझे बताया कि राजनैतिक तथा सार्वजनिक क्षेत्र के अनेक नेतागण विगत ५० वर्षो से निरतर यही एक बात कहते आए हैं कि विद्याविभूषित तरुण वर्ग ही राष्ट्र के आधारस्तभ है। परिणाम यह हुआ कि अपरिपक्व अनुभव के कारण विद्यार्थियों में अहमन्यता का सचार हुआ हे, जो सर्वथा अनुचित है। वस्तुत प्रत्येक व्यक्ति के सामने हमें सेवा का आदर्श रखना चाहिए। सेवा का अर्थ है अहकार

कहर ढाते रहे हैं, हम देख चुके हैं। जर्मनी में यह क्रूर पद्धति का समाजवाद रहा। यहूदियों को निकाल दिया गया। विरोधियों को कुचला गया। रूस ने भी वही किया। अन्य देशों में क्या हो रहा है हम देख रहे हैं। इसे लाने का कारण यही है न कि देश की सत्ता जिनके हाथों में है, उन्हें बेरोकटोक तानाशाही अधिकार मिलें? समाजवाद की आड में सत्तारूढ दल या सत्तारूढ नेता तानाशाही की ओर क्रमश बढ रहे हैं। उत्पादन के सारे साधन अपने हाथ में ले रहे हैं। मतलब, देश की जनता उनकी आज्ञाधारी बनी रहे। अपनी रोज की रोटी के लिए भी वह उनकी दया पर निर्भर रहेगी। विचार व कार्य का कोई स्वातत्र्य नहीं। पशुओं-सी गति होगी। विरोधियों को वे अपने मार्ग से हटा रहे हैं।

९-१० वर्ष पूर्व राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ पर प्रतिबध लगाया गया था। कहा गया कि महात्मा गाँधी की हत्या के लिए जो वातावरण बना वह सघ के कारण था। बडा विचित्र कारण था। कोई यह भी कह सकता है कि काग्रेस ने ऐसा वातावरण बनाया, जिससे देश का विभाजन होने से उत्पन्न हुआ रोष ही महात्मा गाँधी की हत्या के लिए जिम्मेदार है। यह अधिक तर्कसगत लगता है। पर इस सगठन को कुचलने के लिए उन्हें तो कोई कारण ढूँढना ही था। मेरे पास जीवत प्रमाण हैं कि वो हमें कुचलना चाहते थे। महात्मा गाँधी की हत्या तो उन्हें एक बहाना दे गया, सरकारी रिपोर्ट भी यही कहती है। हर कोई यही कह रहा है।

एक पार्टी है जनसघ। हाल ही में बनी है। देश के कुछ भागों में वह कुछ लोकप्रिय भी हुई है। पजाब और कुछ अन्य स्थानों पर उसे लोकप्रियता भी मिली है। आर्य समाजियों का पजाब में कोई आदोलन चल रहा है और जनसघ के नेता जेलों में डाले जा रहे हैं। उन्हें यह कहकर कोडे मारे जा रहे हैं कि तुम जनसघ के हो, तुम हिंदी के समथक हो, काग्रेस के विरोध में हो, इसलिए भुगतो। जर्मनी व रूस में विरोधियों के विचार-स्वातत्र्य, अभिव्यक्ति-स्वातत्र्य को कुचलनेवाली जो समाजवादी पद्धति अपनाई गई थी, वही यहाँ भी लागू हो रही है। क्या इसीलिए समाजवादी व्यवस्था उन्हें चाहिए? मैं यह निश्चित कहूँगा कि यह एक ऐसा आदर्शवाद है, जो व्यक्तियों के विकास में योगदान नहीं दे सकता, कोई प्रेरणा नहीं दे सकता। इसीलिए राष्ट्रजीवन में भी राष्ट्रीयता का बोध नहीं करा सकता। अपनी स्वय की कोई दृष्टि न होने के कारण यह नारा अपनाया गया। हमारे सस्थापक ने इस भवितव्य को अच्छी तरह समझा था। उन्होंने कहा

था कि इस प्रतिक्रियावादिता को छोडो। हिंदू से प्रेम करो, क्योंकि हम हिदू हैं। मातृभूमि से प्रेम करो, क्योंकि हम उसकी सतान हैं।

हिंदू राष्ट्रवाद को साकार करना होगा

इतने सारे सकट सम्मुख रहते क्या विघटनवाद की केवल चर्चा करना उपयुक्त होगा? कदापि नहीं। क्या हम अपनी राष्ट्रीय चेतना को विस्मृत कर दें? क्या हम बाहरी प्रवाह में स्वय को बह जाने दें? हमें तो अपने राष्ट्र का सामर्थ्य अपने बल पर स्थापित करना है। कभी-कभी हम कहते हैं कि सरकार सहायतार्थ आएगी। पर मैं किसी पर निर्भर रहना नहीं चाहता। सरकारें आएगी और जाएँगी पर जनता तो यही रहेगी। अत यह आवश्यक है कि एक सगठित, स्थायी स्वरूप बना रहे।

ॐ ॐ ॐ

१८ नींव के पत्थर बने

(बगलौर, नवबर १९५७)

बगलौर एक श्रेष्ठ विद्या-केंद्र है। हमारे कार्यकर्ताओं ने बताया कि बुद्धिमान एव पूर्णत विकसित विचारों के विद्यार्थीगण यहाँ उपस्थित रहेंगे, यह जानकर मैं यहाँ आया हूँ। शिक्षा-केंद्र होने के कारण वह राष्ट्रोत्थान का प्रेरणा एव मार्गदर्शक केंद्र होगा यह अपेक्षा है।

मैं प्रारभ एक ऐसे व्यक्ति के विषय से करूँगा, जो साधुपुरुष हैं तथा एक शिक्षा-सस्था के प्रमुख भी हैं। उस व्यक्ति के प्रति मुझे बहुत आदर है। उन्होंने अपना सपूर्ण जीवन दो बातों के लिये समर्पित किया है- परमसत्य ईश्वर का साक्षात्कार और मानवसेवा। वे केवल आध्यात्मिक विषयों के बारे में ही नहीं बोलते, किंतु अपने दैनदिन व्यवहार, परिस्थितियाँ तथा शिक्षा क्षेत्र एव राजनीति की विविध घटनाओं का परामर्श भी लेते हैं। *इन दिनों अनेक लोगों की चर्चा का विषय एक ही रहा है वह है राजस्थान* के छात्रों की हडताल। उन साधु महात्मा ने मुझे बताया कि राजनैतिक तथा सावजनिक क्षेत्र के अनेक नेतागण विगत ५० वर्षो से निरतर यही एक बात कहते आए हैं कि विद्याविभूषित तरुण वर्ग ही राष्ट्र के आधारस्तभ है। परिणाम यह हुआ कि अपरिपक्व अनुभव के कारण विद्यार्थियों में अहमन्यता का सचार हुआ है, जो सर्वथा अनुचित है। वस्तुत प्रत्येक व्यक्ति के सामने हमें सेवा का आदर्श रखना चाहिए। सेवा का अथ है अहकार

का नाश। सेवाधर्म ही हमारे स्वभाव का अगभूत गुण होना चाहिए। यही बात उन महात्मा ने कही।

आधारस्तभ नहीं आधारशिला

लोक-कल्याण तथा लोगों की परिस्थिति में सुधार लाना ही मिशन का लक्ष्य रहेगा, यह बात सुनकर परमहस श्रीरामकृष्ण बोले, 'लोगों की चिता करनेवाले आप कौन हैं? आपका धर्म है केवल उनकी सेवा करना। कारण, वे सब साक्षात् नारायण के रूप हैं।' इसका अर्थ यह हुआ कि नि स्वार्थ सेवा यह है, जहॉ अहकार को कोई स्थान नहीं हो। हमें ऐसा आदर्श निर्माण करना है। अहमन्यता ही विनाश की पहली सीढी है। मैं यही बात अपने तरीके से कहने आया हूँ कि हमें आधारस्तभ नहीं, राष्ट्रप्रासाद की नींव के पत्थर बनना चाहिए। नींव का पत्थर अदृश्य रहता है, उसका आकार भले ही सुदर न हो, किंतु वह प्रासाद का प्रमुख आधार होता है। यदि वह हलचल करेगा, दुर्बल होगा तो पूरा प्रासाद गिर जाएगा। प्रासाद के सौध तथा मध्यवर्ती घुमटों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण नींव का पत्थर होता है। उसमें केवल स्वय को मिटा देने की कामना रहती है। राष्ट्रसेवा में समर्पित, नि स्वार्थ, अनाम जीवन ही लोगों को सच्चा मार्गदर्शन कर सकेगा। केवल उपदेश देने से तथा नेता बनकर घूमने से यह कार्य असभव है।

'भिक्षा देहि' वृत्ति त्याज्य है

राजस्थान के छात्रों के आदोलन का प्रमुख विषय था— शिक्षा-शुल्क की वृद्धि का विरोध। स्वतत्र देश में शिक्षा नि शुल्क होनी चाहिए—यह बात चीन तथा कश्मीर का उदाहरण देते हुए कही गई। पर नि शुल्क शिक्षा रूस एव चीन जैसे एकतत्री तानशाही देश में ही सभव हे। लेकिन क्या आप तानाशाही चाहेंगे? अपना स्वतत्र व्यक्तित्व खोना चाहेंगे? किसी ने कश्मीर में एम ए तक शिक्षा नि शुल्क होने की बात कही है। लेकिन वे केंद्र शासन से करोडों रुपयों की लूट करके नि शुल्क शिक्षा दे रहे हैं। पर प्रचार यह है कि कश्मीर सरकार नि शुल्क शिक्षा देती हे। यह तो ऐसी बात हुई मुझ जैसा कोई फकीर ग्राम-भोजन अथवा सहस्रभोजन के लिए आए और कहने लगे कि मैं ही सब लोगों को खिला रहा हूँ।

अपना दृष्टिकोण क्या होना चाहिए इस विषय में मै कुछ उदाहरण देता हूँ। महाराष्ट्र के विख्यात विद्वान श्री रानडे जी का ही उदाहरण लें।

उनका बचपन अत्यंत दरिद्र अवस्था में गुजरा। पाँच घरों में 'मधुकरी' (भिक्षा) माँगकर वे अपना पेट भरते थे और देवालय में बैठकर वहाँ के दीपक के उजाले में अध्ययन करते थे। कठोर परिश्रम से ही वे बड़े हुए व न्यायमूर्ति बनें।

बंगाल के श्रेष्ठ विद्याशास्त्री श्री ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने मैट्रिक होने के बाद नौकरी कर अपना महाविद्यालयीन अभ्यास पूरा किया। स्वामी रामतीर्थ, जिनके पूर्वाश्रम का नाम तुलसीराम था, ने उपजीविका के अभाव के कारण संन्यस्त जीवन को स्वीकार नहीं किया था। वे गणित विषय के प्राध्यापक थे। अपना व्यवसाय त्यागकर वे साधु बने थे। अत्यंत निर्धन परिवार में जन्म होने के कारण उनका बचपन अत्यंत अभाव में बीता था। उस वक्त की सामाजिक प्रथा के अनुसार उनका बालविवाह हुआ था। पिता चाहते थे कि मैट्रिक होने के बाद वे सरकारी नौकरी कर अपने परिवार का पालन-पोषण करें। इस विषय को लेकर उनकी अपने पिता से खटपट हुई। आज के विद्यार्थियों के समान पिता-पुत्र का झगड़ा नहीं था। वह आदर्श के लिए था। वे उच्च शिक्षा ग्रहण करना चाहते थे। पिता-पुत्र दोनों अपनी बात पर अडिग थे। रुष्ट पिता ने उन्हें घर से निकल जाने को कहा। पिता को साष्टांग प्रणिपात कर वे घर से निकलने लगे। तब पिता ने कहा— 'अपनी पत्नी को भी साथ ले जाओ।' उस वक्त वे १५ वर्ष के थे और उनकी पत्नी ८ वर्ष की थी। एक अत्यंत छोटे कमरे में ४ आने प्रतिमाह किराए पर वे सपत्नीक रहने लगे। मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने के कारण एक संस्था में शिक्षक की नौकरी करते हुए संस्कृत विषय में एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करते हुए वे अपना तथा पत्नी का खाना स्वयं बनाते थे। कोई भिखारी की पत्नी न कहे, इसलिए उन्होंने पत्नी को मायके जाने की सम्मति नहीं दी। आज्ञाकारी पत्नी ने भी अपना पत्नीधर्म निभाया। ऐसी थीं ये महान विभूतियाँ। पत्नी की सम्मति से ही दो पुत्रों का भार उसे सौंपकर वे संन्यासी हुए थे।

हमारा दृष्टिकोण

ऐसे लोग ही धैर्य एवं दृढ निश्चय के साथ सारी कठिनाइयों को पार कर जाते हैं। इसके लिए 'भिक्षा देहि' वृत्ति तथा अहमन्यता को त्यागना पड़ता है। हमें आदर्शवादी होते हुए भी वास्तववादी होना चाहिए,

ताकि हमारे बलस्थान तथा कमजोरियाँ हम जान सकें। हमारे व्यक्तिमत्व में आदर्शवाद एव वास्तववाद का समन्वय होना चाहिए। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है चारित्र्य। व्यक्तिगत चारित्र्य तथा राष्ट्रीय चारित्र्य का विकास होना चाहिए। समाजकार्य के प्रति समपूर्ण, नि सकोच समर्पण ही हमारी मूलभूत प्रेरणा होनी चाहिए।

हम बधुभाव की बातें तो करते हैं, किंतु देहातों में जाने के बाद वहाँ के अभावजन्य मानव-जीवन का नग्न दर्शन होता है, तब उस वास्तविकता से दूर भागने की इच्छा होती है। तब ये उदार मनस्कता की बातें दभ लगती हैं। मैं अपने देश का उदाहरण देता हूँ। एक महाशय ग्रामविकास-कार्य के लिए एक गाँव में गए। उन्हें तिल का तेल खाने की आदत थी, परतु वहाँ के लोगों को 'जवस का तेल खाने की आदत थी। वे महाशय उस तेल की गध भी नहीं सह सकते थे। फिर खाना कैसे खा सकते थे? उन्हें ऐसा लगा मानो वहाँ का सारा वातावरण दुर्गधमय हो गया हो। एक दिन भी वहाँ ठहरे बिना वे लौट आए। भेंट होने के बाद मैंने उनसे पूछा- 'आखिर बात क्या है।' उन्होंने कहा कि 'वहाँ का सपूर्ण वातावरण असहनीय है। ऐसी मानसिकता से क्या हम समाजसेवा कर सकते हैं? कितने लोग कसौटी पर खरे उतरेंगे?

व्यावहारिक मार्ग

एक व्यक्ति को मल्लयुद्ध करने को कहा गया। उसने उत्तर दिया– 'पूरे वस्त्र उतारकर मल्लयुद्ध नहीं कर सकता। पूरे कपडे पहनकर यदि मल्लयुद्ध करना हो तो मैं तैयार हूँ।' मैंने उससे कहा, 'फिर मच्छरों से लडो। कितने भिन्न प्रकार के लोग इस ससार में हैं, यह हम वास्तव में नहीं जानते। विविधता की हमें कल्पना भी नहीं।

जनमानस के लवक का दूसरा छोर है– 'मैं और मेरा परिवार। किंतु केवल अपना स्वार्थ, अपना परिवार इतने सकुचित वातावरण में ही मनुष्य नहीं रह सकता। उसे साथी चाहिए, परिवार चाहिए, समाज चाहिए। कहते हैं कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है। केवल परिवार के अवगुठन में ही वह नहीं रह सकता। उसकी दृष्टि विशाल बननी चाहिए। क्या हम सपूर्ण मानवता का आदर्श सामने रख सकते हैं? यह भी हमारी मर्यादा के बाहर होगा। किंतु परिवार बहुत छोटा परिप्रेक्ष्य है। इन दोनों सीमाओं का सतुलित अर्थात् सुवर्णमध्य है– राष्ट्र की सेवा। आगरा के एक प्रसिद्ध

अधिवक्ता से मेरी भेंट हुइ। उन्होंने कहा– 'यदि मैं मानवता के विषय में नहीं सोच सकता तो केवल परिवार के विषय में क्यों न सोचूँ?' मैंने उत्तर दिया 'केवल ब्रह्म सत्य, जगन्मिथ्या इस बात का विचार करते-करते हमारा जीवन तथा सुख ही उध्वस्त हो जाएगा। केवल सकुचित, मर्यादित, पारिवारिक दृष्टि का भी परिणाम यही होगा। अत हमारे शास्त्रों में एक मार्ग बताया है– अतिव्याप्ति तथा अव्याप्ति के दोष को नकारकर मन को सपूर्णत सतुलित रखना आवश्यक है। अत राष्ट्र सेवा ही मध्यम मार्ग है।'

राष्ट्र अर्थात्

अब प्रश्न यह उठता है कि 'राष्ट्र क्या है'? राष्ट्र के लिए मातृभूमि एव उस भूमि के प्रति श्रद्धाभाव रखनेवाले लोग आवश्यक हैं, जिन लोगों में समान परपरा, समान आदर्श, समान भय, समान आकाक्षाएँ हैं, उस समाज को 'राष्ट्र' कहते हैं। सरल शब्दों में यह हिदू राष्ट्र है। यह हमारी मातृभूमि है। हम यहाँ कितने काल से रह रहे हैं, यह हमें ज्ञात नहीं है। जिन लोगों में यह समाज भावना, सास्कृतिक तादात्म्य एव रुचि में एकात्मभाव दिखाई देता है, वे सब वर्तमान भारत में हिदू कहलाते हैं। यहाँ रहनेवाले दूसरे लोगों की रुचि हिन्दू समाज की मुख्य धारा से सघर्ष करने की है। जिनसे तात्त्विक सघर्ष है, ऐतिहासिक शत्रुभाव है, रुचिभिन्नता रखनेवाले समूहों को एकत्र कर एकात्मराष्ट्र कैसे निर्मित किया जा सकता है? अत इस वास्तविकता का आकलन होने पर राष्ट्रजीवन का सपूर्ण स्वरूप हमें 'हिदू' के रूप में दिखाई देगा।

दृष्टिकोण का अभाव

इन सब बातों का ज्ञान होने पर हमें क्या करना आवश्यक है, इस बात पर ध्यान देना चाहिए। कुछ लोग कहते हैं कि देश में निरक्षरता एव दारिद्र्य विपुल प्रमाण में है। इन दोषों को नष्ट करने के विविध प्रयास किए जा रहे हैं। कुछ लोगो ने भौतिक उन्नति का कार्य लिया है, कोई गरीबों को अन्नदान करते हैं, कोई अस्पताल खोलते हैं, तो कोई साक्षरता अभियान चलाते हैं। पचवार्षिक योजनाओं की सफलता के लिए विविध प्रयास किए जा रहे हैं। ये योजनाएँ साकार कब होंगी? यह हमें ज्ञात नहीं है। सभवत उस समय तक लोग जीवित ही नहीं रहेंगे। कुछ लोग कहते हैं कि देश में जितनी जमीन है, वह सब लोगों में समान रूप से विभाजित करनी चाहिए। किंतु इन सब उपायों से समस्याएँ नहीं सुलझेंगी। इन सब दोषों का मूल

कारण यही है कि एकात्म राष्ट्रीय भावना के सुदृढ बधन हमने तोड दिए हैं। परिणाम यह हुआ कि सुसगठित राष्ट्रजीवन का देश में अभाव हो गया और इसी के चलते अनेक समस्याएँ पैदा हुई।

लोग कहते हैं कि अनाज के अभाव के कारण हमें पीडा हो रही है। यह तो सर्वज्ञात है कि गेहूँ एव चावल-- वे भी अच्छी किस्म के, अपने देश से बाहर भेजे जाते हैं। यह भी कहते हैं कि ईरान में इस देश का सबसे महँगा चावल सस्ते दाम में बिकता है। हमारा उच्च कोटि का चावल और अति सस्ता दाम। इधर हम बर्मा, चीन और स्याम से चावल का आयात करते हैं। आस्ट्रेलिया, कनाडा इत्यादि देशों से हम गेहूँ का आयात करते हैं। कुछ विशेष प्रक्रिया द्वारा सत्व निकालकर वे हमारे पास भूसा भेजते हैं, किंतु गेहूँ ऊपर से अच्छा दिखता है।

भूदान आदोलन में लोगों को अपने स्वामित्व का अधिकार त्यागने को कहा जाता है। स्वामित्व का त्याग ऐच्छिक होना चाहिए, ऐसा वे मानते हैं। जमीन पर अधिकार छोड देने के बाद यह दिखाई देगा कि सामूहिक खेती के विषय में उन्हें अल्प ज्ञान है। उसके पश्चात् शासकीय तत्र सर्वाधिकार अपने हाथों में लेकर लोगों को केवल खेती करनेवाले कृषि के बैल बना देगा। एक बार स्वामित्व प्राप्त हो जाने के बाद उसे चालू रखने में सत्ता को कोई कठिनाई नहीं होगी। हुकुमशाही का यह सबसे आसान मार्ग है। अब बीमा कपनियों का भी राष्ट्रीयकरण हुआ है। यदि कोई निजी शिक्षा सस्था है, तो लोग कहते हैं कि शासन को उस सस्था को चलाने हेतु अपने हाथ में ले लेना चाहिए।

नागपुर में डाक तथा तार कर्मचारियों की परिषद् में उपस्थित रहने हेतु मुझे निमत्रण दिया गया था। उस समय मैं नागपुर में नहीं था। आने के पश्चात् मैंने परिषद् की कार्यवाही तथा पारित प्रस्तावों को देखा। प्रस्तावों में उनकी बहुत सारी माँगें थीं। अपने पाल्यों को नि शुल्क शिक्षा, नि शुल्क आवास, नि शुल्क वैद्यकीय सेवा और भी अन्य अनेक माँगें थीं। वे प्रस्ताव पढने के पश्चात् मैंने कहा कि इसके बाद एक ही माँग बाकी रह जाती हे कि शासन उनके लिए सतान पैदा करे। मनुष्य को शोभा न देनेवाली ये बातें थीं। इतने कठोर शब्दों का प्रयोग मैं कभी न करता, यदि उन प्रस्तावों में आत्मसम्मान, जिसकी मुझे प्रत्येक देशवासी से अपेक्षा है को ठेस पहुँचानेवाली बातें नहीं होतीं। इन बातों से तो हम एकाधिकारशाही शासन व्यवस्था की ओर जा रहे हैं।

अत इन सर्व-व्याधियों का मूलभूत एकमात्र उपाय यही है कि देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना एव समुचित राष्ट्रीय दृष्टि निर्माण कर प्रत्येक व्यक्ति का हृदय विशुद्ध आदर्श से इस प्रकार प्रभावित करें कि वह राष्ट्रसेवा के लिए अपना सर्वस्व समर्पण कर सके। इस कर्तव्य के प्रति हमें तीव्रता से जुट जाना चाहिए। दुनिया में जाकर हम कुछ उपदेश करना चाहते हैं, तो प्रथम हमें स्वय अधिक अच्छे नागरिक बनना चाहिए। हमारा जीवन समन्वयपूर्ण और अनुशासनयुक्त रहना आवश्यक है। इसका प्रारभ हमें स्वय से ही करना पडेगा। किंतु प्रारभ कैसे करें?

आत्मघाती मानसिकता

एक दिन एक महाशय ने शैक्षणिक योजनाओं के विषय में भाषण में हमारे एक सम्माननीय नेता श्री दिवाकर जी का भाषण उद्धृत् करते हुए कहा कि भारत को सारे ससार का 'गुरुस्थान' पुन प्राप्त करना चाहिए। मैंने उनसे कहा कि श्री दिवाकर जी तो सोचते हैं कि अग्रेजी भाषा को अग्रस्थान देने से भारत ससार का गुरु हो जाएगा। विदेशी भाषा को अग्रस्थान देने से या विदेशी मानसिकता का दास होने से भारत गुरु नहीं बन सकता। दास होते हुए हम ससार का नेतृत्व करेंगे, यह कहना केवल ढोंग है। प्रत्येक व्यक्ति को कितने भयानक न्यूनगड ने जकडा हुआ है। मुझे मेरी तरुणावस्था के दिन याद आते हैं। मैं विधि शाखा का छात्र था। उन दिनों मैंने दाढी बढाई हुई थी। कुछ लोग मेरी दाढी पर व्यग्य करते थे, पर मैंने कभी उसकी चिता नहीं की। वे मुझे ठीक से जानते भी नहीं थे। एक बार उन्होंने महाविद्यालय के एक प्राध्यापक को मुझसे मित्रतापूर्वक बातें करते हुए देखा। बाद में उन्हें पता चला कि मैं अनपढ नहीं था और जो प्राध्यापक मुझसे बातें कर रहा था वह मुझसे पद में छोटा था। मैंने जब दाढी बढाई तब, लोग मेरे विषय में क्या कहेंगे, इस बात की चिता कभी नहीं की। अपने प्राचीन ऋषियों की तरह और उनके साथ पूर्णत सहमत होते हुए मैंने दाढी को मेरी नाभि तक बढने दिया था। मैं अपनी पद्धति से उन भव्य आदर्शों का अनुकरण करने का प्रयत्न कर रहा था। यदि हम अग्रेज अमरीकी या रूसी जीवन व्यवहारों की प्रतिलिपि बनते हैं, तो क्या यह अध पतन नहीं होगा? कितना दु खद दृश्य होगा वह! उन बधनों से हमें मुक्त होना है। न्यूनगड झटक देना है। वास्तव में अपनी जीवनपद्धति अपनाने में लज्जा कैसी?

मुझे दुनिया का ऐसा समाज दिखाइए, जिसने हमारे जैसे अनेक सकटों का सामना किया और वर्तमान काल तक टिका हुआ है। केवल हम ही टिक सके हैं। अब हम समाजवाद के विषय में सुन रहे हैं। यह समाजवाद कुछ काल में धूल में मिल जाएगा। उसे कुछ ठोस आधार ही नहीं है। तथाकथित राष्ट्रीय समाजवाद, अतरराष्ट्रीय समाजवाद अर्थात् साम्यवाद ये सबरूप कुछ समय के बाद नष्ट हो जाएँगे। फिर मानवता के दीपस्तभ के समान स्थिर रहनेवाला क्या है? एक अमर समाजव्यवस्था हमारी विरासत है। बाह्य आक्रमणों का सामना करनेवाले अभेद्य दुर्ग के समान वह खडी है। इसी सास्कृतिक विरासत के कारण हम अभी तक टिके हुए हैं। हमें यह बात कभी भी भूलनी नहीं चाहिए। फिर हम न्यूनगड से ग्रस्त क्यों हैं? क्यों दूसरी समाज व्यवस्थाओं की प्रतिलिपि बनें?

अत हम स्वय से ही प्रारभ करें। मानसिकता में क्रातिकारी बदलाव उत्स्फूर्त होने चाहिए। जो कुछ भी विदेशी है, उसे हमें सपूर्णतया नकारना चाहिए। इसका अर्थ यह कि दूसरी समाज-व्यवस्था से हमें जो कुछ स्वीकारना है, सोच समझकर स्वीकारना चाहिए। हम अन्न खाते हैं, पचाते हैं ओर शरीर में शक्तिसचय होता है लेकिन अन्न का शरीर पर बाहर से लेप नहीं करते। हमारा शरीर वही रहता है ओर पचाने से अधिक शक्तिशाली बनता है। इसी तरह जो भी अच्छा है उसका चयन, पाचन करके राष्ट्र-शरीर में आत्मसात करना चाहिए। कितु आज हम बाहर से अनेक विचारों को ग्रहण करते हैं, उससे भले ही हम शक्तिहीन हो रहे हों। जो व्यक्ति अन्न पचन नहीं कर सकता, वह अन्न के बोझ से ही कुचला जाएगा। उस व्यक्ति के समान ही हमारा भवितव्य होगा। एक महाशय ने मुझसे *कहा जब मैं दिल्ली आया, तब मुझे लगा कि मैं लदन या न्यूयार्क* में ही हूँ। यह ऐसा ही चलता रहा तो इस देश का कोई भविष्य नहीं होगा। वह मानो दूसरे देश का उपग्रह बनकर रह जाएगा।

इस परिस्थिति को बदलना है तो हमारी विचार-प्रक्रिया में सपूर्ण परिवर्तन होना चाहिए। कितनी विचित्र बात है कि अग्रेजी भाषा में बोलकर सोचते हैं कि हम महान अतरराष्ट्रीय व्यक्ति हैं। परतु यह आत्मविश्वास के अभाव के अतिरिक्त कुछ नहीं है। हमने रूस में एक महिला राजदूत भेजी थी। उसने अपना परिचय-पत्र अग्रेजी में दिया। रूस के विदेश मत्रालय ने उसे यह कहते हुए वापस किया कि यह आपकी राष्ट्रभाषा नहीं है, कृपया हिंदी में भेजिए। तब परिचय-पत्र की हिंदी प्रति भेजी गई। उन्होंने उसे भी

यह कहते हुए वापस भेजा कि परिचय पत्र गलत है। यह कितना बड़ा अपमान है, इतनी भर्त्सना के बाद भी हम कहते हैं कि भारत को ससार का गुरुस्थान प्राप्त होगा। मराठी भाषा में 'गुरु' का अर्थ है— गाय बछड़ा या जानवर। हमारे व्यवहार से हमें इस अर्थ का गुरुस्थान मिलेगा— किसी के हाँके हुए मूक जानवर।

नि स्वार्थ सेवा

एक भाषण में हमारे प्रधानमत्री ने कहा कि उन्हें 'सेवा' शब्द पसद नहीं है। उन्हें 'सहयोग' शब्द पसद है। जब हमें यह ज्ञान होगा कि प्रत्येक व्यक्ति उसी महान दिव्य शक्ति का अश है तब सच्चे सहयोग का आदर्श आविष्कृत होगा। किसी प्रकार के सकोच के बिना हम सेवा करेंगे। 'हे इश्वर, मैं आपकी सेवा करूँगा। कृपया मुझे सतति-सपत्ति दो'— इस अभिलाषा से सेवा नहीं हो सकती। एक श्लोक में सेवा का सत्य स्वरूप प्रकट किया गया है- 'हे ईश्वर, मुझे सारी दुनिया का राज्यपद, स्वर्ग, पुनर्जन्म से मुक्ति पाकर मोक्षप्राप्ति नहीं चाहिए। मेरी केवल यही अभिलाषा है कि मैं इस ससार में बारबार जन्म लेकर ससार के दु ख दूर कर सकूँ।' सेवा हेतु अधिक शक्ति, अधिक ज्ञान ईश्वर से प्राप्त करना हमारा आदर्श होना चाहिए। 'सर्व ज्ञान, शक्ति तथा मेरे पास जो कुछ भी है उसे मैं समाजसेवा के लिए समर्पित करता हूँ। मैंने सब कुछ दे दिया है, अब मेरी झोली रिक्त है। इसी रिक्तता के समाधान से मेरा मन भर दे। यही मेरे लिए झोली भरना है।

इसका अर्थ यह है कि तीव्र राष्ट्रीय भावना एव अनुशासनयुक्त जीवन का अभाव ही हमारा मूलभूत दोष है। समन्वय तथा सहजीवन से यह महान देश अपने बल पर खडा होकर ससार में गरिमा प्राप्त कर सकता है। हमारे जीवन की महानता से, हमारे जीवन के अमर एव दिव्य आदर्श से तथा हमारी वैचारिक क्राति से वह गरिमा प्राप्त कर सकता है। अत आइए हम सब एकत्र आकर शक्तिशाली राष्ट्रजीवन का निर्माण करें। अनुकरण की इच्छा नपुसक मनुष्य का लक्षण है। हमें मनुष्य का बडा 'म' अर्थात् मर्द मनुष्य चाहिए। हमें तेजस्वी, बलशाली मनुष्य चाहिए। सप्रति हमारा समाज नपुसक पुरुषों से भरा है। हमें पौरुष एव धैयशाली 'नर' चाहिए। जब नारायण (दिव्य ज्ञान) तथा नर (दिव्य पौरुष) का समन्वय होता है, तब सर्वत्र विजय होती है। अपनी नींव अभेद्य, अचल प्रभावी करें— यही आपसे अनुरोध है। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह हमें शक्तिशाली

सतुलित ऐसा राष्ट्रजीवन जिसमें सकटों का सामना करने की शक्ति हो तथा जो सारे ससार में अभेद्य तटवदी की तरह खडा हो।

ॐ ॐ ॐ

१९ राष्ट्रजीवन को प्रभावित करना है

(दिल्ली, अक्तूबर १९६४)

एक बार एक मित्र ने पूछा कि काग्रेस का सघ के प्रति दृष्टिकोण में बदलाव कब आया। मैंने मित्र को बताया, यह दृष्टिकोण सन् १९३७ से बदला, जब वह सत्ता में आई। सामान्यत सत्ता में नशा होता ही है। नशा न करनेवाला व्यक्ति, जब प्रथम बार नशा करता है तब उसे अधिक नशा चढता है। काग्रेस के साथ यही हुआ।

एक काग्रेसी ने तो यहाँ तक कहा कि 'हम शहशाह हैं। हमारे चरणों के पास बैठना ही आप लोगों के लिए उचित है।' मैं सदिग्ध बात नहीं कह रहा हूँ। मेरे पास उनका पत्र है। उस पत्र का प्रत्येक अक्षर सत्तामद की भावना प्रगट करता है। हिंदूसभा ने भी इसका प्रयास किया कि सघ उनके खेमे में प्रवेश कर, उनका अनुगमन करे। सघ ने जब यह अस्वीकार किया तब से वे भी नाराज रहने लगे।

ॐ ॐ ॐ

२० सर्वाधिक आवश्यकता

(नागपुर, सन् १९६४)

प्रवास में जहाँ कहीं जाता हूँ, अपने स्वयसेवक बधुओं और वहाँ के सम्माननीय नागरिकों से यही कहता हूँ कि इस कार्य के प्रति अपनी सहानुभूति को कार्यरूप में परिवर्तित करें। अपने स्वयसेवक बधुओं को सहकार्य कर, इस कार्य के विस्तार में अपना योगदान दें। मैं स्वय इस कार्य में जुटा हूँ, मात्र इसीलिए मैं यह अनुरोध नहीं करता। वैसे भी किसी का यह झुकाव हो तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता, पर मैं उस वृत्ति से यह सब नहीं कहता। हमारा पालन-पोषण हिंदू परपरा में हुआ है, एक ऐसी परपरा, जिसने भगवान श्रीकृष्ण के समान महान विभूतियों को जन्म दिया। उन्होंने समस्त बुराइयों को उखाड फेंकने के लिए सामर्थ्यशाली यादव साम्राज्य का निर्माण किया। लक्ष्य पूर्ण हो गया और उन्होंने देखा कि यादव

उन्मत्त हो गए हैं, विकारों से ग्रस्त हो रहे हैं, उनके महाप्रयाण के बाद उनपर कोई नियत्रण नहीं रह पाएगा, मानव जाति के लिए वे एक सकट बनेंगे, तो भगवान कृष्ण ने स्वय ही यादवों के विनाश की लीला रची। यह है हमारी परपरा। हम कभी किसी के पक्षपाती नहीं रहे। इस कार्य को सुदृढता प्राप्त हो, इसी हेतु हम कार्य करते हैं। यह लाभदायी है, आवश्यक है।

हमारा सस्कार-केंद्र

हममें से अधिकाश के लिए यह कोई अनजाना कार्य नहीं है। काफी लबे समय से आपका इससे सपर्क रहा है। सन् १९२५ में उगली पर गिने जा सकने योग्य तरूणों को साथ लेकर यह कार्य नागपुर में प्रारभ हुआ था। पर आज हमारी शाखाएँ सभी प्रमुख नगरों, शहरों, छोटे स्थानों तथा वनवासी क्षेत्रों में भी फैली हैं। यह कार्य बढ रहा है। शाखा के दैनिक कार्यक्रमों की रचना ऐसी की जाती है कि उत्साह बढे, कुछ मनोरजन हो, मस्तिष्क ताजा हो और साहस तथा आत्मविश्वास वृद्धिगत हो। सहकार्य, अनुशासन, गुणवत्ता, बुद्धिमत्ता को इस भाँति प्रयुक्त करने का भाव हम विकसित करते हैं, जिसका अधिकाधिक सुफल मिले और अपने विस्मृत सस्कारों को पुन जागृत करके व्यक्ति-व्यक्ति इस राष्ट्र के अधिक स्वस्थ, सामर्थ्यशील, विजयशाली स्वरूप को पाने के लिये प्रेरित हो।

पतन का कारण

सघ के सस्थापक, जिन्हें मातृभूमि के प्रति और यहाँ की जनता के प्रति ज्वलत प्रेम था, ने उस समय के सभी आदोलनों में बाल्यकाल से ही भाग लिया था। हिदू महासभा, काग्रेस आदि उन्हीं में से है। प्रत्येक स्थान पर उन्होंने पाया कि सारे प्रयासों के बाद भी कुछ कठिनाइयाँ हैं। उन दिनों प्रत्येक कार्यकर्ता, बडा हो या छोटा, ने अपना लक्ष्य अग्रेजों को हटाने का ही रखा था, क्योंकि उनका हम पर राज था। कोई भी उसे सहन नहीं कर सकता था। यह विरोध का भाव प्रधानत सभी में व्याप्त था। पर सघ के हमारे सस्थापक जानते थे कि कोई भी ऐसा कार्य, जो केवल विरोध का आधार लेकर चल रहा हो, बढ नहीं सकता, अपना लक्ष्य नहीं पा सकता। उनके सम्मुख प्रश्न उपस्थित हुआ कि किस स्वातत्र्य के लिये यह सघर्ष है? देश के स्वातत्र्य का अर्थ है जनता का, राष्ट्र का स्वातत्र्य। पर राष्ट्र की स्थिति कैसी है? अग्रेजों के अधीन रही यह जनता क्या एक राष्ट्रभाव लिये हुए है? उनके ध्यान में यह आया कि इस पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है।

यही कहकर संतोष किया जा रहा है कि एक बार अंग्रेज चले जाएँ तो सब कुछ ठीक हो जाएगा। एक और बात थी कि देश में अपार दरिद्रता थी, अज्ञान था। दुर्भिक्ष और महामारी का जोर था। जनता का जीवन ऐसा हो चुका था, मानो वांछित सद्‌गुणों का लोप हो चुका हो। परिणामत लोगों का परस्पर विश्वास नहीं रहा था। अपने भाइयों के साथ विश्वासघात करने को तैयार हो जाते थे। अपने समाज व देश के प्रति अप्रामाणिकता का भाव बढ रहा था। सद्‌गुण तो ढूँढने पडते थे, जबकि हमारी भूमि 'स्वर्णभूमि' कहलाती थी। विदेशी इसे सोना उगलनेवाली भूमि कहते थे। उन्होंने लिखा है कि यहाँ की जनता प्रामाणिक थी, ईमानदार थी और विश्वास करने योग्य थी। चोरी का कोइ भय नहीं था। प्राचीनकाल का हमारा अच्छा चित्रण उन्होंने किया था।

हमारे नेताओं ने कहा कि इस उन्नत स्थिति से हमारा पतन १२०० वर्ष की गुलामी के परिणामस्वरूप हुआ। विदेशी सत्ता में हमारी सारी संपत्ति लूट ली गई। शिक्षा और संस्कृति संवर्धन के हमारे सारे परंपरागत साधन नष्ट कर दिए गए और इस भूमि पर अंधकार व अज्ञान को फैलाया गया। धीरे-धीरे लोगों की शक्ति क्षीण होती गई। वे बीमारियों के शिकार सहज ही होने लगे। यह सभी जानते हैं कि विदेशी सत्ता के रहते सद्‌गुणों का विकास हो नहीं सकता पर दुर्गणों का प्रभाव स्वत ही बढता है। ऐसे में अविश्वसनीयता बढने लगी। स्वार्थ बढने लगा। नैतिकता और चारित्र्य के परिमाण गिरते चले गए। इस कारण विचारवान इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि विदेशी सत्ता के कारण हमें यह सब भुगतना पड रहा है। इसलिए उसे हटाना होगा। सबको मिलाकर, इसे उखाड फेंकने का प्रयत्न करना चाहिए।

संघ संस्थापक ने इस विचारधारा में एक और कडी की आवश्यकता अनुभव की। उन्होंने स्वयं से ही प्रश्न किया कि विदेशी आक्रामक यहाँ पैर जमाने में कैसे सफल हुए? हमारा यह देश विशाल है। इसकी सीमाएँ प्राकृतिक रीति से भी अभेद्य थीं। हम एक समृद्ध, सामर्थ्यवान जन के रूप में यहाँ रहते थे। हमारा स्वतंत्र राज्य था। सेनाएँ थीं। शस्त्र थे। स्वाधीनता को कायम रखने के लिए जो आवश्यक है, वह सभी कुछ हमारे पास था। जो आक्रामक आए वे, संख्या में कम थे। एक अत्यंत अपरिचित भूमि पर आकर भी वे यहाँ विजयी हुए— यह चमत्कार क्यों हुआ? यह सब कैसे हुआ? मैं एक प्रमाण दूँगा। औरंगजेब के शासनकाल में उसके तोपखाने का

प्रमुख एक इटालियन था— मनुची। उसने देश का भ्रमण किया था। उस समय की वस्तुस्थिति का अध्ययन कर उसने अपनी डायरी में लिखा है कि कोई साहसी सेनापति ३० हजार सैनिक लेकर हिमालय की सीमा से नीचे उतरे, तो इस भूमि को दक्षिणी सागर तक सहज ही जीत सकता है। उसने कारण भी दिए हैं—समाज विभाजित है, आपस में झगडते रहते हैं, यहाँ तक कि विदेशी सत्ता को अपने ही लोगों के विरुद्ध अपनी सहायता के लिए बुलाने में उन्हें कोई सकोच नहीं होता। अग्रेजों ने इस सकेत को समझा और सफलता प्राप्त की।

इतिहास का अध्ययन कर हमारे सस्थापक इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अपने राष्ट्रीय हितों के प्रति उपेक्षा और स्वार्थ के कारण हम स्वातत्र्य खो बैठे। इसलिए हमें अपने समाज में राष्ट्राभिमान जागृत कर सगठित जीवन निर्माण करने का प्रयास करना चाहिए। यही हमारी समस्याओं को दूर कर सकेगा। यदि यह नहीं हुआ तो जो भी स्वातत्र्य, भले ही अतरराष्ट्रीय स्थिति के कारण या अन्य कारण से पा लें, स्थायी नहीं रहेगा। अत उन्होंने यह कार्य स्वय प्रारभ कर हिंदू समाज के सगठन की दिशा में कदम उठाया। उनके इसी निर्णय से राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ का जन्म हुआ।

हिंदू सगठन क्यो?

हममें से हर किसी का जन्म इस हिंदू समाज में हुआ है। वे भी, जो कहते हैं कि वे दुर्घटनावश हिंदू हैं, इस तथ्य को वे अस्वीकार नहीं करते कि उनमें हिंदू रक्त बहता है। हिन्दू समाज के ही अग होने से अपने व्यक्तिमत्व के विकास एव अपने पारिवारिक जीवन के लिए सभी प्रकार की सहायता इस समाज से हमें प्राप्त होती रही है। मनुष्य को सामाजिक जीव कहा जाता है। वह अकेला नहीं रह सकता। किसी सुनियत्रित समाज में रहने से ही व्यक्तित्व का विकास योग्य ढग से हो पाता है। हमारी श्रेष्ठ परपरा और भावी जीवन के प्रति रही महत्त्वाकाक्षा से ही हमारा विकास सही ढग से हो सकता है। अव्यवस्थित एकत्रीकरण में यह सभव नहीं है। हिंदू समाज ने हमारा पोषण सभी आवश्यकताओं के अनुसार किया है। हम उसके ऋणी हैं।

दुनिया में इसी समाज में जन्म पाने से हमें सम्मान मिला है। यह सम्मान एक समाज के रूप में मिला है। व्यक्तिगत रूप से सभवत वह नहीं मिलता, क्योंकि हिंदू समाज ने असाधारण रूप से शुद्ध चारित्र्य के

बुद्धिमान लोगों को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया है, जिन्होंने ब्रह्माड का भेद करके चिरतन सत्य का आविष्कार किया। वे ऐसे लोग थे, जो बौद्धिक ओर आध्यात्मिक दृष्टि से भी अत्यत महान थे। ऐसे समाज के अग होने से कई बार दुनिया यह सोचती है कि हममें भी ऐसी अलौकिक गुणसपदा विद्यमान है। इसी कारण जब हमारे विद्यार्थी विदेशों में अध्ययन हेतु जाते हैं, तो लोग सोचते हैं कि इनमें भी वह स्फुलिग जागृत है। उनसे श्री शकर के तत्त्वज्ञान, धर्म, अध्यात्म, यम-नियम, योग, प्राणायम आदि के बारे में प्रश्न करते हैं। उस समय हमारे युवा वर्ग की स्थिति विचित्र हो जाती है। सौभाग्य से पिछले कुछ वर्षो से साधुगण आगे बढे हैं, वे ज्ञानदान कर रहे हैं। हमारे अपने शिक्षित अज्ञानियों का मार्गदर्शन कर रहे हैं, उन्हें महान सत्य का बोध करा रहे हैं। इस प्रकार हिंदू समाज ने हमें सम्मान दिलाया है। समाज के इस ऋण को चुकाने के लिए हम प्रयत्न करेंगे? बडे लोग कह गए हैं कि हमें अधिक काल तक ऋणी नहीं रहना चाहिए। प्रामाणिकता से इस ऋण को चुकाना है तो इसे चुकाने का सर्वोत्तम मार्ग यह है कि आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपनी सेवाएँ दी जाएँ। जिसका पेट भरा हो उसे अन्न देना कोई सेवाकार्य नहीं है। किसी भूखे को अन्न देना ही सेवाकार्य है। हमारे समाज की आवश्यकता क्या है? कई लोगों ने इसका पता लगाने का प्रयास किया। कुछ ने अशिक्षा को देखकर विद्यालय-महाविद्यालय खोले। कुछ ने शारीरिक दुर्बलता को देखकर व्यायामशालाएँ प्रारभ कीं। किसी को आर्थिक असमानता नजर आई तो वह उसे दूर करने में जुटा। ये सभी लोग हमारी सहानुभूति, सद्भावना और सहयोग के पात्र हैं। फिर भी प्रश्न था—सर्वाधिक आवश्यकता क्या है? डा हेडगेवार ने इसपर गभीरता से विचार किया और वे जिस परिणाम पर पहुँचे, वह हमारे सम्मुख आदर्श के रूप में है।

यह अत्यत सरल है जैसा कि सत्य होता है। केवल अर्धसत्य और असत्य ही उलझा हुआ रहता है, समझने में कठिन रहता है। प्रारभ से ही हम इस प्रयास में हैं कि हिन्दू समाज सीना तान कर खडा हो। विदेशी सकट के मुकाबले के लिए ही नहीं, बल्कि हिंदू जनता के वैभवशाली, सुखी, उन्नत राष्ट्रजीवन का निर्माण उससे हो सके। हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व की सही तसबीर वे हमारे लिये खींचना चाहते थे। हम हिंदू, इतिहास को भी अज्ञात ऐसे अति प्राचीन काल से यहाँ रहते आए हैं। अखड जीवन यहाँ रहा है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिणी सागर तक का भू-प्रदेश इसका है।

इस महान और पवित्र भूमि मे हिंदू सदियों से इसे अपनी मातृभूमि मानकर रहते आए है। अपने आप को इस भूमि की सतान मानते रहे हैं। यहाँ हमने अपनी एक जीवनपद्धति विकसित की है। एक तत्त्वज्ञान विकसित किया है और चिरतन सत्य की प्राप्ति के लिए एक आदर्श निर्माण करते हुए अपना सास्कृतिक जीवन उस प्रकार ढाला है। हमारा अपना धर्म है। यह एक ऐसी जीवनपद्धति है, जो चिरतन लक्ष्य की ओर ले जाने का सुयोग्य मार्ग प्रदर्शित करती है। इससे मस्तिष्क और अत करण की ये विशिष्ट भावनाएँ प्रकट हुई, जिन्होने हमारे सास्कृतिक जीवन की रसधारा से आप्लावित महान विभूतियो को जन्म दिया। ऐसी विभूतियाँ, जो अन्यत्र कहीं नहीं हुई। यहाँ का प्रत्येक व्यक्ति उनके प्रति पूज्यभाव रखता रहा है।

राष्ट्रीयता का सत्यस्वरूप

दुनिया के सभी बडे और बुद्धिवादी लोग इस बात से सहमत हैं कि किसी एक विशिष्ट भू-प्रदेश पर रहनेवाले लोग उसे मातृवत् मानकर उसके प्रति पूज्यभाव रखते हैं, समान परपरा, जीवन का समान लक्ष्य, एक-सी सस्कृति, शत्रु-मित्र समान का भाव जिनके अत करण में हो, भविष्य के प्रति जिनमें एक-सी महत्त्वाकाक्षा हो, ऐसे उस भूमि में रहनेवाले लोग राष्ट्र कहलाते हैं।

यह व्याख्या देखें तो ज्ञात होगा कि अनतकाल से इस देश में हिंदू ही रहते आए हैं। हमारे राष्ट्रीय अस्तित्व का यह सत्य है। हमें सत्य का अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि सत्य को अपनाकर ही हम प्रगति कर सकते हैं। पिछले बारह सौ वर्षो में हम इस सत्य के त्रिविध रूप को भूल गए। परिणाम यह हुआ कि हमपर सकट पर सकट आते रहे। हम पिछले ५० वर्षो से जानबूझकर इस सत्य को भुलाते रहे हैं कि हमारा यह राष्ट्र प्राचीन है। उल्टे यह समझ रहे हैं कि हमारा राष्ट्रजीवन अब निर्माण हो रहा है। विभिन्न और परस्पर सघर्षशील जनों का एकरस पूर्ण जीवन निर्माण करने जा रहे हैं, जो विदेशी सत्ता के अधीन रहने से असभव था। इस असत्य के कारण हमें अपनी मातृभूमि का विभाजन करना पडा। आज भी यदि हम सत्य का मार्ग नहीं अपनाते हैं, तो और भी भारी सकट छा कर अततोगत्वा अपना अस्तित्व ही नहीं रहेगा। अत हमें इस सत्य को मानना ही होगा कि हमारा हिंदू राष्ट्र है। यह कोई चर्चा का विषय नहीं है। यह तो हमारे हृदय की धडकन है। यह पूर्ण सत्य है।

प्रतिकूलता में निष्ठा की परख

अपने राष्ट्रीय अस्तित्व की भावना के पुनर्जागरण की बात जब हम करते हैं, राष्ट्र के प्रति निष्ठा को दृढ करने की जब चर्चा करते हैं, तब कुछ लोग प्रश्न करते हैं कि क्या यह सब प्रगति और विकास के लिए आवश्यक है? मैं आप में से प्रत्येक को आत्मपरीक्षण करने के लिए कहूँगा। क्या हम वास्तव में यह अनुभव करते हैं कि यह हमारी मातृभूमि है? विशाल सीमाओं का क्षेत्र, जो पुरातनकाल से हमारा अपना है, हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। मैं उस विकृत नक्शे की बात नहीं कर रहा जो आज हमें दिखाया जाता है। उस भूमि का उल्लेख करता हूँ, जिसे हम मातृवत् मानते हैं। क्या हमारी आँखों के सामने वह चित्र आता है? क्या उसकी अनुभूति हमारे अंतःकरण में होती है? क्या हम मानते हैं कि इस भूमि की मिट्टी का एक-एक कण, इसके जल की एक-एक बूँद इससे बहनेवाली हवा का एक-एक झोंका हमारे लिए पवित्र है। हमारे पापों को धो डालने की क्षमता उसमें है? क्या इसकी मिट्टी में लोटने से माँ की गोद में सोने का सुख हमें मिलता है? यदि यह सब नहीं होता तो देशभक्ति की हमारी बातों में कोई अर्थ नहीं। वह शब्द मात्र तक ही सीमित हैं।

प्रतिकूल स्थिति में ही निष्ठा की परख होती है। पिछले १२०० वर्षों से हमारी मातृभूमि को भारी अपमान सहन करना पडा है। एक-एक अंग बिखर रहा है। उसका भव्यरूप विकृत किया जा रहा है, पर हम पर कोई असर नहीं। विदेशियों के क्रूर हाथ हमारी मातृभूमि पर पड रहे हैं और हमारे नेता कहते हैं – 'वहाँ तो घास का तिनका तक नहीं उगता।' क्या हमारी देशभक्ति का यही लक्षण है? यदि हम सच्चे देशभक्त हैं तो अन्न हमारे लिए स्वादहीन हो जाना चाहिए। हृदय में भारी पीडा होनी चाहिए। पर ये बडे लोग मुझसे कहते हैं कि मैं कश्मीर को पाकिस्तान के हाथ सौंपने का समर्थन क्यों नहीं करता? मैंने पूछा—'क्या आप मुझसे मेरा सिर काटने की स्वीकृति माँगते हैं?' उन्होंने कहा— 'नहीं' 'मैंने फिर पूछा' 'क्या मेरी माँ का सिर काटने के लिए आप स्वीकृति माँग रहे हैं। अपनी माँ का शिरोभूषण जो कश्मीर है, उसे काटने की स्वीकृति आप मुझसे किस मुँह से माँग रहे है? देश के प्रति निष्ठा का अभाव ही इसमे स्पष्ट झलकता है।

आज हमारे चारों ओर शत्रुवत् शक्तियाँ हैं। उत्तरी सीमा पर चीन का संकट छाया हुआ है। कुछ लोग पूछते हैं— वे किस प्रतीक्षा में हैं। मैं

चीनियों के इरादों का जानकार तो नहीं, जो उत्तर दे सकूँ। पर घटनाचक्र स्पष्ट सकेत देता है। १५ माह पूर्व, नवबर १९६२ में चीनी फोजों ने हमारे बडे भू-भाग पर अधिकार कर लिया और बडी उदारता का प्रदर्शन कर एकतरफा युद्ध-विराम घोषित कर दिया। पर इसी बात से यह सोचना कि खतरा टल गया है, गलत है। हमें पता रहना चाहिए कि उनकी सेना और सैन्य-सामग्री का वहाँ जमाव है। कहा नहीं जा सकता कि कब अगला आक्रमण होगा। वे लोग प्रश्न पूछ सकते हैं कि किस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं? पिछली बार ही आगे बढते हुए वे कोलकाता तक क्यों नहीं पहुँचे? कुछ लोग जो कम्युनिस्टों में अच्छाई ही पाते हैं, कहते हैं कि चीन का हमारी भूमि पर अतिक्रमण का कोई इरादा नहीं था। वे तो केवल वहाँ तक आना चाहते थे, जहाँ दोनों देशों की सीमारेखा है। वे मेकमोहन लाइन को नहीं मानते। इसीलिये वे वहाँ तक आए जिसे सीमारेखा होने का दावा करते हैं। अपना अधिकार कायम किया और फिर लौट गए।

हमारे राजनीतिक नेताओं ने कहा कि 'रूस ने देखो, कैसे चीन का साथ छोड दिया है।' मैं नहीं समझता कि वह तथ्य है। भले ही हमारे कुछ नेताओं ने इस कूटनीतिक चाल पर स्वय ही पीठ थपथपा ली। पर मैं इन दोनों के बीच की दरार को ऊपरी मानता हूँ। गैर कम्युनिस्ट राष्ट्रों से सघर्ष का मौका पडे तो वे एक होकर खडे होंगे। कम्युनिस्टों के इस आपसी विवाद में कुछ अन्य ढूँढने का प्रयास नहीं किया जाए।

एक और बात कही जाती है कि 'चीनियों की अपेक्षा थी कि यहाँ के लोग आपसी विवादों में झगडते रहते हैं। वे एक होकर सामना नहीं करेंगे। जनता के असगठित होने का लाभ उन्हें मिलेगा। यहाँ की जनता भाषा, धर्म, पथ के प्रति अपनी अलग-अलग निष्ठा के कारण एक नहीं हो पाती, पर चीनी उस समय स्तभित रह गए जब उन्होंने देखा कि अपनी मातृभूमि के गौरव, उसकी प्रतिष्ठा पर आँच आती देखकर, सारे लोग एक होकर खडे हो गए। उनका दृढ सकल्प था कि आक्रामक को मार भगाएँगे। मातृभूमि की एक इच भूमि भी शत्रु के पास नहीं रहने देंगे।

कुछ लोगों का कहना था कि हमारी सेना के पास साधन-सामग्री का अभाव रहने से चीनी उसे आसानी से हरा सके। पर वे तब गए जब सभी स्वातत्र्यप्रिय लोकतात्रिक देशों ने अल्प सूचना पर, पर्याप्त मात्रा में आवश्यक सामग्री की पूर्ति की। मैं समझता हूँ, एक और सभावना है

जिसके कारण चीन को अपना काम अधूरा छोड़कर पीछे हटना पड़ा। यह कोई कल्पनाविलास नहीं है। आप सभी जानते हैं, मैं एक प्रवासी हूँ। सदा प्रवास करता रहता हूँ। देश के हर कोने में मैं जाता रहता हूँ। वहाँ कई लोगों से मेरी भेंट होती है। कई जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। विश्वसनीय बातें ज्ञात होती हैं। मेरे ये संपर्क, सूचना स्रोत इतने विस्तृत और इतने विश्वसनीय हैं कि एक बार एक नेता ने मुझपर निजी जासूसी तंत्र का आरोप भी किया। यह इसलिए भी हुआ, क्योंकि मैंने यह भविष्यवाणी की थी कि कोइराला सरकार एक सप्ताह में गिर जाएगी। मैंने नेताजी से कहा कि '*यह तो सरकार का कर्तव्य है कि सक्षम गुप्तचर व्यवस्था का प्रबंध* करे, उनसे जानकारी एकत्र करे। यदि उन संकेतों से वह कुछ अर्थ नहीं निकाल पाती, घटनाचक्र का संकेत नहीं समझती, तो यह उनकी गलती है। मैं तो अपने प्रवास में काफी कुछ सीख पाता हूँ, जान पाता हूँ। चीन के आक्रमण के समय मुझे विश्वसनीय सूत्रों से जानकारी मिली थी कि चीन की योजनानुसार, स्थानीय लोगों में कम्युनिस्टों के उकसाने पर विद्रोह होगा। बंगाल में सर्वत्र आम हड़ताल की जाएगी। असम में सारा कार्य ठप कर दिया जाएगा। सरकार को विकलांग करने की उनकी योजना थी। सभी ओर हड़ताल कर, कारखानों में उत्पादन बंद कराकर, प्रतिरक्षा सामग्री का उत्पादन भी रुकवाकर बंगाल का सर्वसामान्य जनजीवन असहाय कर छोड़ने की योजना थी, ताकि चीन आराम से कोलकाता पहुँच जाए। पर किसी कारण से योजना सफल नहीं हुई। शायद यह भय रहा कि जनता की देशभक्ति की भावना केवल चीनी आक्रामकों को नहीं, उनके स्थानीय समर्थकों को भी निकाल बाहर करेगी। अब वे अधिक अच्छे अवसर की प्रतीक्षा में हैं। कम्युनिस्ट, देश में अव्यवस्था निर्माण कर रहे हैं। देशव्यापी हड़ताल की उनकी योजना है, जिसके परिणामस्वरूप प्रतिरक्षा विभाग सहित सारी सरकारी व्यवस्था ठप हो जाए। दुर्भाग्य से हमारे यहाँ कई लोग ऐसे हैं, जो थोड़ी वेतन-वृद्धि के लालच में, शत्रु का साथ देने में कतराते नहीं। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति का लाभ उठाने में कम्युनिस्ट पीछे नहीं है। वे जनता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विद्रोह के लिए उकसाकर चीन के लिये विजय का मार्ग सहज बनाना चाहते हैं।

हमारे देश में कुछ लोग हैं, जो सोचते हैं कि कम्युनिस्ट पार्टी अब कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं हैं, क्योंकि उसमें फूट पड़ गई है। परंतु यह कोरी कल्पना है। यह तो एक युक्ति है। सच्चाई यह है कि एक हिस्सा प्रधानमंत्री के प्रति हमारे प्रेम और स्नेह का लाभ उठाना चाहता है उन्हें

अपना समर्थन देकर, जनता की सहानुभूति अपने प्रति खींचना चाहता है, जबकि दूसरा हिस्सा नकाव ओढे शस्त्रसग्रह कर रहा है, जनता को विद्रोह के लिए उकसा रहा है। अत ऐसी वातों में आना मूर्खता है।

घुसपैठ का सकट

उधर हमारी पूर्वी और पश्चिमी सीमा पर पाकिस्तान का सकट है। वह देश तो झगडे पर आमादा है। हमारे देश के प्रति घृणा से उसका जन्म हुआ है। वह हमें शाति से रहने देना नहीं चाहता। सीमा पर उसने भारी सेना का जमाव कर रखा है। हमारी सेना में घुसकर, लोगों को मारकर, पशुधन की चोरी कर, फसल काटकर, हमारे क्षेत्र पर अधिकार कर वह शत्रुता निभा रहा है। कुछ समय पूर्व कश्मीर पर आक्रमण कर उसने एक हिस्सा ले लिया है। अव शेष पर उसकी निगाहें हैं। अपने पक्ष में विदेशी सरकारों का अनुकूल मत वनाकर, हमारे नेताओं पर दवाव ला रहा है। उसकी रीति सरल है। असम और पश्चिम वगाल में घुसपैठ कराकर योजनापूर्वक मुस्लिम बहुल क्षेत्र का निर्माण किया जा रहा है। १२ वर्ष पूर्व मैंने असम के स्थानीय नेताओं को इस खतरे से आगाह किया था, पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। उस समय यह सब प्रारभ ही हुआ था। अब तो यह सकटपूर्ण स्थिति तक पहुँच गया है।

पाकिस्तान पूरे कश्मीर पर ही नहीं, समूचे भारत पर राज्य करना चाहता है। यह कोई मेरी कल्पना नहीं है। मेरे पास उस कागजात की प्रति है, जिसमें भारत के मुसलमानों को, समूचे देश के इस्लामीकरण के लिए प्रयत्नशील रहने का आह्वान है। मुझे आशा है कि हमारी सरकार को भी इसकी जानकारी होगी। मेरे जैसा एक साधारण नागरिक यह जानकारी पा सकता है, तो कोई कारण नहीं है कि सरकार के पास यह नहीं होगी। एक-एक टुकडा कर भारत को अपने कब्जे में करने की उसकी चाह है।

बेखबर हिंदू समाज

इस सारी स्थिति में भी सुशिक्षित व विचारकों का वर्ग स्वार्थ में डूबा है, विलासिता का जीवन जी रहा है, इन घटनाओं पर सोचता तक नहीं। मुझे एक सस्कृत श्लोक स्मरण आ रहा है—

'कालव्यालगलग्रस्तो भेको दशानपेक्षते।'

अपनी स्थिति वैसी ही है। हमारी स्थिति उस मेंडक-सी हो गई है, जो सॉप द्वारा पकडे जाने पर भी जीभ निकालकर सामने उड रही मक्खी

को निगलने की कोशिश करता है। कुछ लोग अत्यत धार्मिक वृत्ति के होते हैं। मदिरों में जाकर पूजा-कार्य करते हैं। इस घटनाक्रम पर वे सोचते भी हैं तो उसपर चर्चा भर कर लेते हैं। जब मैं उन्हें ऐसी चर्चा करते देखता हूँ, तो मेरे अत करण में पीडा उत्पन्न होती है। उनकी निष्क्रियता पर दु ख होता हे। थोडा कष्ट करने की भी किसी की इच्छा नहीं। कैसी हमारी दुर्गति हो गई है। कितना पतन हो चुका है।

कुछ ऐसे हैं, जो जाति को लेकर, भाषा को लेकर विवाद में व्यस्त हैं। उनके प्रदेश में उनका यह प्रादेशिकवाद बडा सराहा जाता है। अपने हितों को लेकर चलनेवाले इन विवादों को गर्व से देखा जाता है। अपने प्रभाव से जोडे कुछ लोगों के गुट धार्मिक विषयों पर अनुमोदन पाकर, अपने सीमित दायरे में ही खुश हो लेते हैं। यह असगठित वृत्ति पनपाने में राजनीतिक दल भी पीछे नहीं हैं। विभिन्न दलों में विवाद ही नहीं, एक ही दल के विभिन्न गुटों में भी झगडे हैं। कोई विद्वान हो या वरिष्ठ पद पर हो, फिर भी इस प्रकार के विवादों से ऊपर नहीं है। हिदू के एकात्म भाव का विचार भी वहाँ नहीं है। मानवी एकता, बधुता की चर्चा करनेवाले भी हैं, पर प्रत्यक्ष में वे क्या हैं। वे सब जानते-समझते हैं कि वे क्या बोल रहे हैं? अपने परिवार के लोगों के साथ बैठकर वे जिस प्रकार भोजन करते हैं क्या उसी भाव से वे वनवासी बधुओं के साथ कर सकते हैं? मानवता की एकता की बात करनेवाले एक वेदाती से मेरी भेंट हुई। एक अफ्रीकी नीग्रो को देखकर उसके होश उड गए। उसने कहा, नीग्रो इतने भीषण लगते हैं कि उन्हें मानव कहना कठिन है। यह था उनका वेदात।

इसकी जोड में भ्रष्टाचार भी है, जो बुरी तरह फेल चुका हे। हर कोई मानता है कि भ्रष्टाचार हे। हमारे नेता कहते हैं कि चरित्र का ह्रास हो रहा है। पर इसे कैसे दूर किया जाए? यह कोई सरल कार्य नहीं है। कुछ समय पूर्व मुझे एक साधु मिले। उन्होंने कहा कि वे प्रशासकीय व्यवस्था से भ्रष्टाचार मिटाने जा रहे हैं। मैंने पूछा, कितनी प्रगति कर ली है आपने? उन्होंने कहा कि वे सार्वजनिक क्षेत्रों के नेता, राजनैतिक दलों के नेता सरकारी अधिकारी— सभी का सहयोग लेकर सरकारी कर्मचारियों के गुट बनाकर उनसे चर्चाएँ आयोजित कर रहे हैं। सरकार के कनिष्ठ वर्ग के कर्मचारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार वे दूर करने जा रहे हैं। मैने उनसे कहा कि वे पहले वरिष्ठ स्तर से भ्रष्टाचार हटाने का कार्य करें, क्योंकि कम वेतनभोगी लोगों का भ्रष्टाचार तो सहानुभूति का विषय है, न कि परेशानी

का। मेरे विचार से चरित्र, नैतिकता तथा ऐसे सारे गुण ऊपर से होकर नीचे तक उतरने चाहिए।

भ्रष्टाचार जिस सीमा तक पहुँचा है, उसकी गंभीर स्थिति पर विचार करना ही होगा। सन् १९४८ के पूर्व के लोकतान्त्रिक चीन की स्थिति हम जानते हैं। अमरीका तथा अन्य लोकतान्त्रिक देशों से उसे उदार हाथों से सहायता मिलती थी। इसके बावजूद गरीब की स्थिति दिनोंदिन बदतर हो रही थी। उस समय चीन के वर्तमान सत्ताधीश जो साम्यवाद की विचारधारा से प्रभावित थे, उन्होंने रूस की सहायता लेकर विद्रोह किया। लोकतांत्रिक देशों ने चीन की सरकार की सहायता कर उसे पुन स्थापित करना अपना कर्तव्य माना, पर यह देखा गया कि चीनी जनता अपनी परंपरा, अपनी संस्कृति खो चुकी थी। जीवन-पद्धति भूल चुकी थी, अपनी मातृभूमि से प्रेम भी उसमें नहीं रहा था। उनका चारित्र्य विदीर्ण हो चुका था। परिणामत अमरीका जो आधुनिकतम शस्त्र देता था, विद्रोहियों के हाथ बेच दिए जाते थे। यह इतिहास में दर्ज है। तब अमरीका ने सहायता भेजना बंद कर दिया। परिणाम सभी जानते हैं। चारित्र्य का महत्त्व इसीलिए है।

पर हम क्या कर रहे हैं? हम कहते हैं कि आज जिस वातावरण में हम रह रहे हैं, वह अच्छा नहीं है। चारित्र्यहीनता है। हम असंगठित हैं। पर उपाय क्या है? जिनका समान लक्ष्य है, वे ही संगठित हैं। वे उसके प्रति एकनिष्ठ हैं। लक्ष्य पवित्र रहा तो चरित्र भी अच्छा होगा। उसके बगैर यह संभव नहीं है। सामान्य व्यक्ति में कुछ नरमाई रहती है। यह स्वाभाविक है। सभी लोग तो सर्वस्व त्यागकर साधु नहीं बन सकते। यह संभव भी नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि स्वार्थ को पनपने ही नहीं दिया जाए। इससे हानि ही होगी। अपने सम्मुख पवित्र लक्ष्य रखकर उसके प्रति एकनिष्ठ रहकर व्यवहार करें, तो स्वार्थ पनप नहीं पाएगा।

मातृभूमि की भक्ति

तो फिर आदर्श क्या हों? अत्यधिक ऊँचे आदर्श उपयोग के नहीं। साधारण व्यक्ति के लिए वे असाध्य होंगे। आदर्श ऐसा हो जो अनुभव किया जा सके, जनता के पवित्र भाव को आकर्षित कर सके। ऐसा आदर्श और उसके प्रति कार्य-प्रवृत्ति ही चरित्र का निर्माण कर सकती है। जनता में पवित्र भाव उत्पन्न करना, स्वार्थ का निर्मूलन करना, समाज से भेदभाव हटाना ही उसका लक्ष्य हो। हमारी मातृभूमि को छोड़कर और कौन सा आदर्श होगा? हमारे पूर्वज जिनमें आदर्शवाद का आविष्कार पाते थे, हम

उसके बारे में सोचें, उसके प्रति विनीत हों, उस की उपस्थिति का अनुभव करें, अपने अत करण में उसके प्रति श्रद्धाभाव की अनुभूति करें। यही पवित्र, महान लक्ष्य होगा। एकनिष्ठ भाव से उसके प्रति हममें से प्रत्येक इसे मातृशक्ति के रूप में अनुभव करे। उसकी मिट्टी का एक-एक कण, उसके जल की एक-एक बूद, यहाँ प्रवाहित वायु का एक-एक झोंका हर पाप से मुक्ति दिलाने में सक्षम है— यह अनुभूति हमारे हृदय में हो। इससे हम सभी जो उसके पुत्र हैं, वे परस्पर एक परिवार के बधन में जुड जाएँगे, इस हिंदू राष्ट्र के घटक बन जाएँगे। इस मातृभूमि के पुत्र होने की यह अनुभूति हमें जागृत करनी है। हम सबकी नसों में एक ही रक्त प्रवाहित होता है, एकत्व के भाव से हम जुड़े हुए हैं। फिर हम नगर में रहते हों, गाँव के हों या वन के। हम सभी उसी माँ के पुत्र हैं, देशभक्ति की यह प्रखर भावना ही, एक परिवार का घटक होने की यह अनुभूति ही हमें सबल करेगी। राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ यही कार्य कर रहा है।

मैं आप सबसे अनुरोध करूँगा कि अधिकाधिक निकट आएँ और इसे समझने का प्रयास करें। अपनी सहानुभूति को व्यावहारिक जीवन में स्वयसेवकों के साथ कधे से कधा मिलाकर, उसके दैनदिन कार्य में साथ देकर प्रत्येक हिंदू के घर में यह संदेश पहुँचाए। हम सभी सशक्त हों तथा किसी भी प्रकार के सकट का सामना करने की स्थिति में हों, ताकि इस ससार में विजयी पवित्र राष्ट्र के रूप में गौरव से खडे हो सकें।

२१ हिंदी-विरोध अनावश्यक

(दिल्ली, फरवरी १९६५)

सघ का काम हिदू समाज को सगठित करना है। आज देश में राजनीतिक दलों, गुटों, पथों, और जातियों के आधार पर विभेद का निर्माण हो गया है। भाषा और प्रात का दुरभिमान देश के टुकडे-टुकडे करने को उद्यत है। इस प्रकार का छिन्न-विच्छिन्न समाज ससार में सुखपूर्वक कैसे जी सकेगा? भूतकाल का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इसी फूट एव विच्छिन्नावस्था के कारण हम छोटे-छोटे आक्रमणों का भी सामना नहीं कर सके। इतिहास की हमारे लिए यह सीख है कि हम अपने राष्ट्र जीवन को असगठित न होने दें। ध्यान रहे कि हमारे समाज के विघटन का लाभ उठाने के लिए अनेक लोग ताक लगाए बैठे हैं। वे यहाँ पराई सत्ता स्थापित

करने की योजना बना रहे हैं। अत अपने स्वत्व को बनाए रखने के लिए हमें अपने समाज को सूत्रबद्ध, सगठित और सशक्त बनाने की आवश्यकता सहज ही समझ में आनी चाहिए।

भाषा के प्रश्न पर कुछ प्रांतों में हुए उग्र प्रदर्शन के पीछे कार्यरत तत्त्वों का हमें पता लगाना होगा। मेरी जानकारी के अनुसार, इन उपद्रवों के पीछे साम्यवादियों का बहुत बडा हाथ है। उथल-पुथल मचाकर ही वे अपनी योजना पूरी करना चाहते हैं। यह तोड-फोड और हिंसात्मक उपद्रव साम्यवादियों ने ही कराया है।

अंग्रेजी का बोझ हटाना होगा

हिंदी विरोधी आदोलनकारी और चेन्नै के उपद्रवकारी यह नहीं सोचते कि जब अंग्रेजों ने हमें जीतकर हमारे ऊपर अपना शासन लादा, उस समय उन्होंने हम पर अपनी अंग्रेजी भाषा भी थोपी थी। आज उस थोपी हुई चीज को बनाए रखना ही थोपना है। हमें तो इस बोझ को हटाना ही होगा। अंग्रेजों के साथ ही अंग्रेजी को भी चले जाना चाहिए था। आवश्यकतानुसार अतरराष्ट्रीय कार्य करनेवालों का अंग्रेजी सीखना समझ में आ सकता है, लेकिन देश के प्रत्येक बालक-बालिका के ऊपर उसका बोझा डालना कहाँ तक उचित है? जिसे अपने राष्ट्र का स्वाभिमान है, वह किसी भी परिस्थिति में पराई भाषा का अभिमान लेकर नहीं चल सकता। प्रत्येक भाषा उस समाज की जीवन-पद्धति को प्रकट करने का माध्यम है।

यदि हमने अंग्रेजी स्वीकार की तो अंग्रेजी बोलनेवाले विदेशियों की जीवन-पद्धति हमारे ऊपर न चाहते हुए भी बलात्कार से थोपी जाएगी। स्वत का रहन-सहन एव जीवन की परपरा नष्ट हो जाएगी। हजारों वर्षों से हमारी सस्कृति अनेक झझावातों को झेलते हुए अखड रूप से चली आ रही है। उसका एकमेव कारण यही है कि हमने अपने स्वत्व को अभिव्यक्त करनेवाली भाषाओं को कभी छोडा नहीं। हमने इस ज्ञान का कभी भी विस्मरण नहीं होने दिया कि सपूर्ण देश में एक ही धर्म और सस्कृति की परपरा चल रही है। इसी कारण परकीय आक्रमणकारी हमारे राष्ट्र को नष्ट नहीं कर पाए। किंतु यदि आज हमने अपने भारत की किसी भाषा को अपनाने के स्थान पर किसी विदेशी भाषा को ही शासन एव जीवन का विकास सपूर्ण करने का अधिकार प्रदान किया तो उस भाषा के पीछे-पीछे परकीय विचार हमारे जीवन पर छा जाएँगे। इस प्रकार हम अपने सपूर्ण

राष्ट्र जीवन का विनाश कर डालेंगे।

हिंदी को स्वीकार करने में कौन सी कठिनाई है। मैं तो मराठी भाषी हूँ, पर मुझे हिंदी पराई भाषा नहीं लगती। हिंदी मेरे अत करण में उसी धर्म, सस्कृति और राष्ट्रीयता का स्पदन उत्पन्न करती है, जिसका मेरी मातृभाषा मराठी के द्वारा होता है।

हिंदी का अध्ययन अपने धर्म और सस्कृति की परपरा का ही अध्ययन है। हिंदी का विस्तार अपने जीवन का ही विस्तार है। अत हिंदी को सपूर्ण भारत के जीवन की कडी के रूप में स्वीकार करना और उसका इस दृष्टि से विकास करना, अपने राष्ट्रीय जीवन की एकता की स्वीकृति और उसका विकास ही है। देश की भाषाओं में सर्वाधिक प्रचलित हिंदी को यदि हम ग्रहण करके नहीं चले, तो थोडे ही दिनों में भाषाओं के आधार पर देश के टुकडे-टुकडे हो जाएँगे। सविधान केवल कानून के बल पर सबको जोडकर रखने में समर्थ नहीं होगा। अत यदि किसी के मन में किचित मात्र भी देश-प्रेम है, भारतीयता की लगन है, राष्ट्रीय अस्मिता को बनाए रखने की चाह है, तो हमें परकीय भाषा का अभिमान छोडकर, अतर-प्रातीय व्यवहार के लिए तथा समग्र देश को एक कडी में बाँधनेवाली भाषा के नाते हिंदी को ग्रहण करना चाहिए।

उद्दडता निदनीय

कुछ लोगों की उद्दडता के कारण उन निर्णयों को नहीं बदलना चाहिए, जो सबने मिलकर राष्ट्र के व्यापक एव भावी हितों को ध्यान में रखकर किए हैं। यदि एक बार हमने उपद्रवों के आधार पर राष्ट्र के सभी प्रश्नों का निर्णय करने की प्रथा चलाई, तो प्रजातत्रीय रीति तथा शाति और समझौते के साथ विचार-विनिमय के आधार पर राष्ट्र के सभी प्रश्नों का निर्णय करने की पद्धति समाप्त हो जाएगी। उद्दडता की प्रवृत्ति को पनपने देना ठीक नहीं। यदि राज्यकर्त्ताओं ने उपद्रवकारियों के सामने झुककर अग्रेजी को बनाए रखने के लिए सविधान में कोई भी सशोधन किया, तो शेष देश के लोग अग्रेजी का लादा जाना सहज रूप से स्वीकार नहीं करेंगे। वे इसके विरुद्ध आदोलन करेंगे और उनका यह आदोलन भारतीय राष्ट्रीयता तथा सविधान की रक्षा के लिए होने के कारण अधिक समर्थ होगा। अत आवश्यकता इस बात की है कि दृढ सकल्प के साथ अपने राष्ट्र की परपरा जिस भाषा में अभिव्यक्त होती आई है तथा इस

दृष्टि से जो निर्णय हुआ है, उसपर अडिग रूप से डटे रहें। दक्षिण-भारतवासी चारों ओर की परिस्थितियों को देखें, अपना स्वाभिमान जागृत करें, आत्मीयता जगाएँ, विवेक से काम लें तथा आज की विकारपूर्ण स्थिति को हटाकर राष्ट्र की एकात्मता को बढाएँ।

छोटी-छोटी बातों को लेकर देश के लिए घातक स्थिति निर्माण होने का एकमेव कारण यह है कि हमारे सामने राष्ट्रजीवन की श्रद्धाओं का कोई ठोस आधार नहीं है। आज केवल आर्थिक एव भौतिक हितों का ही विचार रखा जाता है। वह सपूर्ण जन की श्रद्धा का आधार नहीं बन सकता। कुछ दिन पूर्व राष्ट्रीय एकता के लिए स्कूलों में एक प्रतिज्ञा दुहराई जाती थी कि 'मैं सविधान के प्रति पूर्णतया निष्ठा रखकर सच्चाई का व्यवहार करूँगा।' सविधान एक मानवनिर्मित वस्तु है, उसमें सशोधन होते रहते हैं। नित्य सशोधित होनेवाला सविधान क्या राष्ट्र में एकता पैदा कर सकेगा? सत्तारूढ दल के प्रमुख नेता श्री कामराज नाडार ने यह कहकर कि *'हिंदी में कोई पत्र आए तो उसे कूडे की टोकरी में फेंक दो'*– क्या सविधान का अपमान नहीं किया? हिदी सविधान द्वारा स्वीकृत राज व्यवहार की भाषा है। हिंदी का अपमान भारत के सविधान का अपमान है। सविधान का अपमान करनेवाले के विरुद्ध कार्यवाही करनी चाहिए। भारत सरकार के लिए एक सुनहरा अवसर है कि वह यह सिद्ध कर दे कि यहाँ कानून का राज्य है। यदि ऐसा नहीं किया और सविधान की अवहेलना इसी प्रकार होती रही, तो उसके प्रति निष्ठा की प्रतिज्ञा का क्या अर्थ रह जाएगा?

२२ आत्मनिर्भरता

(कोझिकोड, फरवरी १९६६)

प्रत्येक व्यक्ति की मृत्यु का कारण दर्ज होता है, पर रिकार्ड में हमें एक भी मृत्यु ऐसी दर्ज हुई नहीं मिलती जिसका कारण भुखमरी हो। एक व्यक्ति सडक के किनारे पडा हुआ मिला, अतिम सास ले रहा था। उसे उठाकर निकट के अस्पताल में ले जाया गया, पर वहाँ पहुँचने के पूर्व ही उसने दम तोड दिया। डाक्टर से लिखवा लिया गया कि वह किसी रोग से मरा। इसी प्रकार सारे मामले दर्ज होते हैं। मेरे इस कथन पर अधिकारी व्यक्ति ने मुझसे कहा– 'क्या आप समझते हैं कि हम इतने निष्ठुर हैं?' मैंने

कहा– 'मैं किसी राजनीतिक दल का सदस्य नहीं हूँ कि आपका विरोधी रहूँ। आपको निष्ठुर कैसे कह सकता हूँ? यह तो आपको तय करना है कि आप क्या हैं। यह निर्णय करने के लिए मैं एक उदाहरण देता हूँ। उस सज्जन के घर के निकट एक सस्ते अनाज की दुकान है। एक वृद्ध अपना राशन लेने वहाँ गया। वह कुछ नहीं पा सका। अपने परिवार को क्या देता? कई दिन बीत गए। वह कतार में खडा रहता। चूँकि वह वृद्ध था, बाकी लोग आगे बढ लेते थे। वह पीछे धकेल दिया जाता। जब किसी भाँति पहुँचा, तब तक अनाज खत्म हो गया। उसे दूसरे दिन आने के लिए कहा गया। भूख से वह अधमरा हो चुका था और यह दर्द भी दिल में था कि घर में बच्चे भूखे हैं, उन्हें क्या मुँह दिखाऊँ? वह जहाँ खडा था वहीं गिर पडा। उसकी मृत्यु का कारण हृदयक्रिया बद होना बताया गया। मैंने कहा, बात सही है, पर मुझे ऐसा एक भी उदाहरण बताइए कि जो मरता है और उसकी हृदयक्रिया बद नहीं होती? अतिम क्षणों में प्रत्येक व्यक्ति के हृदय की क्रिया बद होती ही है। पर उसका हृदय क्या भूख के कारण बद नहीं हुआ?'

अन्न-सकट और निदान

हम सही दृष्टि से विचार क्यों नहीं करते? जब तक जनादोलन नहीं होता, वास्तविक स्थिति का ज्ञान ही नहीं होता। पता नहीं, सही रिपोर्ट दी जाती है या नहीं या कार्यवाही नहीं की जाती। जब तक सारी जनता की आवाज नहीं उठती, तब तक जो लोग शीर्षस्थान पर हैं, उन्हें कुछ सुनाई ही नहीं देता। उनके कानों में चीखना जरूरी हो गया है। चीखने से शायद वे कुछ सुन सकें। पर तथ्य के बावजूद जो तत्त्व सरकार का दायित्व सँभाले हुए हैं, उन्हें हमें जागृत करना होगा। मुझे पता नहीं, इन आदोलनों से और क्या लाभ मिलता है। हो सकता है राजकीय दलों की प्रतिष्ठा बढती हो। मैं यह जानता नहीं, क्योंकि मैं राजनीतिक दल में काम नहीं करता। पर हाँ, मैं इतना जरूर कह सकता हूँ कि इससे खेतों में अधिक अनाज का उत्पादन नहीं होता। जैसा आदोलन हम करते हैं, क्या हमारे खेत उसे देखकर अधिकाधिक अनाज का उत्पादन करने लगेंगे? यह सभव ही नहीं। पर यह भी तथ्य है कि लोगों को अनाज नसीब नहीं हो रहा। उनके कष्ट दूर करने के हमें प्रयास करने होंगे।

सरकार की अपनी पद्धति है। उसके विभाग बने हुए हैं। अनाज

एक स्थान से दूसरे स्थान तक मुक्त रूप से नहीं जा सकता। जो सरकार में हैं, वे अनाज-व्यापारियों पर भरोसा नहीं करते, किसी व्यापारी पर विश्वास नहीं करते। स्वय को छोड उनका अन्य किसी पर विश्वास नहीं। वे व्यापारी को अप्रामाणिक मानते हैं। किसान पर भरोसा नहीं करते, क्योंकि उनकी नजर में वह उत्पादित अनाज को मडी में नहीं लाने देता। उद्योगपति बेइमान है। श्रमिक ईमानदार नहीं है। सक्षेप में, देश में हर कोई अप्रामाणिक है। तब तो ऐसे अप्रामाणिक तत्त्वों द्वारा चुना गया प्रतिनिधि भी इन सारे गुणों का प्रतिनिधित्व करनेवाला बडा अप्रामाणिक हुआ। इस प्रकार के अविश्वास के कारण अलग विभाग बनाए गए। सीमाएँ बाँधी गई। बहुत से नियत्रण लगाए गए। तब होता क्या है कि कहीं गेहूँ ४०-४५ रुपए का एक माप बिकता है, तो वहाँ से २०-२५ मील की दूरी पर १२५-१४० रुपए तक। अनाज व्यापारी जो नहीं कर सकता, वह राज्य कर रहा है। हम जानते हैं कि सरकारी व्यवस्था में उच्चपदस्थ कर्मचारी अधिक होते हैं। उनका खर्चा ज्यादा है। उसपर भ्रष्टाचार का बोलबाला है। परिणामत उत्पादन-शुल्क बढ जाता है। मुझे एक प्रदेश का पता है। पडोस के प्रदेश से उसने अनाज लेना चाहा। २५ प्रतिशत की मार्जिन पर अनाज-व्यापारी माल उठाने को तैयार थे, पर वहाँ की सरकार ने कहा कि उत्पादन-मूल्य पर २० प्रतिशत अधिक देना कालाबाजार होगा और व्यापारियों को बताया गया कि सरकार स्वय व्यापार करेगी। सरकारी विचार-विमर्श में २ महीने बीत गए। आखिर सौदा तय हुआ। उसके बाद सरकारी दुकानों से वही अनाज १३० प्रतिशत अधिक मार्जिन से बेचा गया। २५ प्रतिशत कालाबाजार था, तो १३० प्रतिशत अधिक को क्या कहें? भ्रष्टाचार के रहते यही होना था। सरकार जितना नियत्रण करना चाहेगी, जनता की कठिनाइयाँ उतनी ही बढेंगी। इन कारणों से अनाज आयात करने पर भी ये समस्याएँ बनी ही रहीं। तब क्या हमारे बधुओं को पीडा भुगतने के लिए छोड दिया जाए? भूख से मरने दिया जाए?

लोगों को एक समय का खाना भी नहीं मिल पाता, यह दु ख देनेवाली बात है। हममें से कई सुशिक्षित हैं, सपन्न हैं। उन्हें इन स्थितियों का सामना नहीं करना पडा है, इस कारण वे इसे समझ नहीं पाते, इसकी उपेक्षा करते हैं। सडक के किनारे बैठा भिखारी देखकर वे सोचते हैं कि वह इसका हकदार नहीं। हममें निष्ठुरता का भाव आ रहा है। मैंने एक माह पूर्व शिकायत सुनी थी कि खाद्यान्न की इस कमी का लाभ ईसाई

मिशनरी उठा रहे हैं। बीस-पच्चीस करोड रुपये उन्होंने इन भूखों को दो ग्रास अनाज मिले इसलिए दिए हैं। इसके बदले में वे ईसाइयत की ओर झुकेंगे और फिर लोग कहेंगे कि देखो, वे धर्मांतरण की कोशिश कर रहे हैं। लेकिन हम क्या कर रहे हैं? क्या उन भूखे लोगों के प्रति कुछ सहानुभूति हमारे हृदय में जगती है? उनकी सहायता करने की इच्छा वास्तव में हममें है? उत्तर यही है कि हममें से अधिकाश कुछ नहीं करते। इस समस्या पर कुछ सोचते तक नहीं। अपने समाज-बाधवों के प्रति हमारा यह आत्मकेंद्रित व्यवहार है। क्या हमारी समस्याओं की जड में यही कारण नहीं है?

खाद्यान्न-सकट को ही लें। हममें से प्रत्येक यह विचार क्यों नहीं करते कि हम जो कुछ पाते हैं, उसमें से एक कौर जरूरतमद को भी दें, जिसे कुछ भी नहीं मिलता। अर्थात् अपना भोजन मिल-बॉटकर खाने के लिए तैयार हों। समस्या इतनी बडी नहीं है कि उसे हल नहीं किया जा सकता। हमारे पूर्व प्रधानमत्री लालबहादुर शास्त्री कहते थे कि सप्ताह में एक दिन हम उपवास करें, तो इस समस्या से निपटा जा सकता है। मतलब समस्या इतनी भयावह नहीं, जितना लोग सोचते हैं। सप्ताह के १४ भोजन में से एक नहीं लेने से समस्या का निपटारा हो सकता है, तो कोई बडी बात नहीं। पर क्या यह हो रहा है? और क्या वह बचाया हुआ अनाज भूखों के पास पहुँचता है? देश में ऐसे बहुत लोग हैं, जो दुर्भिक्ष का सामना करने के लिए, पीडितों को राहत दिलाने के लिए कुछ दे सकते हैं। उनके मुँह पर खुशियाँ लोटा सकते हैं। पर ऐसा हो नहीं रहा। इसलिए नहीं हो पा रहा है क्योंकि हम अपनी परपरा को विस्मृत कर बैठे हैं? हम भूल गए हैं कि हम कौन हैं? हमारा परस्पर क्या सबध है? हम केवल अपने हितों में ही लिप्त हैं, और किसी बात की चिता ही नहीं है। हमारी परपरा में गृहस्थ का यह कर्तव्य है कि भोजन तैयार होने पर वह बाहर जाए ओर पता करे कि क्या किसी को भोजन की आवश्यकता है। ऐसा कोई हो तो उसे घर में सम्मान के साथ लाकर, सतुष्ट करे और जब वह चला जाए, तब जो भोजन बचा हो, वह भगवान का प्रसाद मानकर ग्रहण करे। जिन गुणों से हमारा इतिहास गौरवान्वित हुआ था, वह मन-मस्तिष्क की विशेषता थी, जिसका हमें विस्मरण हो गया है। इसको पुनर्जीवित करना है। हमें यह निश्चय करना है कि अपने नगर में, अपने ग्राम में, निकटवर्ती ग्राम में कोई भी भूख के कारण नहीं मरने पाए। हमारे पास जो अनाज

है, जो रोटी है वह उसके साथ बॉटकर खाएँगे। यही हमारी परपरा के अनुरूप होगा। यही नहीं तो जनता की सारी पीडा इससे दूर होगी। सकट पर हम मात कर सकेंगे, पर इसके लिए अपनी परपरा के प्रति आत्मीयता व सम्मान होना चाहिए। सारी जनता के साथ एकात्मता का भाव चाहिए। यह प्रेरणा चाहिए कि लोगों के लिए कष्ट उठाना हमारा धर्म है, कर्तव्य है।

कृषि उत्पादन की दिशा

कल शाम को मैंने खाद्यान्न समस्या का उल्लेख किया था। मैं देशभर में प्रवास करता रहता हूँ। कुछ बातें मेरी नजरों में आती हैं। आजकल लोग नकद पेसे के प्रति अधिक आसक्त हो गए हैं। यह धन का लोभ हमें खाए जा रहा है। वास्तव में हमें धन के प्रति अति लगाव नहीं होना चाहिए। हमारी सपत्ति का अब केवल कागजी मूल्य ही रह गया है। उसका मूल्य घट चुका है। इस धन-लाभ के लालच में लोग अब कृषि में नकद-फसलों (Cash Crops) के प्रति झुकते जा रहे हैं। यह कई स्थानों पर चल रहा है। कुछ स्थानों पर मैंने देखा कि लोग तम्बाकू, मूगफली की खेती में जुटे हैं, तो कुछ स्थानों पर गन्ने की खेती है। इस कैश क्रॉप में हमारी कृषि-भूमि का बहुत सा हिस्सा जाने से खाद्यान्न उत्पादन कम होना ही था। मैंने कई लोगों का ध्यान इस ओर आकर्पित किया।

हम उन्हें सुझा सकते हैं कि हमारी कृषि-उत्पादन की सीमा है। हम इतने सारे लोग यहाँ रहते हैं। हमारी भूमि इतनी है। इस भूमि से हमें इतने लोगों के लिए आवश्यक अनाज का उत्पादन करना है। हमारे कुछ बधु ऐसे हैं जो अन्य आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन में लगे हैं। इस कारण वे कृपि कार्य नहीं कर सकते। उनकी अपनी खेती नहीं, अत वे खाद्यान्न का उत्पादन नहीं करते। उनका भी पेट भरना है। हमें यह अनुमान करना होगा कि सभी के लिए आवश्यक कितना अनाज उत्पन्न कर सकते हैं। इसके लिए कितनी भूमि आवश्यक होगी। फिर यदि भूमि बचती है तो वह कैश क्रॉप्स के प्रयोग में लाई जाए। इस दृष्टि से सोचें तो खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता कठिन नहीं।

हमारी यह मातृभूमि इतनी उर्वरा है कि हम सभी के लिए ही नहीं, बल्कि दुनिया के अन्य लोगों के लिए भी खाद्यान्न उत्पन्न कर सकती है। परस्पर सहयोग के द्वारा विचार हो तो परिणाम अच्छे मिल सकते हैं। हमारी सफलता का परिचय अन्य लोगों को कराकर उन्हें भी इस हेतु

प्रोत्साहित किया जाए कि ये सारे प्रश्न सुलझाए जाएँ। दूसरों पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं। यह आत्मनिर्भरता, आत्मविश्वास बढ़ाना होगा। अपने बंधुओं को जागृत करना होगा।

अपने प्रवास में मैं चेन्नै गया था। वहाँ अपने कार्य से सहानुभूति रखनेवाले सम्माननीय व्यक्ति श्री सच्चिदानंद पिल्लई मिले। चर्चा के दौरान उन्होंने बताया कि शैव संप्रदाय के मठों के जो प्रमुख हैं, उनका एक सम्मेलन हुआ और उसमें यह तय हुआ कि हमारे लोगों का ईसाइयत में जो धर्मांतरण जारी है, उसे रोकना ही होगा। मैंने उन्हें सुझाया कि इन मठों के अपने शिष्यवृंद हैं, अनुयायी भी बहुत हैं, पैसा भी है। ये सब सहयोग कर पर्याप्त समय इस कार्य हेतु दें। ऐसा कोई कार्यक्रम बनाएँ कि प्रत्येक व्यक्ति, जिसके पास वित्तोपार्जन का साधन है, खाद्यान्न जमा करे। एक मुष्टि भी पर्याप्त होगी। पीडितों को भूख से बचाने हेतु खाद्यान्न आवश्यक है, उनके लिए प्रतिदिन थोडा चावल निकालकर अलग रखें और मठों के माध्यम से आवश्यक क्षेत्रों में इसका समुचित वितरण कराया जाए। यह हो पाया तो हम जनता की भारी सेवा कर पाएँगे। आज की कठिनाई से मार्ग निकल आएगा। जनता का स्नेह, विश्वास, सहानुभूति हम अर्जित कर सकेंगे। उनके मन में अपनी जीवनधारा के, धर्म के प्रति श्रद्धा भाव उत्पन्न कर सकेंगे और दूसरों के द्वारा उनको शोषण से बचा सकेंगे। वे सज्जन मुझसे बडे थे, स्नेहशील थे। उन्होंने कहा कि वे सभी मठाधिपतियों से इस 'मुष्टि-यज्ञ' का कार्य हाथ में लेने तथा इस कार्य को सर्वत्र प्रसारित करने के लिए अवश्य कहेंगे।

२३ अंतर्बाह्य संकटों का निदान

(दिल्ली, अक्तूबर १९६७)

अपनी परंपरा श्रेष्ठ है, त्याग, यज्ञ तपस्या एवं पवित्रता की है। अति प्राचीनकाल से अब तक अनेकानेक महापुरुषों ने हमारा मार्गदर्शन किया है। उनके त्याग एवं तपस्या से पुनीत इस समाज में जन-साधारण आज व्यक्तिनिष्ठ होता जा रहा है, यह खेद का विषय है।

अपने देश के बहुत से लोग विदेशियों को भौतिकवादी, देहात्मवादी और भोगवादी कहते हैं। ऐसा कहा जाता है कि उनके जीवन में उससे और

ऊँचा कोई विचार नहीं है। श्रेष्ठ जीवन की कल्पना या आग्रह की उनमें कमी है। परतु अनुभव तो ऐसा है कि वहाँ का व्यक्ति अपने देश एव समाज के लिए अपनी सपत्ति अर्पण करता है, प्राण देने के लिए भी प्रस्तुत हो जाता है। अभी बिहार के अकालपीडित लोगों की सहायतार्थ विदेशों से विपुल सहायता आई। विभिन्न नामों से उनके फाउडेशन चलते हैं, जिनको अगणित धन अमरीका आदि से प्राप्त होता है। ये फाउडेशन या सस्थाएँ शिक्षा, चिकित्सा आदि के विभिन्न कार्यो में लगी हैं। लेकिन उनके इस कार्य के पीछे एक दृष्टि और भी है और वे उसके लिये प्रयत्नशील हैं।

२४ 'दरिद्रनारायणो भव'

(दिल्ली, नवबर १९७०)

सामान्य मनुष्य सर्वप्रथम खाने-पीने, अर्थात् इद्रिय सुख में ही रमना चाहता है। फिर जैसे-जैसे उसका विकास होता है, वह विभिन्न कलाओं में रुचि लेने लगता है। विभिन्न कलाओं का रसास्वादन करने की बातों में प्रवृत्त होता है। इसमें उसका मन लगता है। इसके बाद वह ज्ञान की उपासना करने लगता है। सृष्टि के सूक्ष्म रहस्यों की जानकारी प्राप्त करने के लिए वह बेचैन होता है और ज्ञान सपादन कर सतुष्ट होता है। अत में चराचर सृष्टि में व्याप्त एक ही परमसत्य का साक्षात्कार कर भगवान की उपासना करने लगता है। इस प्रकार मनुष्य जड से चैतन्य की ओर, भोगवाद से भगवत्प्राप्ति के श्रेष्ठ अध्यात्मवाद तक का प्रयास करता है। सपूर्ण विश्व में मानव-विकास की यही दिशा दिखाई पडती है। इस सदर्भ में हम साम्यवाद अथवा सोशलिज्म का विचार करें तो हमें विदित होगा कि यह विचारधारा मनुष्य को आध्यात्मिक धरातल से नीचे खींचती है। इस विचारधारा में मनुष्य-जीवन की इतिकर्तव्यता खाने-पीने और मौज करने में ही मानी गई है। यही इसकी शिक्षा है।

मनुष्य को पशु बनानेवाला दर्शन

क्या साम्यवाद को मनुष्य की प्रगति का मार्ग कहा जाए? प्रगतिशील कहलानेवालों का यह कैसा थोथा दभ है? सच तो यह है कि यह प्रतिगामी तत्त्वज्ञान है। जिसे जड-निरीश्वर (Retrograde) कहते हैं—ऐसा यह पतनशील तत्त्वज्ञान है। यह मार्ग मनुष्य को पशु बनाने की ओर प्रवृत्त करता है। वह

भी आधा पशु नहीं, पूरा हिंसक पशु। इसलिए साम्यवाद हमारे लिए प्रथम कोटि का शत्रु है। आज उसी साम्यवाद का फैलाव हो रहा है। अनेक लोग उसके शिकार होते हुए दिखाई पड रहे हैं।

स्वत्व की अवहेलना के परिणाम

अपने देश में इसके कई कारण हैं। इनमें से एक कारण दरिद्रता भी है। देश में फैली दरिद्रता का लाभ अनेक अहिंदु लोगों को मिलता है। भारत की दरिद्रता का लाभ उठाकर अहिंदू लोग अपना प्रभाव फैलाने का यत्न करते हैं। दूसरा कारण यह है कि विगत सौ-डेढ सौ वर्षों में हमारे देश में धर्म श्रद्धा का ह्रास हुआ है। हमारे देश के ही अनेक नेताओं द्वारा धर्म का तिरस्कार किए जाने के कारण धर्मश्रद्धा प्राय नष्ट हो चुकी है। तीसरी बात यह है कि विगत वर्षो मे राष्ट्रीयता की शुद्ध भावना का विचार ही छूट गया है।

राष्ट्रीयता को साम्प्रदायिक और सकुचित कहकर उसकी भीषण अवहेलना हुई है। इससे राष्ट्र के सच्चे स्वरूप का विस्मरण हो चुका है। इन तीनों कारणों से समाज की तरुण पीढी वैचारिक क्षेत्र में आधारहीन हो गई है। तरुणों की बुद्धि के लिए कोई आधार ही शेष नहीं बचा। देश, धर्म, राष्ट्र किसी भी प्रकार की शुद्ध भावना उन्हें नहीं मिलती। परिणाम यह है कि उन्हें चारों ओर अराष्ट्रीय विचारों के जो बवडर दिखाई पडते हैं, उनकी ओर वे खींचे जाते हैं। इन बवडरों का विस्तार होता रहता है। इन कारणों से हमारे राष्ट्रीय जीवन पर जो आघात होते हैं, उनका लाभ अहिंदू लोगों को ही होता है। इससे उनके स्वार्थ सिद्ध होते हैं। विभिन्न दल और जातियों के बीच आपसी सघर्ष की जो दुर्भाग्यपूर्ण क्रिया चल पडी है, वह हमारे मार्ग में बडा रोडा बनी है। साथ ही कुछ लोग सत्ता पर अपना कब्जा बनाए रखने के लिए उन सभी लोगों को, जो राष्ट्रविरोधी, धर्मविरोधी, हिंदू-समाज विरोधी हैं, एकत्र करने का प्रयत्न कर रहे हैं। समाजविरोधियों को आत्मीय मानना और अपनों को तिरस्कृत करने की यह प्रवृत्ति हिंदू समाज पर बहुत बडा आघात करनेवाली है।

मानवीय सवेदना की आवश्यकता

इन सब परिस्थितियों में से हमें मार्ग निकालना है। अपने हिन्दू समाज की एकता निर्माण करनी है। समाज को स्वत्वसपन्न, उत्कर्षमय, स्वाभिमानी बनाना है। समाज की सुरक्षा के लिए प्रयत्न करना है। इसलिए

आवश्यक है कि अपने सब बधुओं को इन विकृतियों से दूर रखकर, हम सच्ची, हार्दिक तथा आत्मीयतापूर्ण एकता उत्पन्न करें। अत करण की आत्मीय भावना थोथी नहीं, सच्ची होनी चाहिए। मुँह में कुछ और मन में कुछ, ऐसी दिखावटी सहानुभूति नहीं चाहिए। समाज के प्रत्येक बधु के लिए हृदय में खरी आत्मीयता का भाव आवश्यक है। सच्ची आत्मीयता कैसी होती है, इसका एक उदाहरण मैं आपके समक्ष रखता हूँ—

आठ-नौ वर्ष की एक छोटी गरीब लडकी थी। भीख माँगती थी। उसकी जाति वगैरह का मुझे पता नहीं। वह अत्यत बेहाल थी। शरीर पर जैसे-तैसे लज्जारक्षण मात्र के लिए ही उसके शरीर पर कपडे थे। पता नहीं, कितने दिनों से उसने स्नान नहीं किया था। उसके बाल बिखरे थे। भिक्षा माँगते हुए उसे रोटी का एक टुकडा मिला। रोटी खाने का विचार करते हुए वह नल के पास जाने लगी, ताकि रोटी खाकर पानी पी सके। उसकी चाल से पता लगता था कि वह कई दिनों से भूखी थी। जिस नल की ओर वह आ रही थी, वहाँ एक छोटा बालक था। यह बालक उससे भी छोटी उमर का था। लगता था कि कई दिनों से उसे भी भोजन नहीं मिला है। ऐसी शोचनीय अवस्था में वह नल के पास बैठा था। इस बालक की उस लडकी से पहले की कोई पहचान रही हो, ऐसी बात नहीं। इस दीन-हीन अत्यत कृश बालक ने उस लडकी को हाथ में रोटी का टुकडा लिए नल के पास आते देखा, तो उसकी आँखों में रोटी पाने की इच्छा तैर गई। वह अत्यत आशाभरी दृष्टि से रोटी की ओर देखने लगा। लडकी ने भी उसे देखा और वह समझ गई। उस बालक के पास आकर वह लडकी बोली, 'अरे, क्या तुझे कुछ भी खाने के लिए नहीं मिला?

यह घटना मेरी आँखों के सामने ही घटित हुई। मैं इसका पूरा वर्णन कर पाने में असमर्थ हूँ। परतु विचार आता है कि हम दानी होने का दभ करते हैं, वैराग्य, त्याग का दभ करते हैं, किंतु क्या अपने पास ऐसी सच्ची आत्मीयता का भाव है? अपने स्वय के पेट की भूख का विचार न करते हुए अपरिचित बालक को रोटी देने की ऐसी सच्ची आत्मीय भावना क्या हममें है?

कुछ दिन पूर्व कुछ बडे उद्योगपति और धनवान कहे जानेवाले लोगों की बैठक में मुझे बोलने के लिये कहा गया था। मैंने कहा— 'जरा सोचना चाहिए कि इतने सब धनवान यहाँ एकत्रित हैं, सब प्रकार के

सुखोपभोग के साधन उनके पास हैं। किंतु क्या मन में अपने समाज का विचार छूता है कि अनेक लोग भूखे हैं। उन्हें भोजन नहीं मिलता। यह जानकारी होते हुए भी अपने गले में अन्न का कौर कैसे उतर पाता है?

कहने का अर्थ यह है कि सच्ची आत्मीयता चाहिए। ऐसी आत्मीयता जिसके कारण लगे कि अपना इतना विशाल हिंदू समाज भूखा, अधभूखा है, शिक्षा की व्यवस्था नहीं है, ऐसी स्थिति में हमें सुखपूर्वक रहने का भला क्या अधिकार है? ऐसा विचार कर एक परिवार में कम से कम किसी एक दुःखी बंधु को आश्रय देने का निश्चय करना चाहिए। अपने समाज के किसी एक साधनहीन बंधु को गले लगाकर उसे अपने परिवार का एक सदस्य जैसा स्वीकार कर, उसके रहने-खाने और शिक्षण की व्यवस्था करने का दायित्व स्वीकार करना चाहिए।

यदि हमने अपने घर में एक बंधु को आत्मीयतापूर्वक, पारिवारिक स्नेह देकर स्वीकार किया और उसे सब प्रकार से सक्षम बनाकर आगे बढ़ाया, तो उसकी दरिद्रता का लाभ उठाकर अहिंदू समाज द्वारा होनेवाला आक्रमण नहीं हो सकेगा। मैं अपने उन दरिद्र बंधुओं को दोष नहीं देता। दोष अपना है। स्वतः मैं दोषी हूँ और आप सब दोषी हैं। इसलिए अपना यह दोष जीवन से निकाल डालना चाहिए। इस दोष से मुक्त होने का प्रयत्न करना चाहिए।

निराशा को छोड़कर सच्ची आत्मीयता से अपने समाज बंधुओं के कष्ट दूर करने के लिए सन्नद्ध होना चाहिए। सोचना चाहिए कि विदेशों से आनेवाले पर्यटकों के समक्ष हाथ पसारकर भीख माँगता हुआ अपना समाजबंधु दिखाई देता है, क्या यह हमारे लिए अपमानास्पद बात नहीं है? ऐसी स्थिति निर्माण करनी चाहिए कि विदेशी ही क्यों, किसी के भी समक्ष कोई हाथ पसारता हुआ दिखाई न दे। हमें अपने मन में यही विचार दृढ़ करना चाहिए कि अपने समाज के प्रत्येक बंधु को हम स्वावलंबी बनाकर खड़ा करेंगे।

❀ ❀ ❀

> हमारी मातृ-भूमि ने एक रूप मे ही माता पिता एवं गुरु तीनो का कर्तव्य हमारे प्रति पूर्ण किया है। — श्री गुरुजी

२५ अहिंदूकरण — अंग्रेजो की चाल

(कानपुर, सितंबर १९७२)

हम हिंदू-समाज को संगठित करने का लक्ष्य लेकर कार्य कर रहे हैं। हमने इस समाज में जन्म लिया। इसमें ही हमें सब प्रकार की विकास की सुविधाएँ प्राप्त हुई। जगत् में सम्मान और कीर्ति मिली। श्रेष्ठ तत्त्वज्ञान मिला, उसके अनुसार आचरण करनेवाले श्रेष्ठ महापुरुषों की परंपरा प्राप्त हुई, उनके आदर्शों पर चलकर हम अपना और सामूहिक शक्ति द्वारा विश्व का भी कल्याण कर सकते हैं। इस प्रकार इस समाज का हम पर बहुत बडा ऋण है। इस समाज को सबल और सुखी बनाना हमारा कर्तव्य है। इस कर्तव्य की पूर्ति किए बिना हमारा जीवन निरर्थक ही कहा जाएगा। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि समाज का घटक होने के नाते समाज को आपत्ति तथा दुःखों से मुक्त करने का कार्य हम करें।

सेवाकार्य विज्ञापनों से नहीं

जहाँ कहीं भी दुःख दिखाई दे, वहाँ दौडकर उसे दूर करने का प्रयत्न करना ही चाहिए। इसके लिए कोई योजना बनाने या कोई विशेष पद्धति विकसित करने की आवश्यकता नहीं है। समाज के जागरूक घटक होने के नाते, यह सब कार्य करना हमारा स्वाभाविक दायित्व है। स्वस्थ समाज की यह एक अनिवार्य स्थिति है। पर आज की स्थिति बडी विचित्र है। चुनावों में परनिंदा और आत्मस्तुति का बोलबाला रहता है, जबकि ये दोनों ही पाप हैं। आज यह विचार करने की महती आवश्यकता है कि हम जनतंत्र की एक ऐसी चुनाव-पद्धति विकसित करें, जिसमें इस प्रकार के पाप-कर्म की गुंजाइश ही न हो। परनिंदा और आत्मस्तुति की निषिद्धता की अपनी परंपरा के आधार पर अपनी स्वाभाविक प्रकृति के अनुरूप हमें जनतंत्र और चुनाव-प्रणाली की ऐसी राष्ट्रीय पद्धति का निर्माण करना होगा, जिसमें लोग स्वतंत्रतापूर्वक मतदान भी कर सकें और सुयोग्य प्रतिनिधियों का निर्वाचन भी हो सके। लेकिन अपनी प्राचीन पद्धति का ज्ञान न होने के कारण हम अभी तक दूसरों की नकल ही कर रहे हैं। अपनी परंपरा की मूल प्रकृति के विश्वासी होने के कारण ही केवल संघकार्य का उद्देश्य बताते हैं, उसके द्वारा किए गए परोपकार एवं सेवाकार्य का विज्ञापन नहीं करते।

अब हम अपने संघ के लक्ष्य का विचार करें। समाज की वास्तविक सेवा क्या है? समाज के प्रत्येक अभाव और दुर्बलता को समाप्त करना ही वास्तविक और स्थायी सेवा है। हम देखें कि हमारे समाज में वास्तविक कमी या कमजोरी क्या है? इतिहास बताता है कि अतीत में हम बहुत समृद्ध थे। दूर-दूर तक हमारा प्रभाव और पराक्रम फैला हुआ था। विदेशियों ने भी इसका वर्णन किया है। फिर, जैसा कि हम जानते हैं, अनेक वर्षो तक सुखी-समृद्ध जीवन बितानेवाला परिवार, अनेकानेक दुर्गुणों और दुर्बलताओं से भर जाता है। ठीक वैसी ही गति अपने समाज की हुई। स्वर्णभूमि भारत में भी अनेक दुर्गुण प्रविष्ट हुए। परिणामस्वरूप एक देश, एक राष्ट्र और एक समाज की अवधारणा के स्थान पर छोटी-छोटी निष्ठाएँ उत्पन्न होने लगीं। हमारे राजाओं के आपसी कलह के कारण समाज की शक्ति का ह्रास हुआ। ऐसे समय को स्वर्णावसर समझकर, परकीयों ने हमारी स्वर्णभूमि पर आक्रमण किया। पहले उन्होंने धन-संपत्ति ले जाने के लिए आक्रमण किए। बाद में उन्होंने देखा कि इस विघटित समाज पर पूर्ण विजय प्राप्त करते हुए राज्य करना भी कठिन नहीं है। अतः उन्होंने अपना शासन भी यहाँ स्थापित कर लिया। इसके परिणामस्वरूप हमारे यहाँ का धन गया और दैन्य आया, स्वातंत्र्य गया और दासता आई। दासता में स्वाभाविक रूप से अनेक प्रकार के गुणों का ह्रास और दुर्गुणों का विकास होता है। अतः समाज दुर्गुणी बनने लगा। इस प्रकार की स्थिति अभी तक चली आ रही है। इसी अनिष्टकारी स्थिति को समाप्त करने के लिए, विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न नामों से काम करनेवाले अपने छोटे-बड़े सभी कार्यकर्ता प्रयत्नशील हैं।

२६. सत्य की पुनर्स्थापना

(बंगलौर, फरवरी १९७३)

नित्य के अनुसार सभी प्रांतों का दौरा करते हुए मैं यहाँ आया हूँ। पिछले ३० वर्षो से बंगलौर में संघकार्य चल रहा है। अपने वयोवृद्धों में से अनेक व्यक्ति किसी ना किसी रूप में संघ के संपर्क में आ चुके हैं। वे संघकार्य को भली-भाँति जानते हैं। अतः मेरे समक्ष प्रश्न है, कि ऐसी कौन सी बात कहूँ जो संघकार्य को अधिक समझने में आपके लिए सहायक हो? इसका उत्तर मुझे कठिन प्रतीत हो रहा है। इसलिए पुनरावृत्ति होगी। अपने

पुरातन ऋषियों ने कहा है कि पुनरावृत्ति होने पर भी सत्य का पुन-पुन उच्चारण करते रहना चाहिए, जिससे कि अपने अत करण में वह दृढतापूर्वक स्थापित हो सके। उनके इसी कथन पर विश्वास रखकर सघ का उद्देश्य प्रस्तुत करने का प्रयास करूँगा।

सघकार्य का एकमेव लक्ष्य

अपने हिदू समाज का एकात्मतायुक्त सगठित जीवन खडा करने के एकमेव लक्ष्य को सामने रखकर सघकार्य प्रारभ हुआ है। यह कठिन और दुष्कर है। किंतु इसे सपन्न करना ही होगा। हिदू-समाज की स्थिति आज ऐसी है कि कुछ बातें हमें आघात पहुँचाती हैं। इनमें सबसे प्रमुख बात है अपने अनेक हिदू बधुओं का, यहाँ तक कि नेतृत्व करनेवाले, पढे-लिखे, साधनसपन्न, समझदार हिदू बधुओं का भी स्वय को हिन्दू नहीं कहलाना। स्वय को हिदू न कहलाने के समर्थन में वे बडे विस्तृत तर्क प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं।

महायोगी अरविद ने कहा है 'यह हिदू-राष्ट्र है।'

मुझे स्मरण है कि किसी ने स्वामी विवेकानद को यह कहते बताया कि विश्व धर्म ही समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के द्वार खोलेगा। अपनी न्यूनाधिक क्षमता के अनुसार मैंने भी स्वामी विवेकानद की कृतियों का अध्ययन करने का प्रयास किया है। मैंने ऐसे असख्य परिच्छेद पढे हैं, जिनमें उन्होंने हम सबको आग्रहपूर्वक निर्देश दिया है कि हम स्वाभिमानपूर्वक खडे हों तथा अपना मस्तक ऊँचा उठाकर उच्च स्वर में कहें कि 'मैं हिदू हूँ।' महायोगी अरविद ने जहाँ कहीं भी सनातन धर्म का उल्लेख किया है, कहा है कि यह हिदू-राष्ट्र है। इन महर्षियों की उक्तियों पर दृष्टि डालने का यदि हम प्रयत्न करें, तो दिखाई देगा कि हिदू कहने में लज्जा अनुभव करने की प्रवृत्ति को इन महान विचारकों का कोई समर्थन प्राप्त नहीं होता।

हिंदुत्व की अनुभूति के अभाव का दुष्परिणाम

'हम हिदू हैं'- इस अनुभूति का अभाव, अपने देश की अनेक दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के लिए कारणीभृत है। उदाहरण के लिए जातियों-उपजातियों और भाषाभिमान के परिणामस्वरूप उत्पन्न विभेदों के कारण अपना हिन्दू-समाज टुकडों में बँट गया है। आज से २० वर्ष पूर्व सोचा जाता था कि भाषा एक जोडनेवाली कडी है। कुछ सीमा तक यह ठीक भी है। किंतु उतना नहीं, जितना हमारे राजनीतिक नेताओं का कहना है। आप

जानते हैं कि महाराष्ट्र के कुछ क्षेत्र में मराठी बोलनेवाले ही ऐसे लोग हैं, जो स्वय को प्रदेश कहलानेवाली स्पष्ट राजनैतिक इकाई के रूप में पृथक करना चाहते हैं। जो लोग तेलुगू बोलते हैं, वे आज आध्र को दो या सभवत तीन हिस्सों में तोडने के लिये केंद्र से लड रहे हैं। इस प्रकार केवल भाषा के आधार पर बननेवाली इकाई को समरसतापूर्ण मानने की धारणा की भी धज्जियाँ उड गई हैं।

ऐसी परिस्थिति में अपने नेताओं को साहस के साथ आगे आना चाहिए। सपूर्ण देश का विचारकर, प्रदेशों की पुनर्रचना प्रशासनिक व अन्य सुविधाओं की दृष्टि से ही करनी चाहिए। इस पुनर्रचना से एक भाषा के अनेक प्रदेश हो सकते हैं या अनेक भाषाओं का एक प्रदेश भी हो सकता है। इस सपूर्ण पुनर्रचना के परिणामस्वरूप उत्तरप्रदेश, गुजरात आदि एक से अधिक प्रदेशों में विभक्त हो सकते हैं। यह अनिवार्य नहीं है कि छोटे प्रदेशों की माँग करनेवाले राष्ट्रविरोधी, अराष्ट्रीय या देशद्रोही हों। सपूर्ण देश के प्रति इनकी भक्ति के विषय में शका करने का कोई कारण नहीं। किबहुना वह अन्याय होगा।

विघटनकारी शक्तियो के कारण सकट

हम देखते हैं कि विघटनकारी शक्तियाँ सपूर्ण समाज में भयकर सकटकारक कार्य कर रही हैं। उत्तर और दक्षिण विभक्त हैं। पुराने दिनों में रुड्यार्ड किपलिग ने लिखा था— 'पूर्व पूर्व है और पश्चिम पश्चिम, दोनों का मेल नहीं होगा', किंतु सास्कृतिक ओर वैज्ञानिक आधार पर अब पूर्व और पश्चिम का मेल हो रहा है। इसके विपरीत अपने देश में, जहाँ हम हजारों वर्षो तक एक रहे हैं, यह कहने का प्रयत्न कर रहे हैं कि 'उत्तर उत्तर है और दक्षिण दक्षिण, दोनों कभी नहीं मिल सकते।' यह स्थिति अत्यत दुर्भाग्यपूर्ण है।

सकट दूर करने हेतु मूलगामी उपाय

अपने नेतागण इसका कारण ओर उपाय खोज रहे हैं। किंतु जब तक मूलभूत कारण के प्रति ऑखें मूँदे रहेंगे, उनके द्वारा अमल में लाए जानेवाले उपाय किसी भी तरह उपयोगी सिद्ध नहीं होंगे। अपनी मातृभूमि के प्रति हिमालय से लेकर दक्षिण में छोटे-बडे द्वीपसमूहों सहित महासागर तक सपूर्ण देश के प्रति लोगों में अविचल भक्ति का भाव भरना ही इसका प्रमुखतम उपाय है। यह वही महान भूमि है, जिसे हमारे पूर्वजों ने मातृभूमि

के रूप में देखा। हमारे पूर्वजों ने जब यह कहा कि समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में स्थित यह देश भारत है, तब उन्होंने इस देश को उत्तर-दक्षिण और पूर्व-पश्चिम या अन्य प्रकार के टुकडों में बॉटने की कल्पना तक नहीं की थी। अत सपूर्ण देश के प्रति अप्रतिम प्रेम का पुनर्जागरण कर उसे खडा करना होगा। यह प्रेम सुप्त अवस्था में हममें विद्यमान है। उसे हमें जगाना होगा, इस सीमा तक जगाना होगा कि हमारे सभी कार्यो-विचारों और भावनाओं का मार्गदर्शक तत्त्व वही बन जाए। मेरे मत से प्रथम यही आवश्यक है।

दूसरा, इस बात का ज्ञान कि कौन इस भूमि के पुत्र हैं। आजकल, विशेषत आध्र के आदोलन के कारण 'भूमि के पुत्र' शब्दप्रयोग प्रचलित हो गया है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा मूल्की कानूनों को वैध घोषित कर दिए जाने के कारण यह आदोलन प्रारभ हुआ। मूल्की कानून का अर्थ है– जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्थानीय लोगों को वरीयता प्रदान करना। परतु क्या इतना छोटा क्षेत्र ही हमारा है? इस प्रकार के सकुचित दृष्टिकोण के स्थान पर हमें विशाल दृष्टिकोण निर्माण करना होगा। उससे यह प्रकट हो कि सपूर्ण देश अपना है, हम इस देश के हैं, इस देश के प्रत्येक भाग का हम पर अधिकार है, हम सब इसके पुत्र हैं तथा इस रूप में हम सबका कर्तव्य है कि अपने जीवनसहित सपूर्ण शक्ति से हम इसकी सेवा करें। यह भाव सभी के अत करणों मे पुन जगाना होगा। यह अपना दुर्भाग्य है कि 'आज अधिकाश लोग या तो प्रातीय या फिर जातीय मनोवृत्ति के हैं।' इसलिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के सभी आबालवृद्ध बधुओं को शिक्षित करना होगा।

वदेमातरम् गान पर आपत्ति

जब हम कहते हैं कि हम इस भूमि के पुत्र हैं तो हमें उसका उचित ज्ञान भी होना आवश्यक है। चाहे जिस किसी कारण से जो-जो लोग यहाँ केवल रहते हैं, वे सब इस भूमि के पुत्र नहीं बन जाते। इसका एक बहुत स्पष्ट उदाहरण सामने आया है। इस प्रकार के उदाहरण उपस्थित हों, यह दुर्भाग्यपूर्ण ही है। 'वदेमातरम्' गीत को हम बडी श्रद्धा से दोहराते हैं। इस विशिष्ट गीत के प्रति हम सबके अत करणों में आदर और सम्मान का भाव है। यह अपना राष्ट्रीय गीत भी है। यह वही गीत है, जिसने अपने सभी नेताओं को मातृभूमि की सेवा और उसकी स्वतत्रता के लिए सर्वस्व-त्याग

की प्रेरणा दी। कितने ही महापुरुष निर्भयता से फाँसी के फंदे पर झूल गए। 'वदेमातरम्'-गान के 'अपराधस्वरूप' प्राप्त मृत्युदड से भी वे विचलित नहीं हुए। हाथों में गीता लिए कठ से वंदेमातरम् का गायन करते हुए उन्होंने आत्म-बलिदान कर दिया। इन बलिदानों के परिणामस्वरूप अग्रेजों को यहाँ से जाना पडा। हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ और आज हम उस स्वतत्रता का उपभोग कर रहे हैं।

किंतु अपने देश में कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें वंदेमातरम् पर आपत्ति है। हम सब जानते हैं कि अपने ही नेताओं ने इस अप्रतिम गीत को खडित कर दिया। उसकी केवल दो या तीन पक्तियाँ ही गाई जाने लगीं। आज भी वही सिलसिला चल रहा है। केवल उन्हीं लोगों की सभाओं में सपूर्ण रूप में यह गीत गाया जाता है, जिनके अत करणों में मातृभूमि के प्रति अपार भक्ति है, जो मानते हैं कि यह भूमि केवल रहने मात्र का स्थान नहीं, अपितु पवित्र जगज्जननी का साकार रूप है।

इस महान प्रेरणादायी राष्ट्रगीत का अग-भग, सर्वप्रथम काग्रेस के काकीनाडा अधिवेशन में किया गया। इस अधिवेशन के अध्यक्ष श्री मोहम्मद अली ने काग्रेस मच से ही इसके गायन पर आपत्ति की। हाल ही में कुछ मुस्लिम सज्जनों ने, जिनमें कुछ सत्तारूढ दल के भी हैं, मुबई महानगरपालिका की शालाओं में वदेमातरम् के इस आशिक गायन पर भी आपत्ति की है। बहुत समय से वदेमातरम् का गान एक प्रथा रही है। उर्दू पढानेवाली मुस्लिम शालाएँ हों या मराठी, गुजराती पढानेवाली हों या हिंदी, सभी शालाओं के विद्यार्थी इस गीत को बहुत समय से गाते आ रहे हैं। किंतु अब अचानक ही उसपर आपत्ति ली गई है। समाचार तो यह भी है, कि सत्तारूढ काग्रेस के महामत्री ने इस आपत्ति का समर्थन किया है। किंतु मै समझता हूँ कि उर्दू समाचार-पत्रों ने उन्हें गलत और मिथ्या रूप में उद्धृत किया है।

यदि इस आपत्ति का समर्थन किया जाता है और सत्ताधारी निर्देश देते हैं कि वदेमातरम् का गान ऐच्छिक हो, तो हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि सपूर्ण देश के प्रति राष्ट्रभक्ति की भावानाओं के दमन का सुनियोजित प्रयास हो रहा है। मैं नहीं समझता कि इस दमन से अपने देश अथवा समाज का कोई भला होगा। हिंदू अपनी मातृभूमि का गुणगान करता है, उसके समक्ष नतमस्तक होता है उसके चरणों पर अपना माथा टिकाता है और मातृभूमि की महानता के लिए आत्मबलिदान का

सकल्प करता है। क्योंकि वह जानता है कि वह इस भूमि का, भारतमाता का पुत्र है।

यह आपत्ति इसी तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करती हे कि हिंदू ही इस भूमि की सतति है। यदि मुस्लिम भी कहता है कि वह इस भूमि का पुत्र है, तो यह जरूरी है कि वह अपनी सपूर्ण श्रद्धा, सपूर्ण भावनाओं के साथ वदेमातरम् कहे। यदि इस पर आपत्ति की जाती है तो यही निष्कर्ष निकलेगा कि मातृभूमि के रूप में इस देश के प्रति मुस्लिम के अत करण में कोई प्रेम नहीं है। वह इस देश की सतति नहीं है। सभी नेताओं को चाहिए था कि वदेमातरम् का विरोध करनेवालों की निदा करने के लिए वे सामने आते। जो लोग मुस्लिम-समाज में सुधार लाना चाहते हैं, उन्हें भी सामने आकर असदिग्ध शब्दों में कहना चाहिए था कि मातृभूमि की उपासना का वदेमातरम् गान होना चाहिए। जो लोग इसका विरोध कर रहे हैं, देशभक्ति के विरुद्ध कार्य कर रहे हैं। अत सभी लोगों के द्वारा ऐसे लोगों की निदा की जानी चाहिए। मुझे आशा है कि सत्तारूढ दलसहित सभी राजनैतिक दल इस प्रश्न पर दृढता दिखाऍंगे और वदेमातरम् का गायन अमान्य करनेवालों तथा इसका समर्थन करनेवालों को किसी भी दल में कोई स्थान नहीं होगा। इसी से इस देश के विभिन्न समुदायों और देश के बीच माता-पुत्र का वातावरण निर्माण होगा।

हम समस्त धार्मिक झगडों से दूर रहना चाहते हैं। किंतु विभिन्न धार्मिक गुट, अपने पृथक अस्तित्व को बनाए रखना और सभवत इस देश पर अपना प्रभाव कायम करना चाहते हैं। इनमें से अनेक लोग तो शायद मुगलकालीन सपने भी देखते हों। कुछ सज्जनों से बातचीत करते हुए मैंने कहा, 'यदि आप ये सपने भूलें, मुगलों के दिनों की इच्छा त्याग दें और यह सोचें कि आप इस भूमि के पुत्र हैं, तो एक विशिष्ट पद्धति से ईश्वर की उपासना, हमारे-आपके बीच किसी भी प्रकार का भेद निर्माण नहीं करेगी। ईश्वर की उपासना हम असख्य मार्गों से कर सकते हैं। असख्य नामों से हम उसे पुकार सकते हैं। हमारी सीमित समझ के अनुरूप ही ईश्वर स्वय को अभिव्यक्त करता है। अपनी इस मातृभूमि और समाज की महानता के लिए कधे से कधा मिलाकर काम करने में इससे कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होगी। किंतु यदि आप अपना दबाव पैदा करना चाहते हों तथा मुगलों के दिन फिर से लाने की आशा करते हों, तो प्रत्येक मुस्लिम को संदेह की दृष्टि से देखने की स्थिति बनेगी। यह अवस्था देश के लिए किसी भी प्रकार अच्छी नहीं होगी।'

हिंदुओं की मातृभूमि

हिंदू कहता है कि यह उसकी मातृभूमि है। हिंदू इसे अनुभव करता है। यह उसके रक्त में है। पीढियों से वह अपनी मातृभूमि की उपासना कर रहा है। उसे मकान बनाना हो तो वह भूमिपूजन से आरंभ करता है। जो भी शुभ कार्य हाथ में लेता है, उसका आरंभ वह मातृभूमि की आराधना से करता है। वह हमारे विचारों में, स्वभाव में घुल-मिल गई है। इसीलिए हम इस भूमि के पुत्र हैं। हिंदू को यह बताना होगा कि इस भूमि के पुत्र होने के कारण हम सब बंधु हैं।

हम संपूर्ण विश्व के लोगों के साथ मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित करना चाहते हैं। रूसियों, चीनियों, जापानियों, अरबों, अमरीकियों– सभी के साथ आत्मीयता के संबंध बनाना चाहते हैं। किंतु अपने बीच हम भाई-भाई का गला काटने में व्यस्त हैं। यह स्थिति बडी बेतुकी है। इसे ठीक करना होगा। एक बार पुनः हमें यह पाठ ग्रहण करना होगा कि हम चाहे किसी भी जाति के हों, पंथ के हों, हमारी चाहे जो भी भाषा हो, उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक हम सब एक ही माता के पुत्र हैं। इस माता के अन्न-जल से हमारी धमनियों में एक ही रक्त प्रवाहित हो रहा है। एक ही रक्त हम सब का जीवनमान बनाए हुए है। इसी अनुभूति से एकत्व स्थापित होगा। यहॉं-वहॉं राजनीतिक अथवा आर्थिक तालमेल बैठाने, अर्थात् मरहमपट्टी के सिद्धांतों से यह एकता निर्माण नहीं की जा सकती।

धर्म और तत्त्वज्ञान की महानता के दीपस्तंभ

एक और दृष्टिकोण है, जिसे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सभी लोगों के समक्ष प्रभावी रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। इस मातृभूमि की संतति के रूप में हमने यहॉं एक जीवन-प्रणाली का न केवल संपूर्ण मानव-समाज, अपितु समग्र जड-चेतन को समाहित करनेवाले तत्त्वज्ञान के आधार पर एक महान् धर्म का निर्माण किया है। इस धर्म और महान तत्त्वज्ञान का अनुकरण करते हुए यहॉं अनेक असामान्य व्यक्तित्व के लोगों ने जन्म लिया है तथा अब भी जन्म ले रहे हैं। अपने धर्म और तत्त्वज्ञान की महानता के दीपस्तंभ के रूप में ये महापुरुष हमारे समक्ष उपस्थित हैं।

हमारे हितस्वार्थ, इतिहास, स्मृतियॉं समान हैं

हमें यह भी ज्ञात होना चाहिए कि भौतिक धरातल पर अपने सब हितस्वार्थ एकता में ही सुरक्षित हैं। इसमें संदेह नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति के

अपने कुछ हित-स्वार्थ हुआ करते हैं। हमने हमेशा यह अनुभव किया है कि हमारे हित-स्वार्थ इस तरह परस्पर गुँथे हुए हैं कि कोई यदि अपने-आपको या अपने स्वार्थ को जीवन के मुख्य प्रवाह से अलग करना चाहेगा तो उसे हानि होगी और उसकी हानि से समाज को भी हानि उठानी पड सकती है। अत अपने हितस्वार्थ एक समान हैं, अपना इतिहास एक है। जो दुख भोगे हैं, वे साथ-साथ मिलकर भोगे हैं। इसलिए अपने अत करण में भूतकाल की जो स्मृतियॉ हैं, वे भी एक समान ही हैं।

प्रधानमत्री का वक्तव्य

कुछ लोग यह कहते रहे हैं कि प्राचीन बातों को भुला देना चाहिए। किंतु परिस्थितियॉ जब बाध्य करती हैं, तब ये लोग भी कहते है कि हम एक महान राष्ट्र हैं। हमारे पीछे ५००० वर्षों का प्राचीन इतिहास हे। आप लोगों को स्मरण होगा कि बगला देश के प्रश्न पर जब युद्ध हुआ, तो हमारी प्रधानमत्री ओर अन्य लोगों को यह कहना पडा कि हमारी ५ हजार वर्षो की उज्ज्वल परपरा है। धमकियों के सामने हम झुकनेवाले नहीं हैं। हम भी यही कहते हैं। मैं विशेष रूप से प्रसन्न हुआ कि राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ द्वारा समर्थित इन राष्ट्रीय भावनाओं को प्रधानमत्री ने इतनी दृढता से व्यक्त किया। राष्ट्रीय स्वयसेवक सघ की सदस्यता पुरुषों तक ही सीमित है, फिर भी हमारी प्रधानमत्री एकदम ऐसा बोलीं, जैसे वे सघ की घटक ही हों।

मेरे मत में, प्रधानमत्री होने से पुरुष अथवा महिला का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसे अपनी माता केवल एक महिला ही नहीं वरन् इससे बहुत श्रेष्ठ धरातल पर एक विशाल व्यक्तित्व होती है। वह हमारे लिए शक्ति का मूल स्रोत है। इसी अर्थ में मैंने कहा कि प्रधानमत्री का स्थान पुरुष अथवा महिला के विचार से बहुत ऊपर है। इस विशिष्ट पद के लिये मेरे अत करण में अत्यत आदर का भाव है। प्रत्येक व्यक्ति के अत करण में यही भाव होना चाहिए। मेरा यह कथन इसी आदरयुक्त भावना से है। तात्पर्य यह कि प्रधानमत्री ने उन्हीं भावनाओं को व्यक्त किया है, जिनका प्रतिपादन सघ विगत अनेक वर्षो से करता रहा है तथा समाज में जगाने का यत्न करता आया है। प्रधानमत्री के उद्‌गारों से मैं अत्यत प्रसन्न हुआ। हममें से प्रत्येक को, मातृभूमि के पुत्र के नाते अपनी श्रेष्ठ परपरा का स्मरण करनेवाले प्रत्येक हिंदू को प्रधानमत्री के इन शब्दों से बडी प्रसन्नता हुई होगी।

अपनी परपरा, सस्कृति व धर्म समान हैं। इस विश्व में अपने हित भी समान हैं। सुख-दु खों के अनुभव समान हैं। जिनके कारण हमें विभिन्न अनुभव हुए या हम पर वे लादे गए, उनके विषय में शत्रुता का या मित्रता का दृष्टिकोण भी समान है। जिन्होंने हमें अच्छे अनुभव प्रदान किए, उनके विषय में अपने अत करण में मित्रता का भाव है तथा जिन्होंने हमें दु ख दिया या विभिन्न प्रकार के कष्ट पहुँचाए, उनके विषय में शत्रुता का भाव है। इन भावनाओं में हम सभी सहभागी हैं। इसलिए भावनाओं, विचारों, बुद्धि और ऐतिहासिक दृष्टि से हम एक-दूसरे के साथ अतर्बाह्य आबद्ध हैं। इसीलिए अपनी इस मातृभूमि में हम एक परिपूर्ण राष्ट्र हैं। एक ऐसे राष्ट्र के रूप में हैं जो अभी हाल ही नहीं, अपितु सहस्रों वर्षों से विद्यमान हैं। अपने राष्ट्रीय अस्तित्व का जन्म, किन्हीं विशिष्ट राजनीतिक दबावों या राजनीतिक क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं के परिणामस्वरूप नहीं हुआ है। वह तो अपने स्वतत्र अस्तित्व, स्वतत्र व्यक्तित्व, महान धर्म, सस्कृति और परपरा के साथ विश्व में खडा है।

यह सत्य है कि हम एक राष्ट्र हैं। इस सत्य को झुठलाकर इस दुनिया में हमारा भला नहीं होगा। किंतु दुर्भाग्य से, विभिन्न अहिंदू समुदायों को राष्ट्रजीवन के प्रवाह में लाने के तुष्टीकरण के प्रयत्नों में, यह सत्य देश में पिछले अनेक दशकों से झुठलाया जाता रहा है। यह निरर्थक है। निरर्थक इसलिए कि हाल ही का वदेमातरम्-काड हमारे सामने है। इस प्रकार के काडों के प्रति राज्यकर्ता यदि गभीर रुख नहीं अपनाएँगे और उनकी उपेक्षा करेंगे, तो यह निश्चित समझें कि अहिदुओं की ओर से सपूर्ण देश में साप्रदायिक कटुता की भयकर आग भडकाई जाएगी। यही कारण है कि सभी समुदायों को राष्ट्रीय प्रवाह में लाने के प्रयत्न पूर्णत विफल हुए दिखाई दे रहे हैं। इस सत्य को भुलाने का, उसका परित्याग करने का प्रयत्न हुआ है। इतना ही नहीं, यह भी दर्शाने का प्रयास रहा है कि इस सत्य को व्यक्त करना, अपने देश के लिए हितकर नहीं।

मैं यह समझने में असमर्थ हूँ कि सत्य देश के लिए हितकर क्यों नहीं है। सत्य अतत सत्य ही है। उसका अनुसरण उच्चारण उसकी अभिव्यक्ति, अनुभूति और उसके अनुरूप जीवनयापन होना ही चाहिए। जब तक हम यह नहीं करते, सपूर्ण समाज में वास्तविक राष्ट्रीय एकात्मता

उत्पन्न नहीं हो सकती। मुस्लिम और ईसाई समाज में जो लोग सही अर्थो में समझदार हैं, जिनके अत करणों में देशभक्ति है तथा जो अपनी जाति के भूतकालीन आधिपत्य के सपनों से ग्रस्त नहीं है, वे इस बात को स्वीकार करते हैं कि हजारों वर्षो से यह हिदू भूमि है और हिदू जीवन के आदर्श ही भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं।

व्यक्तिगत आस्था और मातृभूमि का आदर, इनमे सघर्ष नहीं

राष्ट्रीय जीवनादर्शो का व्यक्तिगत उपासना-पद्धतियों के साथ कोई सबध नहीं। किंतु दुर्भाग्यवश ऐसा विचार करनेवाले बहुत थोडे हैं। उनकी कोई आवाज भी नहीं है। फिर भी यदि यह सत्य स्थापित हो जाता हे और हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और द्वारका से मणिपुर तक सभी हिदू, वे चाहे जिस राजनीतिक प्रभाव-क्षेत्र में हों, एक राष्ट्रीय व्यक्तित्व के नाते खडे हो जाते हैं, तो ये सभी लोग जिन्होंने इस महान मातृभूमि में रहना स्वीकार किया है, उपासना सबधी अपनी व्यक्तिगत आस्थाओं को बनाए रखकर भी अपनी मातृभूमि का आदर करना सीखेंगे। वे सब राष्ट्रीय स्वत्व को स्वीकार करते हुए, अपनी विभिन्न उपासना-सबधी आस्थाओं पर दृढ रहकर, राष्ट्र के अग के नाते बहुत उपयोगी बनेंगे। सभी लोगों के अत करणों में इस सत्य की पुनर्प्रतिष्ठापना ही अपने सघकार्य का लक्ष्य है।

राष्ट्र के विशुद्ध स्वरूप का ज्ञान कराने से एक और लाभ होगा। इस बात की हमेशा चर्चा होती रहती है कि भ्रष्टाचार बहुत बढ गया है। चारित्र्यभ्रष्टता का सकट है। भ्रष्टाचार की इतनी अधिक चर्चा होने लग गई है कि ऐसा लगता है कि इस विषय में हमारी भावनाएँ मर चुकी हैं। भ्रष्टाचार केवल उन दुर्भाग्यशाली लोगों में ही नहीं है, जिनके लिए जीवनयापन करना कठिन है, अपितु जिनके जीवन में सब प्रकार की सपन्नता है, वे इस पाप में अधिक लिप्त हैं। किंबहुना उनके द्वारा इस पाप को अपनाए जाने के कारण ही शेष समाज उनका अनुकरण करता है। बडे लोग जो कुछ करते हैं, अन्य लोग उसी का अनुकरण करते हैं। यह अपने देश की वर्तमान स्थिति है। जिनमें आत्मसम्मान है, जीवन की शुद्धता है, निष्ठा है और पावित्र्य है, वे इससे बहुत अच्छी तरह अवगत हैं।

सत्य की पुनर्स्थापना

आप लोगों ने पिछले वर्ष समाचार-पत्रों में पढा होगा कि पूर्व बगाल के विस्थापितों की सहायता के रूप में विदेशों से जो दवाइयाँ, ऊनी

कपडे और कबल आए थे, वे विस्थापितों तक पहुँचे ही नहीं। वे कोलकाता के बाजार में बेच डाले गए। किसी ने यह पता लगाने का प्रयत्न भी नहीं किया कि यह बिक्री किसने की? वह कौन है, जिसने अपने बधुओं के दु खों की कीमत पर अपने आपको धनी बनाया? यह प्रश्न किया जाता तो हमारे भ्रष्ट राजनीतिक जीवन के कुछ भयकर रहस्य प्रकाश में आ जाते। इस सीमा तक हमारा अध पतन हो चुका है। जब अन्य लोग अनाज के अभाव में भूखे मर रहे हैं, उन्हीं की कीमत पर कुछ लोग मोटे हो रहे हैं, उन्हें मरने दे रहे हैं। कितना भयानक अध पतन हो गया है?

इसका कारण यह है कि हमने सत्य का परित्याग कर दिया। जब तक सत्य की पुनर्प्रतिष्ठापना नहीं होती, तब तक वर्तमान दु खकारक स्थिति समाप्त नहीं हो सकती। हमारे ऊँचे से ऊँचे नेता चाहे जितनी ऊँची बातें करें, यह स्थिति बदलनेवाली नहीं है। इसीलिए हम कहते हैं कि सभी के अत करणों में इस सत्य का साक्षात्कार कराया जाए और एक शक्तिशाली सगठित राष्ट्र का निर्माण किया जाए।

निष्ठा से चारित्र्य निर्माण

चारित्रिक गुणों की दृष्टि से जब किसी देश का अध पतन हो जाता है तो उसकी उन्मुक्तता, स्वतत्रता, सम्मान और प्रतिष्ठायुक्त राष्ट्र के रूप में उसका जीवन खतरे में आ जाता है। अपने कुछ उच्चपदस्थ नेताओं ने कहा है कि अमरीकी एजेन्सी, सी आई ए अपने देश में अत्यत सक्रिय है। यदि इसे सही मान भी लें, फिर भी हमारे ही लोग जब तक उनके हाथों में न खेलें, वे इस प्रकार का कार्य कैसे कर सकते हैं? अपने ही देश के नागरिक निश्चित रूप से उनके हाथों में खेल रहे होंगे। कुछ लोग तो उनसे वेतन भी पाते होंगे। कुछ लोग उनसे प्रशसा और नाम प्राप्त करने की लालसा से उनके हाथों में खेल रहे होंगे।

ऐसी परिस्थिति में अपने देश में शक्तिशाली नैतिक जीवन खडा करना, केवल नैतिकता के उपदेशों से समव नहीं है। नि शुल्क सलाह से कोई लाभ नहीं होनेवाला। सभी जानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ न कुछ स्वार्थी-पन हुआ करता है। धन, पद या प्रशसा के द्वारा किसी व्यक्ति को जो लोग खरीदना चाहते हैं, वे मनुष्य की इसी कमजोरी को उभाडते हैं। इसलिए जब तक मनुष्य का स्वार्थ राष्ट्रीय स्वाभिमान में पूर्णत विलीन नहीं हो जाता, तब तक वह भ्रष्टाचार का भक्ष्य बना ही रहेगा। वह कभी प्रबल

चारित्र्य का निर्माण नहीं कर सकता। इसीलिए हम कहा करते हैं कि मातृभूमि के प्रति, एक ही माता के पुत्ररूप सपूर्ण हिंदू-समाज के प्रति प्रगाढ भक्ति तथा इस प्राचीन, तेजस्वी और चिरजीवी हिंदू-राष्ट्र के प्रति अविचल निष्ठा से ही व्यक्ति-व्यक्ति में प्रबल और दृढ चारित्र्य का निर्माण होगा। अन्यथा भ्रष्टाचार समाप्त करने की बातें निरर्थक और निष्प्रभ सिद्ध होंगी और हम कहीं के नहीं रहेंगे।

ꣳꣳꣳ

सर्वविदित है कि सभी प्राणियो का मूल प्रेरक सवेग सुख की खोज है। मनुष्य एक–दो दिन के लिए नहीं जीवनपर्यंत सुखी रहना चाहता है। अन्य प्राणियो की भाँति वह भी अपनी इद्रियो के माध्यम से इस सुख को प्राप्त करने का प्रयास करता है। प्रारभ मे शारीरिक व मानसिक आवश्यकताओ एव क्षुधाओ की तृप्ति उसे सुख की अनुभूति प्रदान करती है। इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि यह अनुभूति थोडे समय के लिए सुख देती है परतु साथ ही यह भी उतना ही सत्य है कि यह अस्थायी और क्षणभगुर है।

— श्री गुरुजी

शब्द संकेत खण्ड ३

खड ७ पत्राचार

सतवृद, विदेशस्थ बधु, नेतागण, अन्य मतानुयायी, माता, भगिनि, प्रबुद्ध जन तथा सामाजिक सस्थाओ के कार्यकर्ताओ को लिखे पत्र।

खड ८ पत्र सवाद

स्वयसेवको व कार्यकर्ताओ को लिखे पत्र।

खड ६ भेटवार्ता

प्रश्नोत्तर, वार्तालाप, प्रमुख लोगो से वार्तालाप। पत्रकारो के सम्मुख भाषण महत्त्वपूर्ण भेट तथा अनौपचारिक चर्चाएँ।

खड १० संघर्ष के प्रवाह मे

प्रतिबध के समय सरकार से हुआ पत्राचार। उस समय दिये गए वक्तव्य। आभार प्रदर्शन। बाद के अभिनदन समारोह। भारत–चीन व भारत–पाकिस्तान युद्ध के समय की जनसभाएँ, बेठके, शिविर, पत्रकार वार्ता तथा वक्तव्य।

खड ११ चितन सुधा

सपादित विचार नवनीत

खड १२ स्मरणाजलि

श्री गुरुजी के बारे मे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियो ससद व विधानसभा तथा समाचार–पत्रो द्वारा श्रद्धाजलि।